Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मध्य-हिमालय

खण्ड-१

संस्कृति के पद-चिह्न

डॉ० यशवन्त सिंह कठोच
अवकाश प्राप्त राज्य शिक्षा सेवा

१६६६ ईसवी

भागीरथी प्रकाशन गृह
टिहरी गढ़वाल (उ०प्र०) हिमालय, भारत

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रकाशक :

भागीरथी प्रकाशन गृह
टिहरी तथा नयी टिहरी
टिहरी गढ़वाल, (उ०प्र०) हिमालय

© सर्वाधिकार डॉ० यशवन्त सिंह कठोच

प्रथम संस्करण : ज्येष्ठ संवत् २०५३ वि (जून १९९६)

ISBN 81-86424-06-7
जन संस्करण
मूल्य - 120/-

लेजर टाइप सेटिंगः मॉडर्न लेजर टाइप, 49/2, चकरोता रोड़, देहरादून ।
मुद्रकः माइक्रोमिण्ट इं० प्रा० लि०, 9 एस्ले हॉल, देहरादून

CENTRAL HIMĀLAYĀ Vol. 1
Sanskriti Kē Pada Chihna
By Dr Yaswant Singh Kathoch

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समर्पण

श्री मातृ-पितृ चरणेषु

सादर समर्पित

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्राक्कथन

I

अनेक दृष्टियों से **मध्य-हिमालय** आज भी हमारे चिन्तन एवं अनुसन्धान का प्रधान विषय बना है। वास्तव में, मध्य-हिमालय ही भारतीय धर्म तथा आध्यात्मिकी का मेरुदण्ड है। यही इतिहास-प्रसिद्ध कुरु-पूर्वजों की मूलभूमि है। यही गङ्गा-सिन्धु उन महानदियों का प्रभव-प्रदेश है जिनके तटों पर प्राचीन विश्व की कुछ महान् सभ्यताएँ पल्लवित हुई थीं। यहीं मेरु-मन्दर-कैलास के रम्य शिखर हैं जो हिन्दू देवालय-स्थापत्यकला के आदर्श रहे हैं। सारतः मध्य-हिमालय भारतीय जन के धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का बीजकोश है।

ब्राह्मण-साहित्य में ही नहीं अपितु बौद्ध-जैन साहित्य में भी मध्य-हिमालय के भूगोल, उसके तीर्थ-स्वरूप एवं विभिन्न जाति-समूहों तथा उनकी गतिविधियों पर बहुशः निर्देश हैं। परन्तु, इस सम्पूर्ण वाङ्मय में उपलब्ध इन निर्देशों की यदा-कदा गहन प्रतीकात्मक प्रवृत्ति, स्वयं मध्य-हिमालय की भौगोलिक दुर्गमता तथा इस प्रदेश में पुरातत्त्वीय शोध-प्रयासों की नितान्त प्रारम्भिक अवस्था के कारण, हमारे लिए इसका प्रागैतिहासिक एवं आद्यैतिहासिक स्वरूप ही अन्धकाराच्छन्न नहीं है, प्रत्युत प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहास भी अपने क्रमिक रूप में प्रायः अज्ञात है। फलस्वरूप, इस भूभाग का कालक्रमिक राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास अभी तार्किक तथा वैज्ञानिक रूप में व्यवस्थित नहीं हो सका है। इसके अतिरिक्त, 'मध्य-हिमालयीय अनुसन्धान' के अनेक पक्ष भी अभी अपनी शैशवावस्था में हैं।

उक्त वर्णित सन्दर्भ में, **मध्य-हिमालयीय अनुसन्धान** का महत्व तथा उस अनुसन्धान में व्यापक एवं वैज्ञानिक दृष्टि की अपेक्षा स्वयंसिद्ध है। यतः मध्य-हिमालय की एक भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विशिष्टता रही है। अतः यह एक प्राकृतिक प्रादेशिक इकाई भी है जिसने इसमें निवास करनेवाले 'मानव', उसकी राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आर्थिक 'गतिविधियों' तथा उसकी 'आस्थाओं' को समानतः प्रभावित किया। मध्य-हिमालयीय मानव की इन्हीं कुछ-एक गतिविधियों तथा आस्थाओं का, अद्यावधि शोधों के आलोक में, इस ग्रन्थ के खण्डों में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अनुसन्धान प्रस्तुत करने का मेरा विनम्र प्रयास है।

इस ग्रन्थावली में प्रयुक्त 'मध्य-हिमालय' की सीमाएँ स्पष्ट कर देना आवश्यक है। इसमें यह भूभाग न वर्तमान गढ़वाल-कुमाऊँ हिमालय (जिसे साम्प्रत 'उत्तराखण्ड' कहते हैं) तक सीमित है और न उसकी प्राचीन बृहत्तर सीमाओं तक ही। प्रत्युत इसमें उत्तर में कैलास-मानसरोवर से दक्षिण में गङ्गाद्वार, तथा पश्चिम में यमुना की सहायक टोंस एवं गिरि की उपत्यकाओं से लेकर पूर्व में करनाली पर्यन्त का समस्त हिमालय समाविष्ट माना गया है। अस्तु, हमारा अभीष्ट 'मध्य-हिमालय' क्षेत्र वर्तमान प्रशासकीय सीमाओं द्वारा आबद्ध नहीं है।

II

मध्य-हिमालय : प्रथम खण्ड में इतिहास एवं संस्कृति का जो अध्ययन किया गया है, वह कालक्रमिक रूप में नहीं है। प्रत्युत इसमें विवेच्य विषय के स्वल्प स्वरूपों की झाँकी-मात्र प्रस्तुत है। परन्तु इतिहास तथा मुख्यतः संस्कृति पर लिखित ये स्वल्प प्रकरण ही कम-से-कम अग्रलिखित दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं: प्रथम, इनमें से कुछ राष्ट्रीय महत्व के हैं जिनसे इस प्रादेशिक इकाई का भारतीय इतिहास से सम्बन्ध जुड़ता है। द्वितीय, मध्य-हिमालय 'मानव' की अस्मिता-रश्मियाँ इनसे विकीर्ण होती हैं।

अनुसन्धानगत किसी भी विषय अथवा प्रदेश की भाँति, 'मध्य-हिमालयीय अनुसन्धान' पर भी, ज्ञान की वर्तमान अवस्था में, पूर्णापूर्ण का प्रश्न ही नहीं है। उदाहरणार्थ, प्रस्तुत खण्ड में "ऐतिहासिक भूगोल" का प्रकरण ले सकते हैं। यद्यपि मेरा विश्वास है, इसमें जितने स्थल वर्णित हैं उनके विवेचन में समस्त स्रोत्र-सामग्री का समावेश तो है ही, प्रत्यक्ष निरीक्षण की सुविधा के कारण, इसमें दिये निष्कर्ष अनेक स्थलों पर सर ए० कनिंघम (१८७१), ए० टी० एट्किन्सन (१८८२-८६), बिम्ल चरण लाहा (१९५४), आदि के समीकरणों में, तार्किक आधार पर, पुनरीक्षण ही नहीं अपितु संशोधन भी प्रस्तुत करते हैं। तथापि इस प्रकरण पर, एवं अन्य प्रकरणों पर भी, भविष्य में अनुसन्धान के लिए मुक्त क्षेत्र है।

यद्यपि इस खण्ड के अध्यायों में हिमालय इतिहास एवं संस्कृति के जो-जो पक्ष विवेचित हैं, उन्हें प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करने का श्रमपूर्वक प्रयास किया गया है। तथापि, पद विशेष पर 'बल' देने एवं व्यक्तिवाचक संज्ञाओं तथा संदर्भों को अधिक सुस्पष्टतापूर्वक मुद्रित करने की वे सुविधाएँ हम अपने सुधी पाठकों को न दे

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सके जो गहन शोधपरक ग्रन्थों के लिए अपेक्षित हैं। संस्कृत के संयुक्त व्यञ्जनों की विशुद्ध रीति का पूर्ण निर्वाह भी, जिसकी पाण्डुलिपि में व्यवस्था थी, मुद्रण में नहीं हो सका, इसका मुझे खेद है। तथापि इस कृति के माध्यम से राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं हिमालय-अनुसन्धान की जिस सीमा तक मेरे द्वारा सेवा हो सकेगी तथा पाठकों को लाभ प्राप्त होगा, उस सीमा तक मैं अपने परिश्रम को सार्थक मानूँगा।

इस ग्रन्थ के प्रणयन में जिन गुरुजनों का आशीर्वाद एवं पूर्वाचार्य्यों के ग्रन्थों का मार्गदर्शन मुझे मिला, उनका मैं चिरऋणी हूँ। अपनी शोध-यात्राओं में, विभिन्न पुस्तकालयों एवं संग्रहालयों के उपयोग में जिन मित्रों ने मेरी सहायता की उन सबका मैं आभारी हूँ। 'भागीरथी प्रकाशन-गृह' के संस्थापक श्री बंशीलाल पुंडीर एडवोकेट एवं उनके उत्साही सुपुत्र वीरेन्द्र सिंह पुंडीर का मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने प्रकाशक के रूप में लोकदर्शन के लिए इस ग्रन्थ को शीघ्र प्रकाशित करने का अपना संकल्प पूर्ण किया।

देहरादून। यशवन्त सिंह कठोच

श्रीकृष्णजन्माष्टमी, वि० संवत् २०५२।

(शुक्रवार, १८ अगस्त, १९९५ ई०)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चित्र-सूची

क. पाठान्तर्गत (TEXT FIGURES)

रेखाचित्र-१.	लखु-उड्यार के शैल-चित्र. प्रि-हिस्टॅरिक.	(पृ० ५४-५५)
रेखाचित्र-२.	मोरध्वज-दुर्ग तथा स्तूप. हिमालय-पादप्रदेश.	(पृ० ५६)
रेखाचित्र-३.	शुल्व-सूत्रों के अनुसार श्येनचिति.	(पृ० ६१)
रेखाचित्र-४.	ब्राह्मी-शिलालेख देवप्रयाग तथा त्रियुगीनारायण.	(पृ० ६४)
रेखाचित्र-५.	कुणिन्द-महाराजा अमोघभूति की रजत-मुद्रा.	(पृ० ६५)
रेखाचित्र-६.	गुणादित्य. सम्प्रति अलमोड़ा-संग्रहालय में.	(पृ० ८६)
छायानुकृति-७.	चाँदपुर-सूची, वि०सं० १६३२ (परम्परागत गढ़-सूची).	(पृ० १२६)
छायानुकृति-८.	केदारेश्वरमन्दिर ग्यूल-प्रलेख, वि० सं० १८५७.	(पृ० १६०)
छायानुकृति-९.	केदारेश्वरमन्दिर ग्यूल-प्रलेख, वि० सं० १८१४.	(पृ० १६१)

ख. मानचित्र

मानचित्र-१.	सप्तसिन्धवः एवं सरस्वती.
मानचित्र-२.	युवान्-च्वाङ्. की यात्राएँ (६३५-६३६ ई०).
मानचित्र-३.	कार्त्तिकेयपुर-राज्य (नवम शती ईसवी).

ग. छाया-चित्र (Photo-Plates)

चित्र-१.	कीर्तिमुख. रुद्रमहालय गोपेश्वर.	(पृ०४८,७८)
चित्र-२.	गजसिंह. लक्ष्मणमन्दिर ग्यूल (सितोनस्यूँ).	(पृ० ४९,७९,८७)
चित्र-३.	मलारी के चित्रित मृद्भाण्ड.	(पृ० ५६,५७)
चित्र-४.	मोरध्वज की एक मृण्मुद्रा.	(पृ० ५९,६६,८६)
चित्र-५.	एक चित्रित स्तम्भ. सेनापानी बौद्ध-स्तूप	(पृ० ६०,८४,८६)
चित्र-६.	यक्ष-मूर्ति. भरतमन्दिर, ऋषिकेश.	(पृ० ६२,८४)
चित्र-७.	केशीसूदन-कृष्ण. मोरध्वज-मृण्पट्टिका. कुषाणोत्तर-काल.	(पृ०६३,७८)
चित्र-८.	महासू मन्दिर. हनोल, पैगोडा प्रकार (काष्ठ).	(पृ० ७४)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चित्र-९.	शिवमन्दिर मढ़ (लाखामण्डल).	(पृ० ७४)
चित्र-१०.	देवालय-समूह. आदिबदरी (ज0, चमोली गढ़वाल).	(पृ० ७५)
चित्र-११.	देवालय-समूह. ग्यूल, सितोनस्यूँ	(पृ० ७५)
चित्र-१२.	सूर्य्य देवालय. पलेठी, टिहरी-गढ़वाल.	(पृ० ७६,९१)
चित्र-१३.	घण्डियाल (?) देवालय. वृद्ध-भरसार.	(पृ० ७६)
चित्र-१४.	शिवमन्दिर, पैठाणी.	(पृ० ७४)
चित्र-१५.	वैकुण्ठ-विष्णु, पलेठी, टिहरी-गढ़वाल.	(पृ० ८५,९२)
चित्र-१६.	गरुडासन विष्णुमूर्ति. चमाल.	(पृ० ८५)
चित्र-१७.	अनन्तशायीनारायण-मूर्ति. रुद्रनाथ.	(पृ० ८५)
चित्र-१८.	सूर्य्य. सूर्य्य-देवालय पलेठी.	(पृ० ८५,८८,९२
चित्र-१९.	सूर्य्य. रुद्रमहालय गोपेश्वर.	(पृ० ८८)
चित्र-२०.	चैत्य में ध्यानस्थ बुद्ध. भरत मन्दिर, ऋषिकेश.	(पृ० ८६)
चित्र-२१.	स्कन्दमाता. बिनसर, पौड़ी-गढ़वाल.	(पृ० ८६)
चित्र-२२.	महिषासुरमर्दिनीदुर्गा. बाड़ाहाट.	
चित्र-२३.	घटपल्लव-भूषित स्तम्भ-शीर्ष. लुकाधड़ी, हिमालय-पादप्रदेश.	(पृ० ७८,८७)
चित्र-२४.	द्वार-देवता एवं नागमिथुन चित्रित द्वारपक्ष. पुनाणू.	(पृ० ७९)
चित्र-२५.	राधा-कृष्ण मिलन. गढ़वाल-शैली, लग0 १८०० ई0.	(पृ० १६९)
चित्र-२६.	कुणिन्द अमोघभूति की रजत-मुद्रा. अठूड़-निखातनिधि.	(पृ० ६५)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सङ्केताक्षर

इं० आ० रि०	इंडियन् आर्किऑलॅजि : ए रिव्यू
इं० ऐन्टि०	इंडियन् ऐंटिक्वॅरि
इं० क०	इंडियन् कॅल्चर
इं० हि० क्वा०	इंडियन् हिस्टॉरिकॅल क्वॉर्टर्लि
ए० इं०	एन्शॅन्ट इंडिया
एपि० इं०	एपिग्राफिया इंडिका
ए० जि० इं०	एन्शॅन्ट जिऑग्रॅफि ऑव् इंडिया (ए० कनिंघम)
एशि० रि०	एशियाटिक रिसॅर्चेज
कनिं० आ० स० रि०	कनिंघम आर्किऑलॉजिकॅल सर्वे रिपोर्ट
ग० पें०	गढ़वाल पेंटिंग (मु०लाल)
कु० इ०	कुमाऊँ का इतिहास (ब० द० पाण्डे)
ज० ए० सो० बं०	जॅर्नल् ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटि ऑव् बंगाल
ज० ओ० रि०	जॅर्नल् ऑव् दि ओरिएन्टॅल रिसॅर्च
ज० न्यू० सो० इं०	जॅर्नल् ऑव् दि न्यूमिज्मैटिक सोसाइटि ऑव् इंडिया
ज०यू०पी०हि०सो०	जॅर्नल् ऑव् दि यूना० प्रो० हिस्टॉरिकॅल सोसाइटि
ज० रा० ए० सो०	जॅर्नल् ऑव् दि रॉयल् एशियाटिक सोसाइटि
जि० ए० मे० इं०	जिऑग्रॅफि ऑव् एन्शॅन्ट एण्ड मेडीवॅल इंडिया (दि० चं० सरकार)
जि० डि०/ज्या० डि०	जिऑग्रैफिकॅल डिक्शॅनॅरि (न० दे)
जूलियन	HIOUEN THSANG (एम० जूलियन)
डि० हिं० आ०	डिवेलॅप्मॅन्ट ऑव् हिन्दू आइकॅनॉग्राफि (जि० ना० बनर्जी)
प्रा० भा० ऐ० भू०	प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल (बि० च० लाहा)
प्रोसी० ए० सो० बं०	प्रोसीडिंग ऑव् एशियाटिक सोसाइटि, बंगाल
बील	बुद्धिस्ट रिकॅर्ड्स ऑव् दि वेस्टर्न वर्ल्ड् (सैम्युअल बील)
वाटर्स	ऑन् युवान्-च्वाङ्'ज ट्रैवैल्स् इन इंडिया = सि-यु-कि (टॉमस वाटर्स)
हि० डि०	हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स (एडविन टी० एट्किन्सन)
हिमा० गजे०	हिमालयन गॅजिटिअॅर (हि० डि० का पुनर्मुद्रित संस्करण)

अ०	अध्याय	सं०	संख्या/संस्करण
ई०	ईसवीय	सम्पा०	सम्पादित
टि०	टिप्पणी	वि० सं०	विक्रमीय संवत्
तु०	तुलनीय	गीता० सं०	गीताप्रेस गोरखपुर संस्करण
दे०/द्र०	देखिए/द्रष्टव्य	पारडी सं०	स्वाध्याय मण्डल, पारडी संस्करण

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विषयानुक्रमणिका

		पृष्ठ
	प्राक्कथन	*सात-नौ*
	चित्र-सूची	*दस-ग्यारह*
	सङ्केताक्षर	*बारह*
प्रथम अध्याय	ऐतिहासिक भूगोल	१-३१
द्वितीय अध्याय	ऋग्वेदीय नदी सरस्वती	३२-४२
तृतीय अध्याय	पुराणों में हिमवन्त	४३-५०
चतुर्थ अध्याय	पुरातत्त्व-निधि	५१-६८
पञ्चम अध्याय	देवालय-वास्तुकला	६९-८१
षष्ठ अध्याय	मूर्ति-शिल्प	८२-८७
सप्तम अध्याय	सूर्य्योपासना एवं सूर्य्य-देवालय	८८-९६
अष्टम अध्याय	ललितशूरदेव का कण्डारा-ताम्रपत्राभिलेख	९७-१०४
नवम अध्याय	कार्त्तिकेयपुर का राजवंश	१०५-११५
दशम अध्याय	बावन गढ़-गाथा	११६-१३९
एकादश अध्याय	पँवार-राजधानी देवलगढ़ का पुरातत्त्व	१४०-१४८
द्वादश अध्याय	पँवारकालीन देवालय-प्रबन्ध	१४९-१६३
त्रयोदश अध्याय	गढ़वाल-चित्रशैली	१६४-१७७
चतुर्दश अध्याय	मध्य-हिमालयीय इतिहास में अनुसन्धान का स्वरूप	१७८-१८६
पञ्चदश अध्याय	भाषा की प्रकृति	१८७-१९४
	संक्षिप्त सन्दर्भ-सूची	१९५-१९८
	आभार	१९९
	शब्दानुक्रमणिका	२०१
	मानचित्र	
	चित्र	

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रथम अध्याय

ऐतिहासिक भूगोल

गिरि

१. उशीरगिरि, उशीरबीज

हरिद्वार के समीप कनखल की पहाड़ियाँ (इं०ऐं०, १६०५, पृ०१७६)। देहरादून तथा सहारनपुर का पर्वतीय भाग जिसमें हरिद्वार, कनखल एवं ऋषिकेश सम्मिलित था। पाठभेदः उशीरध्वज (विनय आदि प्रालि-साहित्य), उशीरबीज (महाभारत); उशीरगिरि (कथासरित्सागर, दिव्यावदान)। उत्तर में हरिद्वार के समीप उशीरबीज, मैनाक, श्वेत तथा कालशैल पर्वत थे (आरण्यकपर्व, १४०.१, पारडी संस्करण)। मरुत का यज्ञ-स्थल (उद्योगपर्व, अ० १०६)। तथागत चारिका करते हुए उत्तर में उशीरध्वज तक पहुँचे। मज्झिमदेश की उत्तरी सीमा (विनयपिटक, महाबग्ग)।

२. कालपर्वत, कालकूट

रामायण (किष्कि०, ४३.१४) में वर्णित 'कालपर्वत' के ही पाठान्तर महाभारत (सभा० २६.४; वन० १३६.१, तथा अन्यत्र) में 'कालकूट' एवं 'कालशैल' तथा अष्टाध्यायी (४.१.१७३) में 'क्लकूट' हैं। प्रवज्या लेकर राजा पाण्डु कालकूट एवं हिमालय को लाँघते हुए गन्धमादन पर गये थे (आदिपर्व, ११८.४८)। जातक (६, पृ० ३०२) में इसका 'कालगिरि' नाम है।

कालकूट को ही अन्यत्र यामुनपर्वत कहा गया है। 'यामुनपर्वत' का उल्लेख रामायण (कि०, ४०.२१), महाभारत (आरण्यक, १७४.१५, पारडी सं०; अनुशासन०, ६८.३, गीता सं०) में मिलता है। यामुन-अञ्जन का उल्लेख अथर्ववेद (४.६.१०) में है। इस कारण यामुनपर्वत का

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्य नाम कालकूट होना स्वाभाविक है। एक अन्य निर्देश से भी दोनों नामों की एकता सिद्ध होती है। चन्द्र को यामुनदेशेश्वर कहते हैं (श्रीतत्त्वनिधिः ५.५, पृ० १२२)। तथा रामायण (कि०, ४३.१४) में वर्णित है कि 'कालपर्वत' हिमालय में सोमाश्रम के समीप स्थित है। अतएव प्रकारान्तर से 'कालपर्वत' को सोमाश्रम से संबद्ध कर यामुनपर्वत से उसकी एकता प्रमाणित होती है। रामायण (कि०, ३७.५) और महाभारत (सभा० ७०.१३ - पारडी सं०) में अञ्जन पर्वत नाम मिलने से दोनों नामों की एकता अधिक पुष्ट होती है।

यमुना की उपरली धारा का यह 'यामुनपर्वत' यामुनदेश के रूप में भी वर्णित है। महाभारत के अनुसार, कालकूट-गङ्गाकूल-वारणा, आदि देश भारतीय युद्ध में कौरव-पक्ष से लड़े थे (उद्योग०, १६.२६-३०)। यहाँ यामुनाः का उत्तर के जनपदों में वर्णन है (भीष्मपर्व, ६.५१)। जैन आदिपुराण (२६.४८) के अनुसार, भरत चक्रवर्ती का सेनापति कालिन्द एवं कालकूट जनपदों में पहुँचा। नेमिचन्द्र शास्त्री के मत से, ये दोनों जनपद तमसा-यमुना के तट पर अवस्थित रहे होंगे (आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, वाराणसी, वि० सं० २०२५, पृ० ५३)। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार, पाणिनि ने 'कलकूट' का एकराज जनपदों में वर्णन किया है जो कुलिन्द प्रदेश में था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, द्वि० सं०, पृ० ६६ तथा १३७)। बृहत्संहिता (१४.२५) में भी 'यामुन' एक देश बताया गया है। ज्ञात होता है कि कालकूट ईसा - पूर्व पंचम-चतुर्थ शती में, तथा आगे भी, कुणिन्दों का निवासस्थान था।

कालकूट के कुणिन्दों की राजधानी का नाम भी कालकूट था जिसकी एकता 'कालसी' से की जा सकती है। मौर्यकाल में इस नगर की स्थिति सम्भवतः हैमवत-पथ पर होने के कारण महत्वपूर्ण थी। महापण्डित राहुल के अनुसार, "कालसी का महत्व राज्य - सीमा पर होने के कारण था ही, यह व्यापार का केन्द्र भी था, जहाँ अधिक जन समागम होता था। कालसी (खलतिका) उस समय मध्य - देश के साथ हिमालय के व्यापार का एक प्रधान केन्द्र था, इसमें संदेह नहीं। यहीं हिमवन्त की समूरी खाल (कादलीमृग), पशम तथा कोमल ऊन के दुस्से, कस्तूरी तथा दूसरी बहुमूल्य वस्तुएँ आकर बिकती थीं" (किन्नर देश में, १९५६ ई०, पृ० २९५)। अन्यत्र भी उन्होंने लिखा है कि, "ईसा-पूर्व छठी शती में, ऊपरी जमुना, टोंस तथा ऊपरी सतलज की भूमि के व्यापार का मुख्य केन्द्र कालसी थी" (जौनसार-देहरादून, १९६१ ई०, पृ० ४४ तथा १७८)। अशोक ने अपने शिला-प्रज्ञापन इसी कारण यहाँ खुदवाये। अतएव कालकूट यमुना-टोन्स के संगम पर स्थित, देहरादून जनपद में वर्तमान कालसी ही होगा।

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के पुरालेखविद् डॉ० के० वी० रमेश को १९७८ में यहाँ ८ वीं शती ई० के आस-पास का एक अन्य खण्डित शिलालेख भी मिला जिसकी सूचना उन्होंने एक भेंट में लेखक को दी। अन्य पुरावशेष अब विनष्ट हो चुके हैं जो कुछ काल पूर्व यहाँ बिखरे थे

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(वाल्टन, गजे० देहरादून, पृ० १६८)। कालसी के स्तूपों, देवमन्दिरों का विनाश १२५४ ई० में सुल्तान नासिरुद्दीन द्वारा हुआ होगा।

३. मानपर्व्वत

'मानपर्व्वत' देवप्रयाग-शिलालेख में निर्दिष्ट है। डॉ० ब.चं. छावड़ा के अनुसार, "देवप्रयाग में अलकनन्दा-भागीरथी संगम की पृष्ठभागीय पर्वतश्रृंखला का नाम भी 'मान' था" (एपि०इं०, खण्ड ३०, १९५३-५४, पृ० १३४)। यह एकता संगत प्रतीत होती है। क्योंकि आज भी राणीकोट पर्वत की चढ़ाई वाले मार्ग को 'मनभंग-चितभंग' की चढ़ाई कहते हैं। प्राचीनकाल में यह मार्ग बदरीनाथ जाने का था ('गढ़वाल-वर्णन', पृ० १८६)। पुनः, 'विनयपत्रिका' (पद, ६०) की "देव, मान मनभंग चितभंग..." पंक्ति में मानपर्वत का वर्णन महत्वपूर्ण है जो कवि तुलसीदास ने अपनी बदरिकाश्रम की दुर्गम यात्रा के प्रसंग में लिखा है।

४. मोरगिरि

मोरगिरि का उल्लेख द्वितीय शती ईसा-पूर्व के भारहुत-लेखों में मिलता है : "मोरगिरिम्हि नागिलाया भिखुनिया दानं थमा", अर्थात्, मोरगिरि की भिक्षुणी नागिला द्वारा अर्पित स्तम्भ (हुल्श, इं० ऐंटि०, २१, पृ० २३४)। मोरगिरि-वासियों के अन्य भारहुत-दानलेखों का सम्पादन ब्यूलर ने किया है (एपि० इं०, खण्ड २)। 'मोरगिरि', उशीरध्वज के पूर्व में वर्तमान चौकीघाट तथा कोटद्वार के आसपास की उपगिरि-पर्वतमाला हो सकती है। मोरगिरि के ही पाद-प्रदेश में बौद्धों का प्रसिद्ध केन्द्र 'मयूर' (=मोरध्वज) अवस्थित था। द्र०, मयूर।

५. सपादलक्ष

मध्य हिमालय - पाद प्रदेश की शिवालिक पहाड़ियाँ। हिन्दुओं के प्राचीन साहित्य में इसे ही 'मैनाक' कहा गया होगा। पृथ्वीराजरासो (पद्मावती-समय, २६) में इसका 'सवलष्ष' पाठ मिलता है। शिवालिक और उसके आसपास के हिमालय को भाण्डागारिक श्रीसहणपाल के बोधगया-शिलालेख (लक्ष्मणसेन सं० ७४) में "सपादलक्षशिरवरिखसदेश" कहा गया है जिसका राजाधिराज श्रीमत्-अशोकचल्लदेव था (एपि० इं०, १२, पृ० २९-३०)। सपादलक्षशिखरिखसदेश" के इस बौद्ध राजा तथा उसके सामन्त कमा के पुरुषोत्तमसिंह ने भी बोध-गया में नये विहार बनवाये (एपि० इं०, १२, पृ० २७-२८; इं० ऐंटि०, १०, पृ० २४१ तथा आगे; बरुवा, गया एण्ड बुद्ध गया, १, पृ० २०१-२०५)। सपादलक्ष के लिए मुसलमान लेखकों का दिया नाम 'शिवालिक' है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

६. हिमवन्त, प्रालेयाचल

मध्य-हिमालय। प्रो० रीज डेविड्स का भी यही मत है। 'हिमवन्त' का वर्णन प्रधानतः मध्य-हिमालय के लिए ही हुआ है जिसमें पश्चिमी भोट भी सम्मिलित था। धार्मिक साहित्य यथा 'केदारखण्ड' (अ०, १०१) में 'हिमवत्-देश' कभी केवल केदारदेश को ही माना गया है। पाठान्तरः हिमवन्त (रामा०, बाल०, ३१.१४; महा० सभा०, ५०.२१; बौद्ध-साहित्य); हैमवत् (सभापर्व, ५१.२४ ; साँची स्तूप धातु-मंजूषा लेख); उत्तरपर्वत (रामा० बाल०, ७४.१); हिमशैल (रामा० कि०, ४३.४); प्रालेयाचल (अभिलेख)। हिमालय के लिए 'प्रालेयाचल' अथवा 'प्रालेयाद्रि' नाम पलेठी-शिलालेख, खजुराहो-अभिलेख, सं० १०११ तथा पाल-अभिलेखों (गौडलेखमाला, पृ० ६५) में प्राप्त होता है। थेर मज्झिम ('सवहेमवताचरिय') धम्म-प्रचारार्थ हैमवत् में भेजे गये थे (महावंस, १२.६)। प्रालेयाचलवासी म्लेच्छगण को सातवीं-आठवीं शती ई० में श्रीजयमन ने विजितकर अपने स्वामी को दिया था (पलेठी-लेख, पंक्ति ७)। विजय करते हुए चन्देलवंश के शासक यशोवर्मन् के सैनिकों ने प्रालेयाचल पर चढ़ाई की थी जहाँ गङ्गा की प्रवल धाराएँ प्रवाहित होती थीं *(खजुराहो-अभिलेख, पंक्ति १८)*। भिलसा-लेख के अनुसार भी, गढ़वाल-कुमाऊँ हिमालय का नाम ही सम्भवत : "हैमवत्" था।

भौगोलिक दृष्टि से, हिमवन्त की तीन समान्तर श्रृंखलाएँ पूर्व से पश्चिम में फैली हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में इन्हें उत्तर से दक्षिण के क्रम से तीन पृथक् नाम दिये गये हैं -

"अन्तर्गिरिं च कौन्तेयस्तथैव च बहिर्गिरिम्।
तथैवोपगिरिं चैव विजिग्ये पुरुषर्षभः ।।"

(महा०, सभापर्व, २७.३ - गीता० सं०)

(१) **अन्तर्गिरि** (महाभारत, अष्टाध्यायी), जो पालि-साहित्य का 'महाहिमवन्त' है। वर्तमान भाषा में हिमालय के इस उत्तरी सर्वोच्च भाग को महा-हिमालय कहते हैं। (२) **बहिर्गिरि**, जो पालि-साहित्य का 'चुल्ल-हिमवन्त' है। वर्तमान शब्दावली में इसे लघु-हिमालय (lesser-Himalaya) कहते हैं। (३) **उपगिरि** (अष्टाध्यायी में भी वर्णित), जिसे वर्तमान शब्दावली में बाह्य-हिमालय अथवा शिवालिक श्रेणियाँ कहा जाता है। इसका ही अपर नाम प्राचीन साहित्य में 'मैनाक' है।

हिमवन्त के अन्तर्गत जिन अनेक पर्वतों का वर्णन हुआ है, उनमें से कुछ ये हैं : (१) **गन्धमादनपर्वत** - यह बदरिकाश्रम से सम्बद्ध गढ़वाल का महा-हिमवन्त है। "कैलासपर्वत श्रेष्ठे गन्धमादनपर्वते" (केदारखण्ड, अ० ६०)। राजा पुरुरवा और गान्धर्वी उर्वशी का रमण-स्थल (हरिवंशपु०, अ० २६)। पाण्डवों ने तीर्थयात्रा-काल में यहाँ प्रवेश किया था जहाँ विशालाबदरी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तथा नरनारायणाश्रम हैं तथा जहाँ सदा यक्ष निवास करते हैं (आरण्यक०, १४२.२३ - पारडी सं०)। पाण्डव वीरों ने गन्धमादन, देवनदी गंगा, आर्ष्टिषेण - आश्रम, बदरीविशाला, आदि आश्रमों में वनवासकाल के अधिकांश वर्ष व्यतीत किये (आरण्यक०, अ० १५५ से १७४)। गन्धमादन की रम्य कुवल-भूमि का आरण्यकपर्व (१५५.७५) में वर्णन है - "हरितारुण वर्णानां शाद्वलानां समन्ततः"। (२) शतश्रृंगपर्वत - राजा पाण्डु का तपस्थान, कुन्ती तथा माद्री ने यहीं पाण्डवों को जन्म दिया (आदिपर्व, अ० १११ से ११७ - पारडी०)। पाण्डु का मृत्यु - स्थान भी (सभा०, ७१.१७)। यहीं राम-भ्राता लक्ष्मण का अति प्राचीन मन्दिर है। (३) मैनाक - प्राचीन भौगोलिक नाम उपगिरि है। मैनाक पर किन्नरियाँ (रामा० कि०, ४३.२९ तथा ३१)। हरिद्वार के समीप (वनपर्व, १३९.१)। तैत्तिरीय आरण्यक (१.३१.२) में वर्णित। इनके अतिरिक्त, कैलास, श्वेतपर्वत, यामुनपर्वत, आदि हिमालय-पर्वतों का वर्णन मिलता है।

देश, विषय

१. अन्तरंग - विषय

संस्कृत ग्रन्थों में अन्तरंग का अर्थ 'भिषक्', 'राज-प्रदत्त विद्याकुल सम्पन्न भिषक्', आदि किया गया है। (इण्डियन कल्चर, खण्ड १, १९३५ ई०, पृ० ६८४)। उड़ीसा के भौम-करवंशीय द्वितीय शुभाकर के तिरुण्डिया ताम्रपत्र में 'राजपुत्र' के पश्चात् 'अन्तरंग' एक पदाधिकारी के लिए आया है। डॉ० दि० चं० सरकार का मत है कि "इनमें अन्तरंग, राजभिषक् अथवा राजा का अन्तरंग मन्त्री प्रतीत होता है" (इं० एपिग्राफि, पृ० ३७१)। सम्भवतः इसी पद-नाम से कभी कार्त्तिकेयपुर - शासकों के अन्तरंग-विषय का नामकरण हुआ हो। टंगणपुर-विषय के साथ इस विषय का उल्लेख कातिपुर-शासक सुभिक्षराजदेव के पाण्डुकेश्वर ताम्रपत्राभिलेख (पंक्ति १३) में मिलता है (सम्पा०, सरकार, एपि० इं०, ३१, १९५५-५६, पृ० २९०-२९८)। एडविन टी० एट्किन्सन के अनुसार, यह अलकनन्दा-भागीरथी का मध्यवर्ती प्रदेश है (हि० गजे०, खण्ड दो (१), पृ० ३५७ तथा ४८४)। परन्तु यह अनुमान अग्राह्य है, क्योंकि इसमें 'दुर्म्मोर्ग-विषय' को ध्यान में नहीं रखा जा सका जिसका ज्ञान अब कण्डारा-ताम्रपत्र से हुआ है। अस्तु, यह विषय टंगणपुर- और दुर्म्मोर्ग-विषय के दक्षिण में निचली अलकनन्दा-घाटी में विस्तृत था। प्रायः समस्त 'गंगाड.' इसमें सम्मिलित रहा होगा। (द्र०, मानचित्र सं० ३)

२. ईशाल - विषय

कार्त्तिकेयपुर-शासक देशटदेव के बालेश्वर ताम्रपत्राभिलेख में ईशाल-विषय का नामोल्लेख है। इस विषय के अन्तर्गत 'यामुन-ग्राम' के वर्णन से इसमें "भागीरथी तथा यमुना के मध्यवर्ती" होने की सम्भावना व्यक्त की जाती है। दूसरी ओर, ताम्रपत्र के प्राप्ति-स्थान के आधार पर, ईशाल - विषय को चम्पावत के निकटवर्ती क्षेत्र में होने की कल्पना भी की जाती

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। उक्त दोनों एकताएँ अनुमान-मात्र हैं। तथापि प्रथम स्थापना अधिक संगत लगती है।

३. उत्तर-कुरु

एक उदीच्य जनपद। उत्तर-कुरु की स्थिति हिमवन्त के पार उत्तर दिशा में ("उत्तरस्यां दिशि परेण हिमवन्तं जनपदाः उत्तरकुरवः उत्तरमद्राः", ऐतरेयब्राह्मण, ८.१४); मेरु के पार्श्व में ही उत्तर की ओर का एक द्वीप (भीष्मपर्व, ७.११ तथा ८.२); शैलोदा नदी (=यारकन्द) के उस पार उत्तर में (रामा०, किष्कि० ४३.३८,५३); यमुनोत्तर तथा श्वेतपर्वत के उत्तर में (केदारखण्ड, अ० २०४) और स्त्रीराज्य के निकट (राजतरं०, ४.१७४) बतायी गयी है। बृहत्संहिता (१४.२४) में उत्तर-कुरु का उल्लेख कैलास, हिमवान्, वसुमान्, क्रौंच तथा मेरु के साथ मिलता है। इसे देश, जनपद, द्वीप तथा वर्ष कहा गया है। भारतीय इतिहासकारों के अनुसार, "उत्तर-मद्रों के साथ हिमालय-पार स्थित यह उदीच्य जनपद ऐतरेयब्राह्मण (८.२३) में एक ऐतिहासिक लोकसमूह प्रतीत होता है, जहाँ वर्णित है कि कोई जानन्तपि अत्यराति उत्तर-कुरुओं के देश को जीतने का इच्छुक था जो देव-देश कहलाता था" (दि वैदिक एज, पृ० २६२)।

उत्तर-कुरु के मनुष्य "एकपादा-शूर्पकर्णा - महानना- अश्वदेह-दीर्घकेशा" (केदारखण्ड, २०४.४१), तथा वहाँ की भूमि भीष्मपर्व और केदारखण्ड में क्रमशः "सूक्ष्मकांचन बालुका" तथा "सौवर्णी तत्र बालुका" कही गयी है। महाभारत के अनुसार, अर्जुन अपनी उत्तर- दिग्विजय के समय यहाँ तक आया था, तथा उत्तरकुरुवासियों ने उसे क्षौम और अजिन (मृगचर्म) भेंट में दिये थे (सभा०, २८.७,१६)। राजसूय-यज्ञ के समय वे शुद्ध जल एवं माल्य ('माल्यमम्बुभिः') उपायन में लाये थे (सभा०, ५२.६)। अन्यत्र, वैभव में सागल को उत्तर-कुरु के समान बताया गया है (मिलिन्द-प्रश्न)।

प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार के अनुसार, उत्तरकुरु की स्थिति शकों (सैवांग) और हूणों (हियंगनू) के राज्यों की सीमा पर थ्यानशान् पर्वत के दक्षिण तथा इसिकुल झील के पश्चिम इलि नदी की घाटी में थी (भारतभूमि और उसके निवासी, पृ० ३१०)। दे (पृ० २१३) इसे गढ़वाल और हूणदेश का उत्तरी भाग बताते हैं जहाँ मन्दाकिनी और चैत्ररथ वन हैं। लासेन के अनुसार यह काशगर के पूर्व में स्थित था। रामायण के आधार पर दे इसमें तिब्बत और पूर्वी तुर्किस्तान सम्मिलित मानते हैं (दे, ज्या. डि., पृ० २१४)। तालमी का 'औतोरकाई' उत्तरकुरु का पाठान्तर माना गया है। निःसंदेह, उत्तर-कुरु मध्य हिमालय के पार उत्तर में स्थित था। कुरुओं की यह मूल भूमि पूर्वकाल में काशगर के पूर्व में शैलोदा तटवर्ती रही होगी, परन्तु कालान्तर में कभी ये लोग केदारमण्डल के उत्तरी पड़ोसी के रूप में, पश्चिमी भोट (हूणदेश), कैलास-मानसरोवर क्षेत्र एवं गन्धमादन हिमालय में, बसे मिलते हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

४. कमादेश

मूलतः काली-कुमाऊँ। पिथौरागढ़ जनपद के 'काली-कुमाऊँ' परगने का नाम आज भी 'कुमू' है। **पुरुषोत्तमसिंह के बोधगया-शिलालेख**, बुद्ध-परिनिर्वाण संवत् १८१३ (इं० ऐं०, खण्ड १०, दिस० १८८१, पृ० ३४१-४६) के अनुसार, **सपादलक्षशिखरि-खसदेश** के राजाधिराज अशोकचल्ल के अधीनस्थ **कमादेश** वा **कमाधक** के शासक पुरुषोत्तमसिंह ने बोधगया में गन्धकुटी का जीर्णोद्धार किया था। इस शिलालेख (पंक्ति २) में 'कमादेश' तथा **पृथ्वीराजरासो** (पद्मावती समय, २६) में 'कमऊँगढ़' नाम आने से ज्ञात होता है कि बारहवीं शती ई० के आसपास दोनों नाम प्रचलित थे। अस्तु , बौद्धों द्वारा प्रयुक्त नाम 'कमादेश' ही परवर्तीकाल में कूर्मांचल एवं कुमाऊँ बन गया।

५. कार्त्तिकेयपुर-विषय

तालेश्वर-ताम्रपत्राभिलेखों (एपि० इं०, १३ (संख्या ७), पृ० १०६-१२१) में 'विषय' के नाम से नहीं, परन्तु एक प्रशासनिक इकाई के रूप में 'कार्त्तिकेयपुर' का उल्लेख है। इसके अन्तर्गत एक स्थल पर 'अतिवलाक-पल्लिका', 'विशाखिल-पल्लिका', 'अरिष्टाश्रम' तथा 'अवलीनक', स्थानों का वर्णन है तथा दूसरे स्थल पर 'निम्बसारी' एवं 'श्वेतक्षेत्र' का। तीन शती पश्चात्, कार्तिकेयपुर के महान् नरेश प० म० प० ललितशूरदेव के **ताम्रपत्राभिलेखों** (राज्यवर्ष २१ तथा २२) में 'कार्त्तिकेयपुर-विषय' का स्पष्ट उल्लेख है। उसके २१ वें राज्यवर्ष के पाण्डुकेश्वर-ताम्रपत्र में इस विषय के अन्तर्गत 'गोरुन्नासा' तथा 'पणिभूतिका' स्थल-नाम मिलते हैं।

कार्त्तिकेयपुरीय नरेशों के विस्तृत राज्य के अन्तर्गत यह विषय नवीं शती ईसवी के मध्य में विद्यमान था जो 'टंगणपुर-विषय' के दक्षिण में नागपुर से कत्यूर उपत्यका तक फैला विदित होता है। राजधानी 'कार्त्तिकेयपुर' इसी विषय में अवस्थित थी। (द्र० आगे, "कार्त्तिकेयपुर का राजवंश" अध्याय, एवं मानचित्र संख्या - ३)

६. कुलिन्द-विषय, कुणिन्द, कुलुन

इस नाम के दो पाठान्तर मिलते हैं: (१) कुणिन्दाः (मार्क०पु०), कुणिन्देन (महा० सभा०, अ० ५१- गीता० सं०), कौणिन्दाः (बृ० सं०, अ० १४), कौणिन्द (भविष्यपु०, ३.१.६.२४), कुणिन्द (मुद्राएँ; कनिंघम, Coins of Anc. Ind., १८९१, पृ० ७१)। (२) **कुलिन्द-विषय** (सभापर्व, २६.३; वनपर्व, १४०.२६), **कुलिन्दोपत्यकाः** (भीष्मपर्व, १०.५४-पारडी सं०), **कुलुन** (अष्टाध्यायी, ४.३.९३), **कुलिन्द्रीन** (ताल्मी, ७.११.४२)। कुलिन्दों में पुराकाल में राजतन्त्र शासन था, परन्तु प्रायः बुद्ध के काल से तृतीय शती ई० पूर्वार्द्ध तक

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गण-शासन। गण-शासन के अपने गौरवपूर्ण युग में इन्होंने रजत, मिश्रित रजत तथा ताम्र - मुद्राएँ चलायीं। तृतीय शती ई० पूर्वार्द्ध के आस-पास कुणिन्दगण यौधेय-गण में मिल गया लगता है। कुलिन्द मूलतः मध्य हिमालय के पर्वतीय ढालों के निकट रहते थे, यह महाभारत (भीष्म० १०.५४) तथा विष्णुपुराण में आये "कुलिन्दोपत्यकस्" (=पर्वतपादवासी कुलिन्द) विशेषण से भी प्रकट होता है। रामायण ("कालिन्दीं यमुनां", कि०, ४०.२६) तथा काव्यमीमांसा (अ. १७) में कालिन्दी का उद्गम 'कलिन्द' वा कलिन्द्र नाम से तथा मुद्राओं पर पर्वत, देवदारु, आदि रूपों के अङ्कन से भी यही सिद्ध होता है।

कनिंघम (पूर्वोक्त, पृ० ७०-७१) और सरकार (जि० एँ० मे० इं०, पृ० ३३ टि० ३) के अनुसार, कुणिन्द कुल्लू और शिमला प्रदेश के वर्तमान कनेत हैं, परन्तु जायसवाल और अन्य विद्वान् इसे स्वीकार नहीं करते। मूल कुलिन्द जनपद, जैसा कि वासुदेवशरण अग्रवाल (भारत की मौलिक एकताः *पाणिनिकालीन भारतवर्ष,* द्वि०सं०, पृ० ६८) ने बताया, "यमुना और सतलज के बीच का पहाड़ी प्रदेश" था। जयचन्द्र विद्यालंकार ने भी कुणिन्द गणराज्य की स्थिति "हिमालय की तराई में व्यास से जमुना तक" मानी है (भारतीय इतिहास का उन्मीलन, पञ्चम सं०, पृ० १५५.१५६)। परन्तु हमारे विचार से इसमें गंगा का उत्तरी पर्वतीय भाग भी सम्मिलित रहा होगा। महाभारत (सभा०, अ० २६) में वर्णित कुलिन्द-विषय ही सुबाहु-विषय था (वन०, अ० १४०)। पाण्डव गङ्गाद्वार से गन्धमादनपर्वत पर 'सुबाहु-विषय' से होकर पहुँचे थे। वनपर्व (१४०.१२ एवं २५-२६) के आधार पर हमारा अनुमान है कि कुलिन्द-देश में कुलिन्दों के अतिरिक्त, किरात तथा तङ्गण - भूभाग भी सम्मिलित थे।

कुणिन्दों की ब्राह्मी लेखयुक्त आरम्भिक मुद्राओं की प्राप्ति से विदित होता है कि कुणिन्द-भूमि अब यमुना-गंगा की पर्वतीय द्रोणी के आसपास से लेकर दक्षिण में बेहत तक थी। अमोघभूति की मुद्राओं, परवर्तीकाल की अन्य कुणिन्द-मुद्राओं तथा ताल्मी (७.१.४२) द्वारा दिये कुलिन्द्रीन (Kulindrine) के वर्णन से इस जनपद की सीमाओं में अधिक विस्तार होने का पता चलता है, अर्थात् पूर्व में समस्त गढ़वाल-कुमाऊँ, पश्चिम में पूर्वी हिमाचल प्रदेश तथा दक्षिण में सुनेत, अम्बाला, सहारनपुर और बिजनौर जनपदों के उत्तरी भागों तक। कालकूट (कालसी) आदि कुणिन्द - राजधानी थी। शुंगकाल में सम्भवतः वह दक्षिण में सुघ्न (अम्बाला जनपद में सुघ गाँव) में आ चुकी थी जहाँ कनिंघम को अगरज, बलभूति तथा अमोघभूति की मुद्राएँ मिली थीं। ए०सी० बनर्जी का भी अभिमत है कि उनकी राजधानी यमुना के पश्चिम तट पर अवस्थित बड़या के समीप 'सुघ' में रही होगी (ज० बं० ओ० रि० सो०, खण्ड २०, १६३४ ई०, पृ० १६०)।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

७. केदार, केदारमण्डल, केदारभूमि

अपनी प्राचीन सीमाओं के अन्तर्गत गढ़वाल-मण्डल। श्वेतपर्वत के पञ्चखण्डों में एक तथा गङ्गा की दश धाराओं का देश केदारखण्ड अथवा केदारमण्डल की सीमाएँ केदारखण्ड (४०.२८-२९) के अनुसार, गङ्.गाद्वार से प्रारम्भ कर श्वैतान्तपर्वत पर्यन्त तथा पश्चिम में तमसा-तट से बौद्धाचल पर्यन्त थीं। इसी ग्रन्थ में प्रकारान्तर से उसकी उत्तर-दक्षिणी सीमाएँ "कण्वाश्रम से लेकर नन्दगिरि पर्यन्त" (अ० ५७) अथवा "(उत्तर में) रत्नस्तम्भ से हिमालय-पदान्तिक मायाक्षेत्र पर्यन्त (अ० १०१) कही गयी हैं। स्वर्गभूमि नाम की गरिमा प्राप्त इस भूखण्ड में 'केदारतीर्थ' की प्रधानता रही है जिसका वर्णन हिन्दू पुराणों में सर्वत्र मिलता है।

आठवीं शती से ही उत्तर भारतीय राजनीतिक घटनाचक्र का 'केदार-भूमि' से भी सम्बन्ध रहा। पालवंशीय नरेश धर्मपाल (लग० ७७०-८१० ई०) की सेना द्वारा केदार-यात्रा का वर्णन मिलता है: "केदारे विधिनोपयुक्त पयसां गङ्.गा समेताम्बुधौ" (देवपाल का मुंगेर-ताम्रपत्र, पं० १०)। जो निश्चिततः गढ़वाल का प्रसिद्ध केदारनाथ तीर्थ है (मजुमदार, र०, दि एज ऑव् इम्पिरिअल कन्नौज, पृ० ४७)। स्यात् उसकी इस प्रदेश पर अल्पकाल के लिए मात्र अधिसत्ता थी, आन्तरिक शासन में यह स्वतन्त्र प्रदेश था। धर्मपाल के खालिमपुर-अभिलेख (श्लोक २१) से भी विदित होता है कि 'केदार' के पड़ोसी 'यदु' तथा 'कीर' के राजाओं ने अपना शिर झुकाकर ("प्रणति परिणतैः") धर्मपाल की अधिसत्ता स्वीकार की थी, परन्तु इन पर उसका किसी प्रकार प्रत्यक्ष शासन नहीं था। चौलुक्य कुमारपाल (११४४-७४ ई०) ने भी प्रारम्भिक जीवन में सप्तवार केदार-भ्रमण किया था: "सप्तवारंभ्रमन्केदार-यात्रामकरोत्" (पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह)। द्व्याश्रयकाव्य (अ० २०, श्लोक ९०-९३) से ज्ञात होता है कि तदन्तर यहाँ उसने शिवकेदारनाथ के मन्दिर का जीर्णोद्धार किया, तब इस भूखण्ड में कोई खश राजा शासक था (प्रबन्ध - चिन्तामणि _ ह० प्र० द्विवेदी - कृत हिन्दी अनु०, पृ० १००-१०१)। अशोकचल्ल के गोपेश्वर- अभिलेख के अनुसार, शाके १११३ (= ११९१ ई०) में अशोकचल्ल ने कातियुरवंशी नरेशों की केदारभूमि को विजित किया। कश्मीर-नरेश ललितादित्य भी विजय हेतु 'केदारमण्डल' में गया था (राजतरं०, २.१८)।

केदारतीर्थ की धार्मिक महत्ता के कारण ही बृहत्तर गढ़वाल को पुराकाल में केदार, केदारखण्ड, केदारदेश, केदारमण्डल और केदारभूमि नामों से अभिहित किया गया। केदारखण्ड ग्रन्थ में इस देश को केदार (अ० ९२, १०१), केदारमण्डल (अ० ४०, ४५, ८५, ९२, आदि) और केदार-देश (अ०, १०१, १०२, १७७) कहा गया है। द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से हिमालय पर 'केदारेश्वर' प्रख्यात है। तन्त्रों में भी भारत स्थित अष्टोत्तरशत शिवस्थलों में से 'केदार' का नामोल्लेख है (ललितागम, ज्ञानपाद_ श्रीतत्त्वनिधिः पृ० ३०५ में उद्धृत)। ज्ञानार्णवतन्त्र (पटल १४) में केदार को पचास देवीपीठों में से एक बताया गया है। केदार-पीठ में देवी सन्मार्गदायिनी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वा मार्गदायिनी कही गयी है (देवीभागवतपु०, ७.३०,३८)।

८. खश, खशदेश

एक उदीच्य देश तथा उसका लोक-समूह। पाण्डुपुत्र अर्जुन ने अपनी उत्तर दिग्विजय के समय शैलोदा नदी के दोनों तटों पर निवास करनेवाले जिन लोक-समूहों को जीता था (**सभा०,** अ० २८, दाक्षिणात्य अधिक पाठ - गीताप्रेस सं०), वे ही युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में पिपीलिक स्वर्ण-द्रोण, कृष्ण-श्वेत चामर तथा हिमालय का पुष्प-मधु भेंट में लाये थे (सभा०, ५२.२-५)। वे जन अथवा जनपद हैं :

"खशाञ्झषांश्च। नद्योतान् प्रघसान् दीर्घविणिकान्।
पशुपांश्च कुलिन्दांश्च तङ्गणान् परतङ्गणान्" ।। (सभा०, अ० २८ - गीता० सं०)
"खसा एकासना ह्यर्हाः प्रदरा दीर्घविणवः ।
पारदाश्च कुलिन्दाश्च तङ्गणाः परतंगणाः।।" (सभा०, ५२.३ - गीता० सं०)
"खशा एकाशना ज्योहाः प्रदरा दीर्घविणवः ।
पशुपाः कुणिन्दाः तड्.णाः परतगड्णाः ।।" (सभा०, ४८.३ - पारडी सं०)

हम डॉ० अवस्थी के इस अनुमान से सहमत नहीं हैं कि "एकासना ह्यर्हाः प्रदरा दीर्घविणवः" खस के विशेषण पद ही ज्ञात होते हैं (प्रा० भार० भू०, पृ० १०५)। महाभारत के दो संस्करणों में आये उक्त पाठभेदों से ज्ञात होता है कि 'खश' के उपरान्त आये शब्द चार पृथक् जातियों के बोधक हैं। उदाहरणार्थ, 'दीर्घविणिकान्' पश्चिमी भोट (हूणदेश) की जाति रही होगी। आज भी हुणियाँ जाति के नर-नारी दोनों दीर्घ वेणी धारण करते हैं। 'चामर' भी पश्चिमी भोट की ही वस्तु है। अतएव पार्जिटर का यह कथन सत्य है कि शैलोदा तटीय खश पश्चिमी तिब्बत के निवासी थे। महाभारत में खश कभी 'काम्बोजों-शकों' के साथ (उद्योग०, १५८, २०), कभी 'दरदों-तंगणों-लम्पाकों' के साथ (द्रोण०, १२१.४१-४३) वर्णित हैं। "कुपथास्तंगणाः खशाः "पदावली वामनपुराण तथा ब्रह्माण्डपुराण दोनों में मिलती है। 'खश', शकों से पृथक् एक हिमालयीय जाति थी, यह महाभारत से ही नहीं, **मनुस्मृति** (१०.४३.४४) तथा **मुद्राराक्षस** (अंक ४,११) से भी विदित होता है। खशों को पर्वताश्रयी, पाषाणयोधी तथा बाँसों के वन में निवास करनेवाले कहा गया है।

वस्तुतः खश हिमालय-पार उत्तर में ही नहीं, अन्यान्य हिमालयी जातियों की भाँति, इसके दक्षिण में भी निवास करते थे। ये कश्मीर से लेकर पूर्व में असम तक फैले थे। मध्य-हिमालय में आज खश जाति तो मिलती है, परन्तु झष पृथक्तः नहीं दिखायी देते।

बृहत्संहिता (१४.३०) में खस देश का तंगण, कुलूत, सैरिन्ध, वनराष्ट्र ब्रह्मपुर,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कौणिन्द, आदि देशों के साथ वर्णन है जो समस्त हिमालय के इस पार के जनपद हैं। प्रायः दशम शती की कृति राजशेखर - कृत काव्यमीमांसा में मध्य-हिमालय के कार्त्तिकेयनगर में किसी खशाधिपति का उल्लेख है जो गुप्तकाल में हिमालय के इस पार शासन करता था। आगे, चन्देल यशोवर्म्मन् के खजुराहो - लेख (वि०सं० १०११) में "तुलित खसबलः", तथा सहणपाल के बोधगया - शिलालेख पंक्ति ३ (लक्ष्मण० सं० ७४) में बौद्ध राजा अशोकचल्ल के लिए "सपादलक्षशिखरिखसदेश - राजाधिराज" के निर्देश भी हमें इस तथ्य को स्वीकार करने के लिए वाध्य करते हैं कि संभवतः गुप्तकाल से बारहवीं शती तक गढ़वाल-कुमाऊँ तथा पश्चिमी नेपाल (डोटी) प्रदेश को ही कभी उत्तर भारत के लोग खशदेश के नाम से जानते थे। आद्य - ऐतिहासिक और आरम्भिक ऐतिहासिक काल का सम्भवतः कोई संदर्भ गढ़वाल-कुमाऊँ प्रदेश को ही अनन्यरूपेण 'खशदेश' सिद्ध नहीं करता। यद्यपि यहाँ अन्य पर्वताश्रयी जातियों के साथ खश भी पुराकाल से निवास कर रहे थे।

दि० चं० सरकार के मतानुसार, खस कश्मीर में रहते थे तथा कश्मीर के खक्क ही खश हैं (जि० ए० मे० इं०, पृ० ४५ तथा ७०)। हमारा अभिमत है कि कश्मीर के खक्क भी खश हो सकते हैं, परन्तु मात्र कश्मीर ही इस जाति का निवास नहीं था।

६. गोविषाण

चीनी यात्री युवान्-च्वाङ् मो-ति-पु-लो= मण्डावर से दक्षिण-पूर्व में ४०० लि = ६७ मील की दूरी पर किउ-पि-श्वंग्-न राज्य में पहुँचा। एम० जूलियन ने इसका अनुवाद 'गोविषाण' किया है। यात्री के अनुसार, १५ लि = २ १/२ मील की परिधि में फैली इसकी राजधानी गोविषाण एक ऊँचे स्थान पर अवस्थित तथा चतुर्दिक झाड़ियों, सरोवरों - पोखरों से घिरी होने के कारण दुर्गम थी (जूलियन, Hiouen Thsang, II, २३३ मानचित्र सं० १० - कनिं०, एन्० जि० इं०, पृ० ३०० में उद्धृत)। ए० कनिंघम ने गोविषाण-नगर की पहचान काशीपुर से मात्र एक मील पूर्व में स्थित उजैन ग्राम के निकटवर्ती प्राचीन दुर्ग से की है। उसके अनुसार, नगर के दक्षिणी ध्वंसों को मिलाकर इस दुर्ग की परिधि यात्री द्वारा निर्दिष्ट परिधि के समरूप हो जाती है। सरोवरों में से द्रोण-सागर सबसे बड़ा है तथा पवित्र माना जाता है। उजैन-दुर्ग की लम्बाई पूर्व से पश्चिम में ३,००० फुट तथा चौड़ाई १,५०० फुट है। उसकी भित्तियाँ १५x१०x२.५ इंच की विशाल इष्टकाओं से निर्मित हैं। (कनिं०, एन्० जि० इं०, पृ० ३००-३०२)।

२००० लि= ३३३ मील की परिधि में विस्तृत गोविषाण-जनपद के उत्तर में ब्रह्मपुर, पश्चिम में मंडावर और दक्षिण-पूर्व में अहिच्छत्रा राज्य थें। अतएव इसमें वर्तमान काशीपुर, रामपुर और पीलीभीत के जनपद सम्मिलित रहे होंगे, तथा इसका विस्तार पश्चिम में रामगंगा

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से पूर्व में शारदा (घाघरा) तक तथा दक्षिण में बरेली तक था (कर्नि०, पूर्वोक्त, पृ० ३०२)।

गोविषाण-दुर्ग से शुंगकालीन अवशेष तथा कुषाणकालीन मुद्राएँ प्राप्त हो चुकी हैं। 'मातृमित्र' तथा 'पृथिवीमित्र' अंकित तृतीय शती ईसवी की दो खण्डित इष्टकाएँ भी यहाँ से मिली हैं।

१०, तड्.गण-देश, टड्.गणपुर-विषय

मध्य-हिमालय में किरात प्रजातीय तंगणों का लोकसमूह ("तङ्गणाः") और उनका देश। पाठभेदः तड्.कणान् (रामा० कि० ४३.१२), तङ्गण (महाभारत, वामनादिपु०, बृहत् सं०), त्वड्.गण (मार्क० पु० ५७.४१), टड्.णापुर - विषय (सरकार का पाठ, पाण्डुकेश्वर - ताम्रपत्र), तंगनोई (ताल्मी, ८.११.१३)। तड्.गण के साथ-साथ निर्दिष्ट अन्य लोकसमूह अथवा देशों के नामों के उदाहरण हैं :- "खशा एकाशना ज्योहाः प्रदरा दीर्घविणवः। पशुपाः कुणिन्दाः तङ्गणाः परतङ्गणाः।। (सभापर्व, ४८.३- पारडी/ ५२.३-गीता०)। हिमालयवासी ये जन साथ-साथ युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में पिपीलिक स्वर्ण-द्रोण, चामर तथा मधु भेंट में लाये थे और भारतीय युद्ध में कौरव पक्ष की ओर से लड़े थे। "कुणिन्दास्तंगणाम्बष्ठा": (द्रोणपर्व, ६७.१४)। "दरदैः खश तङ्गणैः" (द्रोण०, ६७.३६)। तङ्गण, किरात-पु (कु) लिन्दों सहित सुबाहु-विषय में निवास करते थे (वनपर्व, १४०.२५ - गीता०)। "दरद - तङ्गण - कुलूत" (बृ० सं० १४.२६)। "-जागुडान्- रामठान्-मुण्डान्-स्त्रीराज्यमथ - तंगणान्" (आरण्यक०, ४८.२१ - पारडी), जो युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में आये थे। "कुपथास्तंगणाः खशाः" (वामनपु०, १३.५६) जो पर्वताश्रयी देश थे ; इत्यादि।

मार्कण्डेयपुराण में 'त्वड्.गण' तथा बृहत्संहिता में 'तंगण' देश-नाम कहे गये हैं। खुद्दकनिकाय के महानिद्देश (नालंदा-संस्क०, पृ० १२६.३०) में तो यह स्पष्टतः देशवाची वर्णित है - ".....सुरट्ठं गच्छति भंगलोकं गच्छति तंगणं गच्छति परतंगणं गच्छति ....."।

कार्त्तिकेयपुरीय नरेश पद्मटदेव तथा सुभिक्षराजदेव के पाण्डुकेश्वर ताम्रपत्राभिलेखों (एपि० इं०, खण्ड ३१, पृ० २८४-२९८) में उनके टंगण (णा) पुर-विषय का उल्लेख मिलता है, जिसमें 'योशि' तथा 'द्रुमती' अवस्थित थे। अस्तु टड्.गणपुर - विषय महाहिमालय की भोटान्तिक घाटियों में, दक्षिण में प्रायः जोशीमठ एवं गरुडगंगा तक तथा पश्चिम में यमुना से पूर्व में शारदा नदी तक के हिमालय में फैला था, जिसके दक्षिण में इन शासकों का 'कार्त्तिकेयपुर - विषय' अवस्थित था। कुमाऊँ के वर्तमान टंगणियाँ क्षत्रिय प्राचीन तंगणों से सम्बन्धित हो सकते हैं। उक्त शासकों के 'टड्.गणपुर-विषय' के मुख्यालय का नाम भी टंगणपुर रहा होगा। जोशीमठ का समीपवर्ती 'टंगणी गाँव' प्राचीन टड्.गणपुर हो सकता है, अथवा इस जाति का एक लघु

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सन्निवेश-मात्र।

'परतगंण' हिमद्रवरों के पार उत्तर में रहते थे। अ० वि० अवस्थी (प्राचीन भार० भूगोल, पृ० १०६) इनकी पहचान "मध्य एशिया के काशगर क्षेत्र में बसी तंगण जाति से" करते हैं।

११. दुर्म्योर्ग-विषय

नवीं शती ईसवी में, दुर्म्योर्ग कार्त्तिकेयपुर- शासकों के अधीन छठा 'विषय' था। इसका ज्ञान, लेखक द्वारा ललितशूरदेव के कण्डारा-ताम्रपत्र की खोज से हुआ है (उत्तराखण्ड भारती, भाग २ (२), कुमाऊँ विश्ववि० नैनीताल, १६७७, पृ० २१६ तथा आगे)। इस विषय-नाम के अन्य पाठान्तर एवं विवरण अन्यत्र भी मिले हैं। अप्रकाशित पोथी 'रामायण प्रदीप' और 'गढ़वाल के एक प्राचीन वृतान्त में क्रमशः दुर्माग वा दुमग देश का स्वामी मंगलसेन वा मंगलसिंह बताया गया है जो चाँदपुर-नरेश अजेयपाल से विजित हुआ था और जिसकी राजधानी कण्डारागढ़ थी। 'रामायण - प्रदीप' (१.१६.२०) में मंगलसेन द्वारा शासित प्रदेश दक्षिण में दिल्ली के सुल्तान की राज्य-सीमा से मिला कहा गया है (दुर्मार्गदिशाधिपतिं महान्तं दिल्लीश सीमावधिभूमिभागम्")। गढ़वाल के पुराने 'जागरों' में दुमाग नाम आता है - "सात लाख सलाण कु चली, नौ लाख दुमाग कु चली"। पन्द्रहवीं शती ई० अन्त के एक कुमाउँनी लेख में भी दुर्मार्ग का उल्लेख हुआ है जिसमें वर्णित है कि चन्दवंशीय राजय कीर्तिचन्द (१४८८-१५०३ ई०) एक कनफटा जोगी नागनाथ के प्रभाव से इतना बली हो गया कि उसके भय से गढ़ का राजा भागकर 'दुमाक' चला गया, "गढ़ को राजा भाजी बेर दुमाक गयो ...." (पाण्डे, ब०, कुमाऊँ का इतिहास, पृ० २५२)। यद्यपि यह एक अतिशयोक्तिपूर्ण कथन ही है। अभी तो उसकी सीमा से लगे कत्यूर, दानपुर आदि प्रदेश तक उसके शासनान्तर्गत नहीं आये थे। अस्तु, इस लेख की ऐतिहासिकता सिद्ध न हो, तथापि इसमें 'दुमाक' नाम का निर्देश महत्वपूर्ण है।

उक्त स्रोतों के आधार पर दुर्म्योर्ग - विषय की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। इस 'विषय' में मन्दाकिनी तटीय कण्डारागढ़ अवस्थित होने से यह चाँदपुर-मण्डल के पश्चिम में होना चाहिए। कातियुर शासकों का यह पश्चिमी ' विषय' अलकनन्दा के पश्चिम में मन्दाकिनी और भिल्लांगना की घाटियों में विस्तृत था। यद्यपि आज नागपुरी लोग भीरी से उपरले प्रदेश को ही 'दुमाग' कहते हैं, तथापि कभी नागपुर-मण्डल का समस्त पश्चिमी भाग तथा उससे संबद्ध टिहरी गढ़वाल का कम-से-कम पूर्वी भाग इसमें सम्मिलित था। चमोली गढ़वाल जनपद की पट्टी बामसू में नाग-जगै तथा गुप्तकाशी के समीप देवर ग्राम दुमगा क्षत्रियों के पुराने गाँव हैं। टिहरी-गढ़वाल के मुसादुंगी, कुमड़ी (सिलगढ़ पट्टी), रणकण्ड्याल (कड़ाकोट पट्टी), मांजब (ओण पट्टी), आदि ग्रामों में भी दुमगा क्षत्रिय निवास करते हैं। ये सब प्राचीन दुर्मोर्ग से सम्बन्धित रहे होंगे। विदित होता है, "नौ लाख दुमाग," सात लाख सलाण से अधिक विस्तृत

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रदेश था। (मानचित्र संख्या - ३)

१२. द्रोणी-घाट

दून-घाटी, जो गंगाद्वार से पश्चिम में यमुना नदी पर्यन्त विस्तृत है। महापरिनिब्बानसुत्त के अनुसार, द्रोण के ब्राह्मणों ने बुद्ध भगवान् के भस्मावशेषों पर स्तूप का निर्माण करवाया था। शुंगकाल में इसका 'द्रोणी-घाट' नाम प्रचलित था। (भद्रमित्र का मृण्मुद्रा-लेख)। अपर नाम 'द्रोणाश्रम' और 'द्रोणक्षेत्र' (केदारखण्ड, १०२.७; १२५.३)।

१३. पर्व्वताकर-राज्य

अल्मोड़ा जनपद से प्राप्त तालेश्वर - ताम्रपत्राभिलेखों (एपि० इं०, १३, पृ० १०६ तथा आगे) में छठी शती ई० के आसपास पौरववंशीय प० म० द्युतिवर्म्मन् तथा प० म० विष्णुवर्म्मन् के पर्व्वताकर-राज्य का उल्लेख है जिसकी राजधानी ब्रह्मपुर थी। विदित होता है, सातवीं शती ईसवीं में भारत आये चीनी यात्री युवान्-च्वाङ् ने इसी राज्य को 'पो-लो-कि-मो-पु-लो=' ब्रह्मपुर कहा है। इस राज्य की सीमाओं के लिए, द्रष्टव्य आगे, ब्रह्मपुर-जनपद।

१४. पर्वतीय, पार्वतीय

हिमालय में यमुनाकूल - अवस्थित पंचगाई, सिंगतूर तथा फतेपर्वत - अञ्चल के वर्तमान 'पर्वती' (य) जन और उनका प्रदेश 'पर्वत'। टोंस - द्रोणी का यह उपरला प्रदेश टकनौर के पश्चिम में स्थित है।

महाभारत में इस पाषाणयोधी लोकसमूह का जनपदों में वर्णन हुआ है। ('पार्वतीयाः', भीष्मपर्व, १०.५६; द्रोणपर्व, १७.१५ पारडी सं०)। युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में ये जन भेंट लेकर आये थे (सभापर्व, ४८.७) तथा भारतीय-युद्ध में कौरव-पक्ष से लड़े थे। (उद्योग०, ३०.२४; कर्ण० ३१.१३)। यमुनातटवर्ती 'पारावत' नामक वैदिककालीन जन यही प्रतीत होते हैं जिनके दानों का वर्णन वसुरोचिष् की दानस्तुतियों में किया गया है (ऋक्० ८.३४.१८)। ऋग्वेद (६.६१.२) में ही सरस्वती नदी को पारावतों का वध करनेवाली (पारावतघ्नी) कहा गया है। इस निर्देश से भी पारावतों के यमुनातटवर्ती होने की पुष्टि विद्वान् मानते हैं। पञ्चविंशब्राह्मण (६.४.१०-११) में भी "पारावतगण" नाम से इनका निर्देश मिलता है और उनकी स्थिति यहीं यमुनातटवर्ती बतायी गयी है। इस लोकसमूह का वर्तमान नाम 'पर्वती' (य) ही है, तथा इनके कौरव दुर्योधन आराध्य होने के कारण निश्चिततः ये ही महाभारतकालीन पर्वतीय हैं। अस्तु, "इन लोगों का मूलनाम 'पर्वतीय' था एवं पश्चात् अपभ्रंश से 'पारावत' बना" (प्राचीन चरित्रकोश, पृ० ४१४), विद्वानों के इस निष्कर्ष से हम सहमत हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१५. ब्रह्मपुर-जनपद

मार्कण्डेयपुराण (५८.५०) के अनुसार, ब्रह्मपुरक के एक ओर (यमुना-तटस्थ) वनराष्ट्रक और दूसरी ओर किरात - कौशिक - एकपाद - खस देश हैं। बृहत्संहिता (१४.३०) में भी "तङ्गण-कुलूत - सैरिन्ध्र - वनराष्ट्र " के पश्चात् 'ब्रह्मपुर' देश का नामोल्लेख है। ब्रह्मपुर का निर्देश पञ्चम शती ई० पू० के ग्रीक हेरोडोटस (३,१०२) में भी मिलता है। परन्तु ब्रह्मपुर - जनपद और इसी नाम की राजधानी के विषय में सप्तम शती ई० के तीसरे - चौथे दशक में भारत - भ्रमण पर आये चीनी यात्री युवान्-च्वाङ्. का वृतान्त अधिक विस्तृत है (जूलियन, खण्ड २, पृ० २३१; वाटर्स, खण्ड १, पृ० ३२९-३३०; बील, खण्ड १, पृ० १९८)। वाटर्स (Thomas Watters) के शब्दों में :-

"यहाँ से (मो-यु-लो = मयूर से/ कनिंघम के अनुसार मंडावर से) ३०० लि (=५०मील) से भी अधिक उत्तर की ओर जाने पर पो-लो-कि-मो-पु-लो नामक देश मिला जो ४,००० लि (=६६७ मील) से भी अधिक परिधि में विस्तृत, चारों ओर पर्वतों से घिरा हुआ है। राजधानी की परिधि २० लि से अधिक है। ..... देश में ताम्र और शैल-स्फट (rock - Crystal) का आधिक्य है। जलवायु अति ठंडी है। यहाँ के लोग कठोर स्वभाववाले हैं। वे अध्ययन की ओर ध्यान नहीं देते, व्यापार में रुचि लेते हैं। यहाँ पाँच बौद्ध बिहार हैं परन्तु उनमें अत्यल्प भिक्षु रहते हैं। बौद्धेतर भी बौद्धों के साथ मिल-जुलकर रहते हैं। दश देवमन्दिर हैं जिसमें विविध विचारों के मामनेवाले एक साथ रहते हैं।

यह देश उत्तर में हिमाच्छादित पर्वतों से घिरा है जिनके मध्य में सुवर्णगोत्र(सु-फ-ल-न-किओ-त-लो) नामक देश है ।... यह वही देश है जिसे "पूर्वी - स्त्रीराज्य" कहते हैं। यहाँ युगों से एक स्त्री का शासन चलता है, इसलिए यह 'स्त्रीराज्य' कहलाता है। ...यहाँ शीतकालीन गेहूँ उत्पन्न होता है तथा गायों, भेड़ों और घोड़ों का आधिक्य है। जलवायु हिम के समान ठंडी है। इस राज्य के पूर्व में 'फन' राज्य (= तिब्बत), पश्चिम में 'सन-पो-हो' (= सम्पात, सम्पह?) और उत्तर में खोतान है। "

- On Yuan Chwang, Vol. I, pp. 329-330.

युवान्-च्वाङ्. के पो-लो-कि-मो-पु-लो को एम० जूलियन (Hiouen - Thsang, खण्ड १, पेरिस, १८५७, पृ० २२१) ने 'ब्रह्मपुर' माना, और कनिंघम ने इस एकता का समर्थन किया है।

१९१५ ई० में अलमोड़ा जनपद से प्राप्त प०म० श्री- द्युतिवर्म्मन् तथा प० म० श्री - विष्णुवर्म्मन् के तालेश्वर - ताम्रपत्राभिलेखों में पौरव नरेशों के पर्व्वताकर-राज्य तथा उसकी राजधानी ब्रह्मपुर के वर्णन से प्राचीन 'ब्रह्मपुर - जनपद' पर नया प्रकाश पड़ा है। इन दो ताम्रपत्रों का काल लिपि के आधार पर वाई०आर० गुप्ते (एपि० इं०, खण्ड १३, संख्या ७, पृ०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१०६-१२१) ने छठी-आठवीं शती ई० के मध्य कभी, तथा दि० चं० सरकार ने छठी शती ई० माना है। गुप्ते ने पर्व्वताकर-राज्य की एकता "गढ़वाल" से की "जिसमें अल्मोड़ा जनपद की कत्यूर - उपत्यका भी सम्मिलित रही होगी" (पूर्वोक्त, पृ० ११४)। ए० कनिंघम (ऐं० जि० इं०, पृ० ४०७-८) के अनुसार, "ब्रह्मपुर - राज्य में अलकनन्दा और करनाली नदियों का मध्यवर्ती सम्पूर्ण पर्वतीय प्रदेश, वर्तमान ब्रिटिश गढ़वाल और कुमाऊँ, सम्मिलित रहा होगा, क्योंकि गोरखा - विजय से पूर्व कुमाऊँ करनाली तक विस्तृत था।" उक्त मतों तथा 'वीरणेश्वर' की पहचान को दृष्टि में रखते हुए, मात्र "कुमाऊँनी पहाड़ियों" से डॉ० म० चं० भट्ट (*स्टडीज* अंक ५, नैनीताल, १९६८, पृ० ७८), द्वारा की गयी पर्वताकर - राज्य की एकता हमें ग्राह्य नहीं है। तालेश्वर-ताम्रपत्रों से विदित होता है कि प्राचीन ब्रह्मपुर राज्य ही इनमें पर्वताकर - राज्य कहा गया है जिसकी राजधानी 'ब्रह्मपुर' थी (द्र० आगे, ब्रह्मपुर नगर)। डॉ० र० प्र० त्रिपाठी के अनुसार, ब्रह्मपुर - राज्य हर्ष के शासन के अन्तर्गत था (हिस्टॅरि ऑव् कन्नौज, पृ० ११५ - ११६)। (मानचित्र सं० - २)

१६. माल

मध्य - हिमालय का पाद-प्रदेश अर्थात् तराई - भाभर। मैदान से अल्प उच्च भूमि प्रदेश ("मालं उन्नत भूतलम्", अमर)। महाभारत (भीष्म०, ६.३६) में 'माल' उत्तर के जनपदों में वर्णित है - "पुलिन्दाश्च बोधा मालाः ..."। सोलहवीं शती ई० के अन्त में यह तराई-भाभर प्रदेश "चौरासी-माल" अथवा "नौलखिया-माल" कहलाता था (पाण्डे, ब०, कुमाऊँ का इतिहास, पृ० ६० तथा २६२)। आज भी पर्वतीय जन इसे 'माल' ही कहते हैं। अतएव मेघदूत (पूर्व०, १६) में वर्णित रामगिरि का उत्तर दिशावर्ती 'माल' प्रदेश यही होगा। यतः रामायण (कि०, ४०.२२) में पूर्वी देशों में "ब्रह्ममाल" का उल्लेख है, और राजशेखर (काव्य०, अ०३) पूर्वी देशों की सूची में ब्रह्म जनपद का उल्लेख करता है। अतः अ० वि० लाल अवस्थी का मत है कि "सम्भवतः 'ब्रह्म' और 'माल' दो पृथक् देश थे" (प्रा० भा० भू०, पृ० १७६)।

१७. यामुन-देश

द्रष्टव्य, कालपर्वत ।

१८. युग, युगशैल

नृपति शीलवर्मन् के बाड़वाला इष्टका-लेख में उसे 'युगशैल-महीपति' कहा गया है-

"युगेश्वरस्याश्वमेधे युगशैल-महीपतिः।" (सरकार, सिलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स)। 'युगशैल' देश का अन्य स्रोतों से अब तक ज्ञान नहीं हुआ। परन्तु 'युगन्धर' नामक पर्वतीय जनपद का

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उल्लेख महाभारत (वन0, १२६.६ -गीता0; भीष्म0, १0.४0 - पारडी0) तथा अष्टाध्यायी (४.२.१३0) में है। डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, द्वि0 सं0, पृ0 ७२) युगन्धर की पहचान इष्टका-लेख के युगशैल देश से करते हैं। उनके अनुसार, यमुना का तटवर्ती यह राज्य सम्भवतः अम्बाला जनपद में सरस्वती से यमुना तक फैला हुआ, युग नामक पर्वतीय प्रदेश था। परन्तु हमारे विचार से, शीलवर्मन् के अश्वमेध-स्थल की स्थिति को देखते हुए उसका यह राज्य यमुना के पूर्व में भी फैला हुआ ज्ञात होता है। राहुल (जीवन-यात्रा (५), पृ0 ४१३-१४) के अनुसार भी "उस समय पास के पहाड़ों का नाम युगशैल था जिसका व महीपति था।" अतएव युगशैल जनपद का विस्तार वर्तमान देहरादून जनपद में, यमुना के उभय तटीय पर्वतीय प्रदेश में था।

पाणिनि युग में, युग अथवा युगन्धर में शाल्व क्षत्रियों का राजतन्त्र शासन था।

१६. विष्णुधर्म्मण-विषय

स्यात् अलमोड़ा जनपद में बागेश्वर-क्षेत्र। भूदेवदेव के बागेश्वर-शिलालेख में इसे कार्तिकेयपुरीय शासकों के अधीन एक 'विषय' बताया गया है जो 'जयकूल-भुक्ति' के अन्तर्गत था (ज0 ए0 सो0 बं0, खण्ड ७, दिस0 १८३८, पृ0 १0५६-५७)।

२0. सुघ्न

चीनी यात्री युवान्-च्वाङ् ने 'सु-लु-किन-न' (su-lu-Kin-na) जनपद का विवरण दिया है जहाँ पर स्थाणीश्वर से १00 लि गोकण्ठ विहार तथा वहाँ से ४00 लि = ६६ २/३ मील चलकर पहुँचा था (वाटर्स, १, पृ0 ३१७-२२)। जूलियन, बील और वाटर्स ने इसका अनुवाद 'सुघ्न' किया। धनभूति के भारहुत तोरण - लेख (कनिंघम, स्तूप ऑव् भारहुत, पृ0 १२८) में अंकित सुगनं - रजे का भी अनुवाद ए0 कनिंघम और रा.ला. मित्र ने 'सुघ्न-राज्ये' किया, जो संगत लगता है। यात्री के वृतान्त के आधार पर, कनिंघम (एं0 जि0 इं0, पृ0 २६२ तथा आगे) का मत है कि सुघ्न राज्य पश्चिम में गिरि नदी से पूर्व में गंगा तक फैला था, जिसमें अम्बाला और सहारनपुर जनपदों के कुछ भागों सहित गढ़वाल और सिरमौर के पर्वतीय क्षेत्र सम्मिलित थे। निश्चय ही, यमुना के पश्चिमी प्रवाह-क्षेत्र से लेकर देहरादून और भूतपूर्व टिहरी राज्य तक इस जनपद का विस्तार था। वस्तुतः यह प्राचीन कुणिन्द जनपद का एक भाग था।

कनिंघम के अनुसार, सुघ्न राज्य की राजधानी सुघ्न नगर वर्तमान सुघ ग्राम है जो कालसी से अल्प दक्षिण में यमुना के दायें तट पर अम्बाला जनपद में है, और जहाँ कुणिन्द राजा अमोघभूति तथा यवन राजा अपोलोदोतस की बहु संख्या में मुद्राएँ मिली हैं (कर्नि0 आ0

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स0 रि0, २, १८७१ ई0, २२६-२३१ तथा खण्ड १४, पृ0 १३४; एं0 जि0 इं0, पृ0 २६०-६२)। "सुघ गङ्गा की अन्तर्वेदी से, मेरठ, सहारनपुर और अम्बाला से होकर, उपरले पंजाब को जानेवाले राजपथ पर अवस्थित था" (कनिं0 आ0 स0 रि0, २, पृ0 २२६)। राहुल सांकृत्यायन भी इस एकता का समर्थन करते हुए कहते हैं कि "गुप्तकाल से पूर्व सुघ्न उत्तरी भारत का एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र था। उत्तरापथ (पंजाब) से मगध को जानेवाला व्यापार-मार्ग यहीं से होकर जाता था, इसलिए उसका बड़ा महत्व था। गुप्तों और शकों के संघर्ष के समय सुघ्न उजड़ गया" (जौनसार - देहरादून, १६६१ ई0, पृ0 ४५)। युवान्-च्वाङ्. की यहाँ यात्रा के समय नगर का अधिक भाग ध्वस्त हो चुका था। कुछ विद्वान् यमुना-गिरि संगम पर स्थित 'सिंहपुर' ग्राम को, अथवा यमुना के दक्षिण तटस्थ 'कालसी' को ही प्राचीन सुघ्न नगर मानने का प्रस्ताव करते हैं (क्रमशः डबराल, *उ0 इ0*, १, पृ0 २११ तथा म0 चं0 भट्ट, *साप्ताहिक हिन्दुस्तान्* २१ जून १६७0, पृ0 ३0। शा0 द्विवेदी ने तदन्तर *पर्व0 इ0 प0 की शोधपत्रिका* के अंक १ (१६७२ ई0, पृ0 १५-२५) में इसकी 'कालसी' से एकता बतायी, परन्तु इन्हें स्वीकार करना कठिन है।

मूल-सर्वास्तिवादियों के विनय के अनुसार, वैसाली की द्वितीय संगीति में जो सात प्रमुख स्थानों से भिक्षु आमन्त्रित किये गये थे उनमें सुघ्नवासी भिक्षु भी थे। इस संगीति के समय सुघ्न (Lieu-Chuan) में प्रधान भिक्षु उत्तर था (तु0, त्रिपिटक, टोकियो संस्करण, १७,२, पृ0 ६६ ए)। पालि **चुल्लबग्ग** के साक्ष्य से भी उत्तर संगीति में भाग लेनेवाले प्रभावशाली भिक्षुओं में से एक था। ज्याँ प्रज्लुस्की (Jean Przyluski) का यह कथन सत्य है कि जिन स्थानों से भिक्षु आमन्त्रित हुए थे वे 'विनय' की रचना के समय प्रसिद्ध बौद्ध-मठ थे। (**दि लेजन्ड ऑव् इम्परर अशोक** (आंग्ल अनु0), कलकत्ता, १६६७, पृ0 ७६)। दिव्यावदान और युवान्-च्वाङ्. की साक्षी के अनुसार, बुद्ध सुघ्न तक पहुँचे थे।

स्थल, पुर

१. अत्रि-आश्रम

अत्रि-आश्रम। गढ़वाल हिमालय में, गोपेश्वर के समीप। रामायण (२.११७.५) में वर्णित अत्रि-आश्रम दक्षिण भारत में था, परन्तु महाभारत में, हिमालयवर्ती इसी अत्रि-आश्रम की ओर संकेत है। उदाहरणार्थ, उत्तर-दिशावासी अत्रि, कुबेर के गुरु एवं ऋत्विज थे (अनुशासनपर्व, अ0 १५0)। इसी पर्व में आगे उत्तर दिशा के तपःसिद्ध ब्रह्मर्षियों में अत्रि, वशिष्ठ, शक्ति, व्यास, आदि की गणना की गयी है (अनुशा0, १६५. ४३-४६)।

२. कण्वाश्रम

गढ़वाल हिमालय के माल प्रदेश में, मालिनी तटवर्ती कण्वाश्रम। हरिद्वार से पूर्व में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चौकीघाट के समीपस्थ यह स्थल हस्तिनापुर से प्रायः तीन-चार दिन की यात्रा के अन्तर पर है। मालिनी-तटवर्ती भूमि यहाँ ऊँची-नीची ("विषम") है, समीप ही रम्य पर्वत् श्रेणियाँ हैं तथा यह स्थल अपने नैसर्गिक सौन्दर्य के लिए प्रख्यात है। किन्हीं कण्वाश्रमों को कभी चम्बल तटीय (वनपर्व, अ० ८२; अग्निपु०, अ० १०९), कभी दक्षिण भारतीय तीर्थों में प्रवेणी के उत्तर में (वनपर्व, अ० ८३) तथा कभी नर्मदा तटीय (पद्मपुराण, अ० ६४) भी बताया गया है। परन्तु वे काण्व शाखा के परवर्ती अन्य ऋषियों के आश्रम रहे होंगे। स्कन्दपु० (अ० ५७) में कण्वाश्रम को स्पष्टतः बदरीवन में बताया गया है। केदारखण्ड (५७. १०-११) के अनुसार भी, यह केदारमण्डल की दक्षिणी सीमा पर था, और यहाँ विष्णु-दर्शनार्थ यात्री आते थे।

शतपथब्राह्मण (१३.५.४.१३) में यह आश्रम नाडपित् स्थान पर वर्णित है - "शकुन्तला नाडपित्यप्सरा भरतं दधे"। यदि 'नाडपिति' + 'अप्सरा' विच्छेद करें तो इसका अर्थ है, नाडपित् स्थान पर अप्सरा शकुन्तला ने भरत को गर्भ में धारण किया। 'नाडपित्' शब्द को टीकाकार हरिस्वामी ने कण्वाश्रम माना है। आचार्य सायण ने इस शब्द का अर्थ 'पड़' ('पड़ाव' के अर्थ में) किया है। विस्तृत क्षेत्र में आश्रम के फैले होने से, और पर्वत से उतरनेवाले एवं दक्षिण से हिमालय की यात्रा करनेवाले जनसमूह का यहाँ पड़ाव होने से इस स्थल का नाम 'नाडपित्' सर्वथा संगत था।

ऋग्वेद (१०.७१) के 'किल्विषसूक्त' में कण्वाश्रम का उल्लेख है। 'हिमवत्प्रस्थ' पर मालिनी के किनारे शकुन्तला के उत्पन्न होने का वर्णन महाभारत के आदिपर्व (६६.८) में मिलता है: "प्रस्थेहिमवतो रम्ये मालिनीमभितोनदीम्।" आदिपर्व में आगे भी हिमवत्प्रस्थ के स्थान पर 'हिमवतः पृष्ठे' शब्द का प्रयोग है (६८.६९ पारडी सं०)। मेधातिथि-पुत्र महर्षि कण्व ने यहाँ शकुन्तला को कन्या रूप में ग्रहण किया था। यहीं शकुन्तला से हस्तिनापुर - नरेश दुष्यन्त-पुत्र भरत का जन्म हुआ। शतपथब्राह्मण, महाभारत तथा पद्मपुराण में मूलतः वर्णित शकुन्तलोपाख्यान, वास्तव में, भारतीय इतिहास का एक सत्य है। गुप्तकाल में महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में इस कथानक को अमर कर दिया। महाकवि ने भी 'पावन गौरीगुरु के पाद में' तथा 'हिमगिरि - उपत्यकारण्य' की 'उद्धातिनी भूमि' में अवस्थित इस आश्रम का वर्णन किया है। मालिनी - तटवर्ती कण्वाश्रम के विवरण 'विष्णुधर्मसूत्र' एवं 'रामायण' में भी द्रष्टव्य हैं।

परन्तु ये कण्व कौन-से थे? वैदिक सूक्तद्रष्टा गोत्रप्रवर्तक घोर-पुत्र कण्व, अथवा मेधातिथि - पुत्र कण्व ? अंगिरस गोत्रोत्पन्न कण्व अथवा कश्यपगोत्रोत्पन्न कण्व? ऋग्वेद के प्रथम, द्वितीय एवं अष्टम मण्डलों में वर्णित वैदिक सूक्तद्रष्टा 'मेधातिथि काण्व' अथवा वायु, मत्स्य, विष्णु एवं गरुड पुराणों में वर्णित पौरव-राजा अजमीढ - पुत्र कण्व ? ऋग्वेद के अष्टम

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मण्डल में देवातिथि काण्व, वत्स काण्व, सध्वंस काण्व, पृषध्र काण्व एवं प्रगाथ काण्व नामक वैदिक सूक्तद्रष्टा ऋषियों के नाम मिलते हैं। काण्वशाखा के इन वैदिक आचार्यों में से मालिनीतटवर्ती ऋषि कौन थे जिन्होंने कन्या रूप में शकुन्तला का पालन किया? मालिनीतटवर्ती मेधातिथि - पुत्र कश्यपगोत्रोत्पन्न ऋषि कण्व ("काश्यपं कण्वं") के अधिकांश निर्देश महाभारत - आदिपर्व में मिलते हैं। मालिनीतटवर्ती कण्व-आश्रम की महता को देखते हुए, ज्ञात होता है कि यही स्थल वैदिक सूक्तद्रष्टा काण्व ऋषियों का आश्रम था। अतएव इस आश्रम - स्थल को किसी एक कण्व ऋषि से सम्बद्ध न मानकर, काण्वशाखा की विद्या का केन्द्र मानना संगत है।

भारत के एक महान् विद्यापीठ के रूप में, काण्वशाखा के वैदिक आचार्यों द्वारा प्रतिष्ठित यह कण्वाश्रम, जिसका अधिष्ठाता कुलपति कहलाता था, निश्चिततः हिमवत्प्रस्थ पर मालिनी के उभयतटों पर फैला था ("**मालिनीमभितोनदीम्**")। पर्वत से गिरे हुए शिलाखण्डों से युक्त वहाँ की विषमभूमि का ("**विषमं पर्वतप्रस्तैरश्मभिश्च समावृतम्**" ।), आश्रम से ही होकर बहनेवाली ("आश्रम संश्लिष्टा", "नदीमाश्रम सम्बद्धा") और तपोवन से मनोरम बनी मालिनी का, तथा वेदपारग विद्वानों से परिपूर्ण एवं वेद-प्रवर मुनिगणों द्वारा पदक्रम से उच्चरित ध्वनि से शोभित आश्रम का मौलिक तथा यथातथ्य वर्णन महाभारत के आदिपर्व (मुख्यतः अ० ६४) में मिलता है। परवर्ती ग्रन्थ केदारखण्ड में भी वर्णित है कि यह आश्रम "बदरीनाथक्षेत्र में स्थित है और कुछ यात्रीगण गंगाद्वार से पूर्व में स्थित कण्वाश्रम होकर केदार-बदरी के दर्शन करते थे (अ० ६२)"। 'केदारखण्ड' के इस वर्णन से सिद्ध होता है कि मध्यकाल तक कण्वाश्रम की एक सांस्कृतिक तीर्थ के रूप में ख्याति बनी थी।

यह वैदिक विद्याकेन्द्र हिमवत्प्रस्थ पर मालिनी के तटों पर ही अवस्थित था, इसके अन्य भौगोलिक प्रमाण भी मिलते हैं। मालिनी लता अथवा मालु लता से परिपूरित तराई-भाभर के वनों से होकर तरंगित होने के कारण, अथवा 'माल - प्रदेश' की प्रसिद्ध नदी होने के कारण इसका मालिनी नाम पड़ा होगा। एक प्रदेश विशेष के अर्थ में माल शब्द मेघदूत (पू०, १६) में भी मिलता है। नाडपिति एवं किल्विष नामक स्थलों के अस्तित्व के अतिरिक्त, 'मलन्या' (मालिनी तटवर्ती), 'सौंट्याली-धार' (शकुन्तला-धार?) 'मरण-खेत' (मेनका-क्षेत्र?), आदि स्थल यहाँ विद्यमान हैं जो सम्भवतः मेनका एवं शकुन्तला की स्मृति के स्मारक हों। 'सतीमठ' (पुरा-नाम 'बग्वान') के आसपास भी प्राचीन बस्ती के ध्वन्सावशेष मिलते हैं। कलालघाटी से प्रायः छः मील अन्तर पर स्थित 'कीम-सेरा' (कण्व-सेरा ?) के पुरावशेष भी महत्व के हैं, परन्तु इस पर्वतीय भाग में कण्व का आश्रम नहीं था।

चौकीघाट के समीप सेमल-वाला-स्रोत में १९९२ ई० में वर्षा द्वारा भूक्षरण से मन्दिरों के जो पुरावशेष उत्पाटित हुए उनमें अधिकांश चुरा लिये गये थे। उस स्थल पर अवशिष्ट पुरावशेषों

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में लेखक को चैत्यगवाक्ष-खण्ड, भूमि - आमलक, स्तम्भ-शीर्ष, प्रासाद कटि के प्रस्तर प्राप्त हुए। श्रीनगर संग्रहालय में भी यहाँ से जो अवशेष पहुँचे उनमें भी समस्त वास्तु-खण्ड ही हैं। इस भूक्षरण के फलस्वरूप प्रकाश में आयी इस सामग्री से वर्षों पूर्व, मुझे कण्व के नवीन मन्दिर में तीन तथा चौकीघाट के वर्तमान शिवालय में दो वास्तु-खण्ड इस काल के प्राप्त हो चुके थे। एक शैव संश्लिष्ट मूर्ति तथा रथिका - बिम्बयुक्त एक कटि - प्रस्तर भी इस लेखक को समीपवर्ती नया- उदयरामपुर गाँव के वर्तमान मन्दिर में प्राप्त हुए जो निश्चिततः कण्वाश्रम से यहाँ लाये गये। ये पुरावशेष भी सेम्ल-वाला-स्रोत से कभी भूक्षरण द्वारा उत्पाटित हुए होंगे। उक्त समस्त पुरावशेष आठवीं शती के आसपास निर्मित हिन्दू मन्दिरों के हैं जो कण्वाश्रम में प्रतिष्ठित थे। ये समस्त रुचक प्रासाद थे जिनमें स्थानीय भूरे रंग के बालुकाश्म का प्रयोग हुआ है। निःसंदेह, सेम्ल-वाला-स्रोत तथा समीपवर्ती भूमि के गर्भ में कण्वाश्रम के इतिहास के महत्वपूर्ण चिह्न छिपे हैं।

३. कनखल

कनखल (ज० हरिद्वार, उ० प्र०)। गंगा - नीलधारा संगम पर, हरिद्वार के पूर्व में स्थित। गङ्गाद्वार से प्रारम्भ होनेवाले हिमालय - तीर्थों के मार्ग में प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थ (वनपर्व, अ० ८८ ; योगिनीतन्त्र, उत्तर०, प० ६)। सनत्कुमार का स्थान (वनपर्व, अ. ८८) एवं दक्ष-यज्ञस्थल।

४. करवीरपुर, करवीरगर्त्ता

अल्मोड़ा जनपद का एक प्राचीन नगर अथवा ग्राम जो गोमती-घाटी में बैजनाथ ग्राम के निकट था। पौरव नरेश श्री - द्युतिवर्म्मन् के तालेश्वर ताम्रपत्राभिलेख में उल्लिखित करवीरगर्त्ता (पं०, १८) इस लेख के सम्पादक वाई० आर० गुप्ते के मत से "सम्भवतः करवीरपुर" ही है (एपि० इं०, खण्ड १३, पृष्ठ ११४)। एडविन टी० एट्किन्सन का कथन है कि इसी के ध्वंसों पर, अनुश्रुति के अनुसार, कालान्तर में 'वैद्यनाथ - कार्त्तिकेयपुर' की स्थापना हुई (हिमालय गजेटियर, खण्ड २ (१), पृ० ४६८)। अभिलेखों में आये 'गर्त्ता' शब्द की व्याख्या विद्वानों ने दो प्रकार से की है: (१) डॉ० फ्लीट ने 'गर्त्ता' का अर्थ "(सीमा - निर्धारक) खाई" माना अथवा "ग्राम के नामान्त के रूप में" स्वीकार किया (गुप्त इन्स०, "समन्तादगर्त्ता", संख्या २१, कोर्प्परगर्त्ता, संख्या २२ तथा "वालुगर्त्तानामग्रामः", संख्या २३)। (२) डॉ० के० वी० रमेश मॉनीयर विलियम्स के शब्दकोश के आधार पर इसका "श्मशान" (Grave) अर्थ मानते हैं (इं० एपि०, १, पृ० १११)। 'करवीरगर्त्ता' जैसे स्थलों के प्रसंग में डॉ० फ्लीट की व्याख्या अधिक संगत लगती है। हिमालय प्रदेश में 'गहरी' स्थिति वाले गाँवों को "गैर" कहते हैं, तथा कभी "गैर" शब्द का प्रयोग गाँव के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है। सम्भवतः "गैर", गर्त्ता का ही

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

घिसा-पिटा स्थानीय उच्चारण है।

अस्तु, तालेश्वर - ताम्रपत्र का करवीरगर्त्ता एक ग्राम - नाम है।

महाभारत (अनुशा0, २५.४४) में सप्तगंगा, देवदारुवन, आदि हिमालय-तीर्थों में 'करवीरपुर', देवीभागवतपु0, (७.३०) में अष्टोत्तरशत देवीपीठों में 'करवीरपीठ', भागवतपु0 (८.७) में कैलास के साथ 'करवीरगिरि' नाम मिलते हैं। ये पृथक् स्थल हैं अथवा 'करवीरगर्त्ता' के पाठान्तर, यह निश्चित नहीं हो सका है।

५. कार्त्तिकेयपुर

जोशीमठ (प्राचीन योशि) के दक्षिण में कहीं। राजधानी के रूप में इस नगर का नाम प0 म0 प0 ललितशूरदेव, प0 म0 प0 देसटदेव तथा प0म0प0 पद्मटदेव के पाँच ताम्रशासनों में मिलता है। ब्रह्मपुर-राज्य के उपरान्त, लगभग ८वीं शती ईसवी के प्रारम्भ से लेकर आगे प्रायः चार शतियों तक मध्य हिमालय के प्रतापी शासकों की यह गौरवशाली राजधानी रही। कार्तिकेयपुरीय ये शासक एक अभिलेख में 'कातियुर' कहे गये हैं। 'कत्रि' एवं 'कर्तृपुर' इसी नाम के प्राचीनतर पाठ ज्ञात होते हैं। इस नगर के विस्तृत विवरण के लिए, देखिए आगे, "कार्त्तिकेयपुर का राजवंश"।

६. कीर्तिपुर

बैजनाथ (जनपद अलमोड़ा)। प्राचीनतर नाम वैद्यनाथ - कार्त्तिकेयपुर। दूलू (डोटी) के बौद्ध राजा क्राचल्लदेव के बालेश्वर - ताम्रशासन (शाके ११४५) के अनुसार, १२२१ ई0 के आसपास, उसके द्वारा कीर्तिपुर का विध्वंस हुआ (एट्0, हिमा0 डि0, २, पृ0 ५१२; राहुल, गढ़वाल, पृ0 ११४)।

७. तपोवन

तपोवन अथवा ढाक-तपोवन। जो जोशीमठ से उत्तर में धौली के वाम तट पर स्थित है। इसकी रम्य समतल भूमि, तप्त जल-स्रोतों और विस्तृत पुरावशेषों से ज्ञात होता है कि कातियुर - शासनकाल में विद्या-केन्द्र के रूप में यह महत्वपूर्ण स्थल था। ललितशूरदेव के पाण्डुकेश्वर - ताम्रपत्र, राज्यवर्ष २२ (एपि0 इं0, ३१, पृ0 २८१) में इसे "बदरिकाश्रमीय - तपोवन" कहा गया है। परन्तु यह तपोवन बदरिकाश्रम से दूर होने के कारण, ऐसी सम्भावना भी है कि बदिरकाश्रम से ही सम्बद्ध तपोवन रहा हो। क्योंकि महाभारत (आरण्यक0, ८८.२६ - पारडी सं0 तथा हरिवंशपुराण (भविष्यपर्व, अ0 ७६) में बदरिकाश्रम को 'तपोवन' बताया गया है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

८. बदरिकाश्रम

प्रख्यात बदरीनाथ तीर्थ। गढ़वाल हिमालय में विष्णुगंगा = अलकनन्दा के दक्षिण तटस्थ। गन्धमादनपर्वत पर विशालाबदरी तथा नरनारायणाश्रम अवस्थित हैं (महा०, वनपर्व, १४२.२३; विष्णु - पु०, ५.३७.३४ एवं अन्यत्र)। प्राचीन वाङ्मय में 'नरनारायणाश्रम' गंगा-तटस्थ वर्णित हैं :- "नरनारायणस्थानं गङ्गयेवोपशोभितम्" (आदिपर्व, ६४.२४); "यतः प्रववृते गङ्गा सिद्धचारण सेविता" (वन०, ४५.१९-२०; वन०, ८८.२३); "नरनारायणस्थानं भागीरथोपशोभितम्" (आरण्यक०, १४५. ३७ पारडी सं०); "दिव्यां गंगाम्बु प्लावितां सदा", "गंगा यत्र सरिच्छ्रेष्ठा मध्ये धावति पावनी" (हरिवंशपु०, भविष्यपर्व, ७३.४० एवं ७६.२२)। "योशि-प्रतिबद्धा गंगा", "विष्णुगंगा सम्मेलित" (पद्मटदेव एवं सुभिक्षराजदेव के पाण्डुकेश्वर - ताम्रपत्राभिलेख); "गंगातट पर देवदारुवन में स्थित" (आनन्दभट्ट - कृत बल्लालचरित, २.७)।

उक्त निर्देशों से यह भी प्रमाणित होता है कि अलकनन्दा ही गंगा की प्रधान धारा है। वामनपु० (२.४१-४२ एवं ७६. ४-५) में बदरिकाश्रम को सरस्वती-तटस्थ, तथा यहीं (६.४) उसे गंगा - तटस्थ भी बताया गया है । स्पष्टतः गंगा का ही अपर नाम वा पूर्वकालीन नाम सरस्वती था। भविष्यपु० (३.३.२.१३) में बदरी-स्थान को भरतखण्ड की उत्तरी सीमा बताया गया है। नामान्तरः विशाला, विशालाबदरी, बदरी, बदरिकाश्रम (महाभारत तथा पुराण); ऋषितीर्थ (स्कन्दपु०, वैष्णव०); बदरिकाश्रम (पाण्डुकेश्वर - ताम्रपत्र); बदरिकाश्रम, बदरीनाथ (केदारखण्ड)।

भारत में वैदिक विद्याकेन्द्र के रूप में बदरिकाश्रम की अन्यतम ख्याति थी। स्यात् इसी कारण ऋग्वेद के कौषीतकीब्राह्मण (७.६) में उत्तर भाग में वाग्देवी सरस्वती का वास माना गया है। आगे महाभारतकाल से लेकर नवम-दशम शती ईसवी तक भी यह आश्रम विश्रुत विद्याकेन्द्र रहा। महाभारत (वन०, अ० १४५), हरिवंशपुराण (भविष्यपर्व), योगिनीतन्त्र (२.६.१६७ तथा आगे) और अन्यत्र इस आश्रम का वर्णन मिलता है। हरिवंशपु० (भविष्यपर्व) के कैलास-यात्रा प्रसंग में वर्णित है कि दिव्य गंगाजल से आप्लावित विशाला - बदरी मुनिजुष्टा, तपोमयी, इतिहासपुराणज्ञों से सेव्यमान् पुरी थी। हरिवंशपुराण में बदरीपुरी के लिए तपोवन, आश्रम, ब्राह्मणाश्रम एवं बदरिकाश्रम विशेषण आने से सिद्ध होता है कि यह स्थल ब्राह्मण-विद्या का वैदिककाल से लेकर पौराणिककाल तक विश्रुत केन्द्र था जो गंगा के उभयतटों पर फैला था। महाभारत (आरण्यक० ८८.२६) में भी यह स्थल 'तपोवन' कहा गया है। वस्तुतः बदरीक्षेत्र में ही नरनारायणाश्रम, व्यासाश्रम एवं मणिभद्राश्रम अवस्थित थे। सात्त्वतशास्त्र के प्रणेता नारद का आश्रम भी यहीं था। वर्तमान नारदशिला एवं नारदकुण्ड, नारद की यहाँ साधना के स्मारक हैं। इसीलिए इस स्थल का अपर नाम नारदक्षेत्र कहा गया है। नारद से ही व्यास को सात्त्वतधर्म

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का ज्ञान हुआ था। व्यासाश्रम में ही महर्षि व्यास ने वेदों का संग्रह एवं 'जयकाव्य' की रचना की थी। कार्त्तिकेयपुरीय शासक ललितशूरदेव एवं पद्मटदेव के पाण्डुकेश्वर - ताम्रपत्राभिलेखों से ज्ञात होता है कि नवम शती ईसवी में भी विद्याकेन्द्र के रूप में "बदरिकाश्रम" की ख्याति थी, तथा उसकी एक शाखा सम्भवतः धौलीतटीय 'तपोवन' ("बदरिकाश्रमीय तपोवन") में विद्यमान थी (एपि० इं०, ३१ (६), १६३६, पृ० २७७-२८६)।

बदरिकाश्रम युगयुगीन से एक प्रख्यात हिन्दू तीर्थ है। सरस्वती अथवा गंगा-तीर पर अवस्थित। बदरी में 'सारस्वततीर्थ' का वर्णन पद्मपुराण (अ० १३३) में मिलता है। यह वर्णन देवनदी सरस्वती की प्रधानता का द्योतक है। बदरी धर्म-पुत्र नर-नारायण ऋषियों का तपस्थान रहा (वामनपु०, ६.४ तथा अन्यत्र)। नारायण ऋषि ऋग्वेद दशम मण्डल में 'पुरुषसूक्त' के द्रष्टा थे। स्कन्दपुराण के वैष्णवखण्ड में बदरीतीर्थ के अधिपति नारायण, और बदरीक्षेत्र में नारायण, अग्नितीर्थ एवं केदार समाहित बताये गये हैं। पुराणों में बदरीक्षेत्र के आदिबदरी, योगबदरी, ध्यानबदरी, भविष्यबदरी एवं विशालाबदरी नामक पंचबदरी तीर्थों का वर्णन है। यह भारत के अष्टोत्तरशत विष्णु - स्थानों में वर्णित है जहाँ 'नारायण' निवास करते हैं। (ब्रह्मपु०; तु०, वामनपु०, ८६.४)। केदारखण्ड (अ० ५८, एवं १४६) में इसे 'हरिस्थल' कहा गया है जहाँ बदरीनाथ नामक विष्णु स्थापित हैं। महाभारत (वन०, १३.१२) के अनुसार, विशालाबदरी में श्रीकृष्ण ने तप किया था। हरिवंशपु० (भविष्यपर्व) में भी वर्णित है कि श्रीकृष्ण ने कैलास-यात्रा के समय बदरीपुरी में प्रवेश किया था जहाँ पूर्वकाल में वृत्रहन्ता इन्द्र ने तथा रावणहन्ता राम ने तप किया था। वामनपुराण में ब्रह्महत्याभिभूत शिव एवं दैत्यराज प्रह्लाद का बदरिकाश्रम में मुक्ति हेतु आने का उल्लेख है (३.६ तथा ८. ४५-४६)। महाभारत (वन०, अ० १४२ एवं १४५) में वर्णित है कि वनवासकाल में लोमश - सहित पाण्डवों ने कैलास-यात्रा के समय गन्धमादनपर्वत पर नारायण-आश्रम के दर्शन किये थे। इस प्रकार, इस तीर्थ के वैभव पर अनेकानेक वर्णन उपलब्ध हैं। वस्तुतः युगयुगान्तर में बदरिकाश्रम वैष्णव वा सात्त्वत-धर्म का ही प्रधान केन्द्र रहा। शैवों के बढ़ते प्रभावकाल में अथवा शैव-प्रभाव बढ़ाने के प्रयास में शिवपुराण की विद्येश्वर- संहिता (१२.२०) में बदरिकाश्रम को 'शैवस्थान' भी बताया गया है।

६. बैराथ, भरथ

बैतड़ी। पश्चिमी नेपाल के दूलू (डोटी) मण्डल में स्थित राजधानी। केदारभूमि का विजेता प० म० अशोकचल्ल के गोपेश्वर-अभिलेख, शकसंवत् १११३ (=११६१ ई०) में उसे "दानवभूतलराज - गौडवंशोद्भव - वैराथकुल - तिलक" कहा गया है (एशि० रि०, ११, पृ० ४७७; हिमा० डि०, २, पृ० ५११-१२; गढ़वाल, पृ० १११-११२)। तत्पश्चात्, दूलू के बौद्ध राजा तथा कीर्त्तिपुर - विजेता क्राचल्लदेव के बालेश्वर - ताम्रपत्राभिलेख, शकसंवत् ११४५ (= १२२३ ई०) के प्रारम्भ में "भरोत-राज्य की समृद्धि" की कामना की गयी है (हिमा० डि०, २, पृ०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

५१६; राहुल-कृत गढ़वाल, पृ० ११४)।

१०. ब्रह्मपुर-नगर

युवान्-च्वाड़् के यात्रा - वृतान्त (वाटर्स, १, पृ० ३२६; बील, १, पृ० १६८) तथा उसकी 'जीवनी' में पो-लो-कि-मो-पु-लो (=ब्रह्मपुर जनपद) और तालेश्वर - ताम्रपत्राभिलेखों (एपि० इं०, १३, पृ० १०६ तथा आगे) में पर्वताकर-राज्य की राजधानी ब्रह्मपुर का उल्लेख मिलता है। कम-से-कम छठी-सातवीं शती ईसवी में ब्रह्मपुर मध्य - हिमालय का प्रसिद्ध नगर था। इस नगर की पहचान अभी नहीं हो सकी है। विद्वानों ने इस नगर की स्थिति के सम्बन्ध में निम्नांकित स्थलों को प्रस्तावित किया है :-

क. (१) श्रीनगर (गढ़वाल)। एम० विवीन डी सेंट - मार्टिन का मत (मेम्वाइर ऑन सेन्ट्रल एशिया एण्ड इंडिया: M. Julien कृत ह्वेन-त्साड़् के तृतीय खण्ड का परिशिष्ट)। डॉ०कां०प्र० नौटियाल इस मत के समर्थक दिखते हैं (धर्मयुग, २१ मार्च, १६८२, पृ० ३५)।

(२) तपोवन से देवप्रयाग अथवा सम्भवतः श्रीनगर तक फैले पवित्र क्षेत्र में। जी० आर० सी० विलियम्स का मत (हिस्टॅ० मेम्वाइर ऑव् देहरादून, १८७४, पृ० ७७)।

(३) पाण्डुवाला - सोत में प्राचीन नगर के ध्वंस। एम० ए० फूरर का मत (मॉन्यू० ऐंटि० इन्स्० १८६१, पृ० ४५-४६)।

(४) भागीरथी - घाटी में बाड़ाहाट। एटि्कन्सन का मत (हिमा० डि०, २, पृ० ३६२ तथा ४५३)। क्योंकि यह 'मयूर' = हरिद्वार से ठीक ५० मील उत्तर में है, तथा एक प्राचीन नगर है। राहुल सांकृत्यायन (गढ़वाल, पृ० ६८) का भी यही मत है, क्योंकि इसके उत्तर में सुवर्णगोत्र देश था जो वर्तमान ड़्-री-कोर-सुम = मानसरोवर प्रदेश है।

ख. (५) भरमौर (चम्बा राज्य, हि० प्र०)। Dr. Vogel (ऐंटि० ऑव् चम्बा स्टेट, खण्ड १, पृ० ८२) तथा H. Guetz (वुडॅन टेम्पल्स ऑव् चम्बा, १६५५, पृ० १४) का मत।

ग. (६) लखनपुर = वैराट - पट्टन। प० रामगंगा तट पर, गणाई के सेरे में स्थित वर्तमान लखनपुरकोट वा वैराटपट्टन। ए० कनिंघम का मत। लखनपुर, समुद्र - तल से ३,३३६ फुट ऊँचाई पर, मो-ति-पु-लो = मण्डावर से सीधी पंक्ति में लगभग ८०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मील है, तथा मंडावर के उत्तर-पूर्व सीमान्त पर स्थित कोटद्वार से ३०० लि = ५० मील यात्री द्वारा दी गयी दूरी पर है (*एन्0 जि0 ऑव् इंडिया,* १८७१, पृ0 २६६-३००)। तालेश्वर-ताम्रपत्राभिलेखों के सम्पादक वाई0आर0 गुप्ते भी इस नगर की स्थिति "लखनपुर अथवा उसके निकट कहीं" मानकर इस मत के समर्थक दिखते हैं।

(७) कत्यूर-घाटी में। पावेल-प्राइस का मत ("कुणिन्द एण्ड कत्यूरीज", *ज0यू0पी0हि0सो0,* १८ (१,२), पृ0 २१७)। डॉ0 मदनचन्द्र भट्ट प्रायः इसी मत के समर्थक हैं। वे राजधानी ब्रह्मपुर को "बिनसर पहाड़ी के समीप" अनुमान करते हैं (*स्टडीज,* ५, १६६८, पृ0 ७६ तथा खण्ड ६, १६६६, पृ0 ६३)। डॉ0 भट्ट के अनुमान का आधार अलमोड़ा जनपद के बिनसर को ही प्राचीन वीरणेश्वर मानना है।

(८) द्वाराहाट = प्राचीन हाट - बमनपुरी, (जनपद अलमोड़ा)। श्री ताराचन्द्र त्रिपाठी का मत (*पहाड़* १, १६८३, पृ0 १३-१६)। उनके मत के प्रमुख आधार तालेश्वर-दानपत्रों में उल्लिखित स्थान-नाम तथा बिनसर से समीपता हैं। उनके अनुसार, (१) हाट - बमनपुरी ब्रह्मपुर से मिलता-जुलता नाम है, (२) पार्श्व में ही द्रोणागिरि - बिनसर के अवशेष हैं, तथा (३) 'मानसखण्ड' की साक्षी के अनुसार द्वाराहाट - शिखर का प्राचीन नाम ही 'ब्रह्म' रहा होगा।

मेरे विचार से, ब्रह्मपुर की खोज में निम्नांकित तथ्य आधारभूत हैं :-

(१) चीनी यात्री के वृतान्त का शुद्ध पाठ तथा तालेश्वर - दानपत्रों में वर्णित स्थान - नामों का सक्षम समीकरण, (२) यात्रा- वृतान्त में, ब्रह्मपुर की यात्रा मो-ति-पु-लो = मण्डावर से अथवा मो-यु-लो = मयूर से ? (३) मो-यु-लो को मयूर मानकर वहाँ से उत्तर की ओर यात्री द्वारा दी गयी ३०० लि की दूरी का परिमापन, (४) पौरव - कुलदेवता वीरणेश्वर की राजधानी से समीपता, तथा (५) उत्खनन आदि से प्राप्त पुरातत्त्व - प्रमाण।

उक्त तथ्यों के प्रकाश में, वर्ग 'क' के प्रस्ताव इसलिए अग्राह्य हो जाते हैं, क्योंकि उनका आधार या तो मो-यु-लो की एकता मायापुर-गङ्गाद्वार से की गयी है अथवा एक 'पवित्र क्षेत्र' से ब्रह्मपुर को जोड़ने की कल्पना की गयी है। वर्ग 'ख' का प्रस्ताव भी इसलिए त्याज्य है क्योंकि 'वह पर्वताकर - राज्य से बहुत दूर है और इसीलिए तालेश्वर - ताम्रपत्राभिलेखों से मेल नहीं खाता।' वर्ग 'ग' में ए0 कनिंघम का मत भी हमें इस आधार पर अस्वीकार्य है, क्योंकि 'लखनपुर' को कत्यूरियों की 'प्राचीन राजधानी' माना गया है, और वीरणेश्वर की समीपता की

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उपेक्षा की गयी है। ब्रह्मपुर तो कत्यूरियों की उत्तर- मध्यकालीन राजधानी लखनपुर से प्राचीनतर स्थल था। इसी प्रकार, वर्ग 'ग' के अन्य मत भी अलमोड़ा - बिनसर अथवा द्वाराहाट - बिनसर को दूधातोली - बिनसर से प्राचीनतर मानने के खोखले तर्क पर आधारित होने के कारण दुराग्रह - मात्र जान पड़ते हैं।

वास्तविकता यह प्रतीत होती है कि दूधोतोली - बिनसर सर्वप्राचीन होने के कारण यही पौरवों का वीरणेश्वर था, और फलस्वरूप इसी के समीप ब्रह्मपुर का राजनगर होना चाहिए। इस बिनसर में 'ब्रह्मदुंगी' नामक स्थल अप्रासंगिक नहीं हो सकता। इस बिनसर से होकर बहनेवाली 'वीणु' धारा के नाम में 'वीरणेश्वर' नाम की ध्वनि की उपेक्षा भी नहीं हो सकती। अस्तु , मेरा अभिमत है कि राजधानी ब्रहमपुर की स्थिति रामगंगा-वीणु संगम के आसपास, दूधातोली - बिनसर के समीपस्थ ही होनी चाहिए। दूधातोली-बिनसर के आसपास बिखरे विनष्ट बस्ती के चिह्नों एवं शिलालेखों की सूचना के लिए मैं श्री स० भारती का आभारी हूँ। (मानचित्र संख्या-२)

११. मयूर (*पालि, मोर*), मो-यु-लो

गढ़वाल हिमालय के पादप्रदेश में मोरध्वज। चीनी यात्री युवान्-च्वाङ्. (६२६ ई०) सुघ्न से मो-यु-लो पहुँचा था जो तब जन- संकुल था। यात्री के अनुसार, मो-यु-लो मडावर के उत्तर-पश्चिम सीमान्त पर, गंगा के पूर्वी किनारे पर अवस्थित था। कनिंघम ने 'मो-यु-लो' की पहचान "मायापुर के वर्तमान विध्वस्त स्थल" से की थी। परन्तु टी० वाटर्स ने उसके मत से इस सुसंगत आधार पर असहमति प्रकट की कि मायापुर गंगा के पश्चिम में है जबकि मो-यु-लो गंगा के पूर्व में था। अतएव वर्तमान मोरध्वज ही मो-यु-लो (= मयूर) हो सकता है जो गंगाद्वार से पूर्व में ३० किमी० अन्तर पर है। भविष्यपुराण (खण्ड २, श्लोक ५८, ७३) में इसके मयूरनगर एवं मयूरध्वज नाम मिलते हैं। इसके मयूरनगर नाम का कारण कनिंघम ने इसके समीप मयूरों की बहुसंख्या होना बताया है (एन्० जि० इं०, पृ० ४०२ तथा आगे, ७०३)। मयूरगिरि में ही आज मयूर-बहुल 'मोर-घाटी' नाम जीवित है। अतएव नामकरण के सम्बन्ध में कनिंघम का कथन सत्य है।

मोरध्वज का सर्वप्रथम उत्खनन १८८७ ई० में मरखाम ने किया था। उसके द्वारा उत्खनित बहुमूल्य सामग्री राज्य-संग्रहालय लखनऊ में सुरक्षित है (द्र० आगे, "पुरातत्त्व-निधि" का परिशिष्ट)। १६७८-७६ ई० में गढ़वाल विश्वविद्यालय के द्वारा यहाँ पुनः उत्खनन हुआ। इस उत्खनन में मोरध्वज से १३.५" x ८.५" x २.५" माप की विशाल इष्टकाएँ मिली हैं जिनसे ज्ञात होता है कि प्राक् - कुषाणकाल में यहाँ एक विशाल बौद्ध स्तूप विद्यमान था (रेखाचित्र - २)।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१२. योशि, योषि-कर्म्मान्त

गढ़वाल के पैनखण्डा - मण्डल में जोशीमठ । कार्त्तिकेयपुर - नरेश **पद्मटदेव के पाण्डुकेश्वर - ताम्रपत्राभिलेख** (लग० दशम शती ई० का पूर्वार्द्ध) में योशि का उल्लेख तीन बार (पंक्ति १८,१६) हुआ है तथा द्रुमती - सहित उसे टङ्. गणा (ण) पुर-विषय के अन्तर्गत बताया गया है। योशि - प्रतिबद्ध भूमि-खण्ड एवं रंधवक - ग्राम को बदरिकाश्रम - भट्टारक के लिए पद्मटदेव ने अग्रहार में दान दिया था। तत्पुत्र सुभिक्षराजदेव के पाण्डुकेश्वर - ताम्रपत्राभिलेख में भी योशि का एक बार उल्लेख है ("योषि - कर्म्मान्त - सम्बद्ध.....", पंक्ति ३१)। इस तामपत्र से भी इसकी स्थिति टङ्. गणपुर - विषय में विदित होती है।

राहुल के अनुसार, बदरीनाथ मन्दिर की बहियों में ग्राम-नाम 'जोशी' है (गढ़वाल, पृ० ४६४)। कहते हैं, आचार्य शंकर ने अथर्ववेद के प्रचार के लिए 'योषि - मठ' की स्थापना की थी (उमादत्त शर्मा-कृत *शंकराचार्य,* वि० सं०, १६८३, कलकत्ता, पृ० ८८)। 'ज्योतिर्धाम' में भगवान् नृसिंह का उल्लेख केदारखण्ड (अ० ५८) में मिलता है।

१३. वीरणेश्वर

वीरणेश्वरस्वामी का उल्लेख हमें पौरव राजाओं के तालेश्वर-**ताम्रपत्राभिलेखों** में मिलता है (एपि० इं०, खण्ड १३, पृ० १०६-१२१)। ब्रह्मपुर - नरेशों के कुलदेवता का यह देवालय आज **'बिनसर'** कहलाता है जो गढ़वाल की पट्टी चौथान में दूधातोली पर्वतमाला पर (८,१३३') स्थित है। सम्भवतः राष्ट्रकूटपर्वत पर देवदारु की सुन्दर-सघन वनश्री में प्रतिष्ठित होने के कारण ही **केदारखण्ड** (१६६.१६) के कर्ता ने इसे 'वन्यश्रीकेश्वर' नाम दिया हो। वैसे हमारा अनुमान है कि 'बिनसर' नाम 'केदारखण्ड' की रचना के समय भी विद्यमान था। रचनाकार ने मूल नाम की खोज किये बिना, 'बिनसर' का संस्कृतीकरण करने का प्रयास किया। बिनसर की भौगोलिक स्थिति, उसके अधिक प्राचीन पुरावशेषों एवं आसपास दूर तक प्राप्त इष्टकाओं तथा ध्वंसावशेषों को देखने से ज्ञात होता है कि वीणु धारा के स्रोत - प्रदेश में प्रतिष्ठापित यही बिनसर ब्रह्मपुर के पौरवों का कुलदेवता वीरणेश्वरस्वामी है। वीरणेश्वर से बिनसर का 'ध्वनिसाम्य', 'वीणु' नाम का पुरावशेष तथा 'तालेश्वर से अधिक समीपता' के आधार पर भी यही बिनसर पौरवों का वीरणेश्वर सिद्ध होता है।

अब वीरणेश्वर नाम की व्याख्या पर विमर्श करें। बिनसर में बिखरे पुरावशेषों का प्रधानतः शैव होना, केदारखण्ड की साक्षी ("यहाँ वन्यश्रीक मुनियों ने शिवाराधना की") तथा परम्परा से इसका बिनसर महादेव नाम सभी तथ्य तो इसे शिव-मन्दिर प्रमाणित करते हैं। अतएव 'वीरण' नामक एक प्राचीन ऋषि, अथवा धृतराष्ट्र कुलोत्पन्न 'वीरणक' नामक नागों के आराध्य होने से अनन्तरूप शिव का वीरणेश्वर नाम था। यह निष्कर्ष अन्तिम नहीं है। बिनसर के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आसपास फैले प्राचीन अभिलेखों तथा यहाँ प्राप्त मुद्राओं के वाचन होने पर भविष्य में वीरणेश्वर देवता पर अधिक प्रकाश पड़ सकेगा।

यह उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि वीरणेश्वर की व्यापक प्रतिष्ठा के कारण, 'बिनसर' नाम से परवर्ती काल में गढ़वाल-कुमाऊँ में अनेक मन्दिर निर्मित हुए। अमेली पर्वतांचल में घूल गाँव का बिनसर मन्दिर दसवीं-ग्यारहवीं शती के आसपास बना। लेखक ने यहाँ पुरानी ईंटें, प्राचीन मन्दिरों के ध्वस्त पीठ तथा प्रारम्भिक शिश्नलिंग देखे तथा महारानी कर्णावती पर यहाँ देवता का अनुग्रह होने की कथा सुनी। एट्किन्सन ने पट्टी मवालस्यूँ के इस बिन्सर मन्दिर का उल्लेख अपने 'हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स' (II, पृ० ७७६ तथा ८११) में किया है। अल्मोड़ा जनपद के बारामण्डल में दूसरा बिन्सर मन्दिर बना जिसका निर्माण, एट्किन्सन के अनुसार, चन्दवंशीय राजा कल्याणचन्द (१७३०-४७ ई०) ने किया था।

१४. शोणितपुर

बामसू। गढ़वाल हिमालय की मन्दाकिनी उपत्यका में। दे (जि० डि०, पृ० २१ एवं १८६) का भी यही मत है। इसके अभिज्ञान विषय पर अन्य मतान्तर इस प्रकार हैं :- (१) कुमाऊँ हिमालय में चम्पावत तहसील के अन्तर्गत 'सुई-लोहाघाट' के भग्नावशेष (एट्किन्सन, हि० गजे०, पृ० ७३० एवं कुमाऊँनी अन्वेषकों का मत)। य० द० वैष्णव के अनुसार, पुराणोक्त बाणासुर बाबुल (असीरिया) का महाप्रतापी शासक असुर बाणीपाल (६६६-६२६ ई०पू०) ही है। असीरिया से निर्वासित असुर जाति ने पीछे भारत में बाण असुर के नाम पर अनेक स्थलों का नामकरण किया होगा। एक ऐसा स्थल लोहाघाट है (धर्मयुग, १८ अक्टूबर, १६७०)। (२) हिमाचल प्रदेश में 'सराहन' ग्राम (राहुल, किन्नर प्रदेश में)। (३) असम में 'तेजपुर' जो उषा - अनिरुद्ध की प्रणय- गाथा से सम्बद्ध माना जाता है। (४) बाणपुर वा 'बानगढ़', पू० बंगाल के दीनाजपुर जनपद में (अ० बि० लाल अवस्थी, स्टडीज इन स्कन्दपुराण, पृ० १२०)।

परन्तु पुष्ट प्रमाणों के अभाव के कारण उक्त मत ग्राह्य नहीं हैं। बाण असुर की राजधानी शोणितपुर का एकीकरण केदारभूमि में 'बामसू' से संगत प्रतीत होता है। क्योंकि :- (क) हरिवंशपुराण के विष्णुपर्व में स्पष्ट वर्णित है कि "जहाँ कार्तिकेय की अग्नि से उत्पत्ति हुई थी उस शोणितपुर में बाणासुर निवास करता था" (११६.१८), "यहाँ बाणासुर की रक्षार्थ सतत कार्तिकेय रहते हैं (१२२.४३) और "शंकर ने वर प्रदानकर, कार्तिकेय के जन्मस्थान का उसे शाश्वत अधिपति बनाया" (११६.२२)। शिवपुराण (रुद्र० यु०, ५३) में भी उल्लिखित है कि कार्त्तिकेय ने बाण को मयूरछाप-युक्त अपना ध्वज एवं मयूर-वाहन प्रदान किया। कार्त्तिकस्वामी की प्रतिष्ठा गढ़वाल की मन्दाकिनी - घाटी में ही प्रधानतः रही है। इसके ऐतिहासिक एवं पुरातत्त्वीय प्रमाण उपलब्ध हैं। (ख) केदार-हिमालय के अधिपति शिव माने जाते हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्वाभाविकतः बाण को अजेय होने के लिए उनका विशेष अनुग्रह प्राप्त करना पड़ा। (ग) शोणिपुर उषा - अनिरुद्ध की प्रणयस्थली रही है। कार्त्तिकस्वामी-शिखर के अंचल में ही 'ऊषीमठ' नामक अति प्राचीन देवस्थल इसका पुरातत्त्वीय स्मारक है। (घ) शोणितपुर असुरों के अभेद्य आकाशचारी त्रिपुरों में से एक था। उसके आकाशचारी पुर होने का आशय यह है कि वह दुर्गम गिरि-प्रदेश में स्थित था। (ङ.) महाभारत (शल्य०, ४५.७१) के अनुसार, बाण क्रौंचपर्वत का आश्रय लेकर रहता था। यह क्रौंचपर्वत गढ़वाल के उत्तर में ही अवस्थित था।

नामान्तरः कोटीवर्ष, बाणपुर, लोहितपुर, रुधिरपुर (अभिधानचि०, स्कन्दपु०, हरिवंशपु०, त्रिकाण्ड० ३२-१७, महाभारत, शान्ति०, ३२६.६३, इत्यादि)।

१५. सिंहपुर

ईश्वरा की लाखामण्डल - प्रशस्ति में सातवीं - आठवीं शती ई० में शासन कर रहे यदुवंशीय नरेशों के सैंहपुर- राज्य का उल्लेख हुआ है जो ईश्वरा का पितृ - राज्य था ("यदुवङ्.श भुवां राज्ञां सैङ्.घपुरं राज्यमायुगाद्दधताम्"।) इस राज्य की एकता धर्मपाल के खालिमपुर - अभिलेख में निर्दिष्ट 'यदु' से स्थापित की जा सकती है। बूलर (एपि०, इं०, १, पृ० ११) ने इस राज्य को जालंधर के अन्तर्गत और जायसवाल (अन्धकारयुगीन भारत, पृ० १६२) ने स्वयं जालन्धर राज्य से एकीकृत किया है। परन्तु ये दोनों समीकरण स्वीकार करने कठिन हैं। बूलर द्वारा यह भ्रान्ति चीनी यात्री युवान्-च्वाङ्. वर्णित सेङ्.-हो-पु-लो (= सिंहपुर; सि-यु-कि, खण्ड १, पृ० १४३-४७ - बील) और प्रशस्ति के सैंहपुर के एकीकरण से हुई है। चीनी यात्री का 'सेङ्.-हो-पु-लो' तो कश्मीर जनपद के अन्तर्गत सिन्ध नदी के पश्चिम तट पर था। इन दोनों सिंहपुर को पृथक् मानते हुए, महापण्डित राहुल का निम्नांकित कथन सत्य हैः-

*"स्वेन-चाङ्. ने जलन्धर (शे-लन्-त-लो) का भी उल्लेख किया है, जहाँ वह तमसावन से गया था। तमसावन पहाड़ में था, जो वही स्थान था, जिसका उल्लेख मिलिन्द-प्रश्न में आया है। तमसावन से उत्तर-पूर्व होने के कारण जलन्धर भी पहाड़ में होना चाहिए, जिसकी पुष्टि हिमालय के पंच खण्डों में जलन्धर-खण्ड का होना भी बतलाता है। ईश्वरा के पति श्रीचन्द्रगुप्त पंजाब के आधुनिक जलंधर का न होकर इसी पहाड़ी जलंधर का रहा होगा।....(अस्तु) स्वेन-चाङ्. का सिंहपुर ईश्वरा का 'सिंहपुर' नहीं हो सकता" (**जौनसार-देहरादून**, १९६१ ई०, पृ० ४८, तथा आगे)।*

महाभारत (सभा० २७.२०) में भी एक 'सिंहपुर' का उल्लेख है जिसे पाण्डव अर्जुन ने अपनी उत्तर दिग्विजय के समय दार्व, अभिसारी, उरगा (शा) के उपरान्त जीता था। प्रशस्ति के 'सिंहपुर' से भी इसकी एकता नहीं हो सकती, क्योंकि इस 'सिंहपुर' की पहचान स्टाइन (**राजतरंगिणी**, १, पृ० २१६) ने नमक-की-पहाड़ी से की है। दूसरी ओर, डॉ० शि० प्र० डबराल का अनुमान है कि स्रुघ्न राज्य का अपर नाम सैंहपुर अथवा सिंहपुर है, और यमुना के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दाहिने तट पर, यमुना-गिरि-संगम पर, कालसी के दक्षिण में स्थित सिंहपुर गाँव ही सैंहपुर नगर है (उत्तराखण्ड का इति०, भाग ३, पृ० ३५८-६०)। परन्तु उनकी यह कल्पना भी ग्राह्य नहीं हो सकती। क्योंकि नवीन शोधों से इस स्थल पर प्राचीन राजधानी के कोई पुरावशेष नहीं मिले हैं तथा सुघ्न से सिंहपुर की एकता के भी कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

अस्तु, सिंहपुर की पहचान के सम्बन्ध में महापण्डित राहुल की सम्भावना हमें ग्राह्य है। लाखामण्डल के राजधानी होने की सम्भावना के कारण, उनका अनुमान संगत है कि "शायद सिंहपुर लाखामण्डल ही का पुराना नाम हो" (पूर्वोक्त)।

१६. सुभिक्षपुर

सम्भवतः सुभैं - ग्राम। जोशीमठ तहसील में तपोवन के समीप। सुभिक्षराजदेव के पाण्डुकेश्वर - ताम्रपत्र (एपि० इं०, खण्ड ३१) के अनुसार, सुभिक्षराजदेव का राजनगर। एट्किन्सन (हि० गजे०, खण्ड २, पृ० ४८३) के अनुसार, यह सम्भवतः कार्त्तिकेयपुर ही का अपर नाम था अथवा उसका उपनगर। डॉ० दि० चं० सरकार एट्किन्सन के दूसरे प्रस्ताव को मानते हुए लिखते हैं कि "प्राचीन नगर कार्त्तिकेयपुर के समीप ही सुभिक्षराजदेव ने इस नये नगर की स्थापना की थी (दि एज ऑव् इम्पि० कन्नौज, पृ० १२४; भारतीय विद्या, खण्ड १२, १९५१, पृ० १५१)। 'सुभैं' से इस नगर की एकता मात्र नाम-साम्य एवं जोशीमठ से समीपता पर आधृत है।*

---

* 'ऋग्वेदीय नदी सरस्वती' ऐतिहासिक भूगोल का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रकरण है। इसी कारण, इसे आगे एक पृथक् अध्याय में विवेचित किया गया है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्वितीय अध्याय

ऋग्वेदीय नदी सरस्वती

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिम्ब नस्कृधि।।

(ऋग्वेद, २-४१-१६)

१.

अभिज्ञान विषयक वैमत्य

ऋग्वेदीय सरस्वती के अभिज्ञान के विषय में विद्वानों में मतान्तर हैं। अब तक इसकी स्थिति के सम्बन्ध में चार मत प्रस्तुत हुए हैं : (१) रॉथ[1], जिम्मर, ग्रासमान, लुडविग इत्यादि जर्मन विद्वान् यह मानते हैं कि ऋग्वेदसंहिता के अनेक मंत्रों में सरस्वती से मन्तव्य वर्तमान सिन्धु (इण्डस्) से है। भारतीय विद्वान् क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय[2] ने इस मत का समर्थन किया है। चट्टोपाध्याय के अनुसार, ऋग्वेदसंहिता के प्राचीन अंशों, मुख्यतः षष्ठ एवं सप्तम मण्डलों (६.४९.७; ६.५२.६; ६.६१; ७.३६.६; ७.३९.५; ७.९५; ७.९६;) में सरस्वती नदी कुरुक्षेत्र देश की वर्तमान 'सरसुती' नहीं है, अपितु सिन्धुनद है। दूसरे शब्दों में, वर्तमान सिन्धु का ही पुरानाम सरस्वती था। यह मत इस पाश्चात्य धारणा पर आधृत है कि आर्य उत्तर-पश्चिमी सीमान्त से भारत में प्रविष्ट हुए थे। (२) लासन, मैक्समूलर, मैक्डॉनल[3] और कीथ[4] वैदिक सरस्वती की एकता कुरुक्षेत्र एवं राजस्थान की मरुभूमि में प्रवाहित वर्तमान 'सरसुती' से करते हैं। ए० डी० पुसालकर, विमलचरण लाहा एवं पा० वा० काणे आदि भारतीय विद्वान् भी इस मत का अनुसरण करते हैं। (३) हिलब्राण्ट आदि का अनुसरण करते हुए, आर्यों का मूलस्थान मेरु अर्थात् पामीर एवं उसके आसपास के भूभाग को मानने वाले भारतीय विद्वान् द्वारका प्रसाद मिश्र

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भी ऋग्वेदीय सरस्वती की एकता ईरान की नदी हरह्वैती से करते हैं। उनके शब्दों में, "ऋग्वेदीय जनों की यह अतीत स्मृति पूर्वी ईरान के सम्बन्ध में है, जहाँ सरस्वती को हरह्वैती कहा जाता था और जिसका वर्तमान नाम अर्गन्दाब है।"[५] उनका यह मत भी आर्यों के पश्चिम से भारत में संक्रमण की उक्त धारणा पर आधृत है। (४) चतुर्थ मत, पुराकाल में गड्.गा - प्रवाहक्षेत्र से होकर बहनेवाली सरस्वती से एकता का है जिसकी शीर्षधारा आज भी 'सरस्वती' नाम से गढ़वाल हिमालय में बदरिकाश्रम से होकर प्रवाहित होती है, और जो अलकनन्दा गड्.गा की सबसे बड़ी पोषिका धारा है। इस मत के प्रतिपादकों [६] के अनुसार, ऋग्वैदिककाल में आर्य मध्य हिमालय की सरस्वती - उपत्यका के आसपास के प्रदेश में निवास करते थे। कालान्तर में, यहीं से उनकी विभिन्न शाखाओं का दक्षिण, पूर्व एवं पश्चिम दिशाओं में प्रसार हुआ।

२.
ऋग्वेदीय सरस्वती गड्.गा -प्रवाहक्षेत्र की 'सरस्वती' है

ऋग्वैदिक सरस्वती की अभिज्ञान विषयक समस्या पर अपने अनुसन्धान के फलस्वरूप मुझे अन्तिम मत संगत लगता है जिसके अधोलिखित आधार हैं :-

क. वैदिक साहित्य का प्रमाण

(१) ऋग्वेदसंहिता में आया सप्तसिन्धवः शब्द महत्वपूर्ण है। आचार्य सायण ने ऋग्वेदभाष्य में सप्तसिन्धु में "गङ्गादि सप्त नदियाँ" (गड्.गाद्यासु नदीषु) मानी हैं। निश्चय ही सायण का मन्तव्य यहाँ गदड्गा-यमुना-गोदावरी-सरस्वती इत्यादि उन सप्त नदियों से नहीं है जो बहुत पीछे जलशुद्धि-मन्त्र में गिनी गयी हैं। अपितु उनका आशय मध्य-हिमालय की परम्परागत गंगादि सप्त नदियों से था। क्योंकि वेदों की व्याख्या स्वरूप इतिहास-पुराणों में भी गङ्गा की सप्त-धाराओं का वर्णन है। स्वयं ऋग्वेद (६.६१.१० एवं १२) में सरस्वती को सप्तभगिनी-संयुक्ता प्राचीन ऋषियों द्वारा सेवित ('सप्तस्वसा सुजुष्टा। सरस्वती स्तोम्याभूत'।) और 'सप्तधातुः' कहा गया है।[७] अतः वैदिककाल में मध्य-हिमालय की गंगादि छः नदियाँ और सप्तमी सरस्वती मिलकर सप्तसिन्धु कहलाती थीं। सरस्वती 'सप्तसिन्धु' की शीर्षधारा थी। ये सप्तधाराएँ गंगा के वर्तमान उपरले प्रवाह-क्षेत्र के अन्तर्गत आती थीं। सप्तसिन्धुओं के अंतिम मिलन-स्थल पर ही पीछे 'सप्त सामुद्रिकतीर्थ' की कल्पना की गयी है। इससे प्रमाणित होता है कि 'सप्तसिन्धवः' वैदिककाल में पंजाब का नाम नहीं था। मैक्समूलर की भांति, पुसालकर महोदय ने *'दि वैदिक एज'* (पृ० २४८) में शतुद्रि आदि पंजाब की पाँच नदियाँ, सिन्धु एवं सरस्वती मिलकर 'सप्तसिन्धवः' माना है, जो संगत नहीं है।

(२) ऋग्वेद (७.३६.६) में एक अन्य महत्त्वपूर्ण निर्देश है - 'सरस्वती सप्तथी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिन्धुमाता'। आचार्य सायण ने इस पद का भाष्य "सरस्वती षण्णां नदीनां सप्तमी सिन्धुमाता" किया है। अर्थात् सरस्वती छः नदियों की माता सप्तमी नदी है। यतः इस सूक्त में 'सिन्धु' शब्द नदी अर्थक है। अतः सरस्वती के माता होने का मन्तव्य यह है कि यह धवला, नन्दाकिनी, पिण्डारक, मन्दाकिनी, नबालका एवं भागीरथी छः नदियों की पोषिका शीर्ष नदी थी। दूसरी ओर, 'सिन्धु' का अर्थ यदि सप्तनदियों का सम्मिलित महाप्रवाह करें तो उस महाप्रवाह की माता सरस्वती थी। उस महाप्रवाह का वर्तमान नाम गङ्गा है, अथवा वह महाप्रवाह सम्भवतः गंगा के समान्तर प्रयाग की ओर प्रवाहित होता था। इन अर्थों में, ऋग्वेदीय सरस्वती का 'सिन्धुमाता' नाम सार्थक हैं क्योंकि यह सिन्धु (= छः नदियों अथवा अलकनन्दागंगा) की पोषिका शीर्षधारा है। अस्तु, ऋग्वैदिक 'सिन्धु' को पंजाब की वर्तमान सिन्धु नदी मानना कल्पना - प्रसूत है।

'सिन्धुमाता' का आचार्य सायण एवं ग्रासमान द्वारा दिया उक्त अर्थ अस्वीकार करते हुए, क्षे. चं. चट्टोपाध्याय ने इस पद को बहुब्रीहिसमास में माना है। उनके अनुसार, 'सिन्धुमाता' का अर्थ है - "(सरस्वती नदी) जिसकी सिन्धु = नदियाँ माताएँ हैं।"[८] यदि इस अर्थ को स्वीकार करना पड़े, तब भी यह पद ऋग्वैदिककाल में सरस्वती की विशालता एवं प्रधानता का द्योतक है। इस अर्थ का वास्तविक आशय भी यही है कि छः नदियों से संयुक्त गंगा के वर्तमान पर्वतीय महाप्रवाह को वैदिककाल में सरस्वती ही कहते थे।

पंजाब की सिन्धु और कुरुक्षेत्र की सरस्वती (घग्घर) न छः नदियों की पोषिका माता हैं और न इनमें से कोई सप्तनदियों के महाप्रवाह का निर्माण करती हैं।

(३) ऋग्वेदसंहिता में जिस सरस्वती का उल्लेख है उसकी तीन प्रधान विशेषताएँ उसके ही विविध मन्त्रों से प्रकट होती हैं: (१) सरस्वती आर्यों की पवित्रतम नदी थी। इसीलिए उसे '**अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति**' (२.४१.१६), त्रिलोकव्यापिनी (**त्रिषधस्था**, ६.६१.१२) और देवलोक से निःसृत (**आ नो दिवो**, ५.४३.११) माना गया है। (२) सरस्वती पर्वतीय धारा थी। उसका प्रवाह घोर गर्जन करता हुआ प्रवल रूप से आगे बढ़ता था (**अमश्चरति रोरुवत्**, ६.६१.८); वह बृहत् पर्वतों से निःसृत होती थी (**बृहत् पर्वतादा सरस्वती**, ५.४३,११); पर्वतों से टकराकर प्रवाहित होती थी अथवा यमुना के उद्गम प्रदेशवर्ती पारावतों का वध करनेवाली थी (**पारावतघ्नी सरस्वती**, ६.६१.२)। (३) सरस्वती एक विशाल नदी थी। वह नदियों से वर्द्धित (**सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना**, ६.५२.६), नदियों में बलवती (**असुर्या नदीनाम्** ७.९६.१); अपनी सहायकों से अधिक विशाल (उत्तरा सखिभ्यः, ७.९५.४) और सप्तधाराओं से संयुक्त (**सप्तस्वसा सुजुष्टा**, ६.६१.१०) बतायी गयी है।

ऋग्वैदिक सरस्वती के अभिज्ञान के लिए ये तीन विशेषताएँ आधारभूत हैं। सरस्वती -

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिन्धु समीकरण के पक्षधर विद्वानों ने 'विशालतामूलक' तृतीय विशेषता को वर्तमान सिन्धु के लिए उपयुक्त माना है, और खींचतानकर प्रथम एवं द्वितीय विशेषताओं को भी उसी के लिए कल्पना की है। इसका कारण आर्यों के विदेशी मूल एवं उनके पश्चिमोत्तर सीमान्त से भारत में प्रवेश की धारणा का पूर्वाग्रह, तथा मध्य-हिमालय की वर्तमान सरस्वती से अविज्ञता ही है। 'देवितमे' एवं 'त्रिषधस्था' जैसे पवित्रतावाचक और गौरवपूर्ण विशेषण जब किसी काल में वर्तमान सिन्धु के लिए नहीं आये तब वह विशाल होते हुए ऋग्वैदिक सरस्वती कैसे हो सकती है? कुरुक्षेत्र में प्रवाहित वर्तमान 'सरसुती' में उक्त तीनों विशेषताओं में से एक भी प्राप्त नहीं है। ऋग्वेद में तो कुरुओं के मूल अभिजन 'उत्तरकुरु' की सरस्वती की पावनता का उल्लेख है। शिवालिक-पहाड़ियों से उद्गमित सरसुती में पर्वतीय विशेषताएँ सोचना भी व्यर्थ है। अतएव मेरा विनम्र प्रस्ताव है कि, बिना किसी पूर्वाग्रह के, ये तीनों विशेषताएँ गङ्गा के प्रवाहक्षेत्र की वर्तमान सरस्वती में पायी जाती हैं।

ख. ब्राह्मण ग्रन्थों एवं इतिहास-पुराण का प्रमाण

(१) वामनपुराण[६] (२.४१-४२) में, हिमालय-स्थित बदरिकाश्रम में नर-नारायण स्थान एवं सरित्श्रेष्ठा सरस्वती के अस्तित्व का स्पष्ट वर्णन है :-

नरनारायणस्थानं पर्वते हि हिमाश्रये।
सरस्वती यत्र पुण्या स्यन्दते सरितां वरा।।

बदरिकाश्रम में सरस्वती का उल्लेख यहीं आगे (७६.५) भी है। तु0, मार्कण्डेयपु0, २.४३। वामनपुराण (११.१८) में ही देव, दानव, सिद्ध, गन्धर्व, मानवादि के जिन द्वादश शाश्वत धर्मों का वर्णन है, उनमें हिमालयवासी गन्धर्वों का धर्म नृत्य-वाद्य के साथ सरस्वती में स्थिर भक्ति बतायी गयी है।

(२) पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड, ३२.१०५) में 'गंगोद्भेदतीर्थं' का वर्णन हैं जहाँ सरस्वती गङ्गा में मिलती है। गङ्गा-सरस्वती संगम का उल्लेख महाभारत[१०] (वन0, ८४.३८) में भी है। महाभारत (आदि0, १६.१६-२१; भीष्म0, ६.४८) में ही सरस्वती को गङ्गा की सप्तधाराओं में एक माना गया है।

(३) महाभारत के प्राचीनतम संस्करण 'जय' के प्रारम्भ में, बदरीक्षेत्र के मुख्य अधिष्ठाता देवता नर-नारायण के साथ सरस्वती को भी नमन किया गया है -

'नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्।।'

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सरस्वती तटीय अपने प्रसिद्ध आश्रम में बैठे ऋषि ने सरस्वती का पुण्यस्मरण देवता रूप में किया, परन्तु जो उसके भौमिक रूप से भिन्न नहीं है।

(४) यद्यपि महाभारत के वर्तमान संस्करण में प्रायः कुरुक्षेत्र-प्रवाहिनी सरस्वती की महिमा मुख्यतः मण्डित है, तथापि इस ग्रन्थ में ही वैदिक सरस्वती के सम्बन्ध में, उक्त संदर्भ के समान, कुछ अन्य प्राचीनतर संदर्भ शेष रह गये हैं। उदाहरणार्थ, वनपर्व में **विनशनतीर्थ** को "सरस्वती तट पर" (१३०.३) और "मैनाक पर्वत के मध्य में" (१३५.३) बताया गया है। महाभारत में ही मैनाकपर्वत की स्थिति बदरी के समीप मध्य-हिमालय में बतायी गयी है। कैलास-तीर्थयात्रा में पाण्डवों ने भागीरथी तट पर मैनाक पर्वत एवं बिन्दुसर को देखा था (वन० १४५.३७ एवं ३६)। यतः तैतिरीय आरण्यक (१.३१.२) में मैनाक हिमालय के एक पर्वत के रूप में वर्णित है। प्राचीन भारतीय भूगोल के अध्येता नन्दलाल दे (जि० डि०, पृ० १२१), प्रो० आयंगर (तीर्थकल्प० पृ० २६) और बि० च० लाहा (प्रा० भा० ऐ० भू०, हिन्दी सं०, पृ० २८, १२७ एवं १४०) भी मैनाक को हिमालय के एक भाग से समीकृत करते हैं। अतः इससे स्पष्ट होता है कि मूलतः 'विनशन' उत्तर में हिमालयवर्ती सरस्वती-तट पर था जहाँ मैनाक पर्वत की स्थिति थी। कुरुक्षेत्र की समभूमि में मैनाकपर्वत के अस्तित्व की क्या संगति है?

(५) भागवतपुराण (४.१६.१) के अनुसार, मनुक्षेत्र 'ब्रह्मावर्त' में सरस्वती पूर्वाभिमुखी होकर बहती है (ब्रह्मावर्ते मनोक्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती)। 'ब्रह्मावर्त' को ब्रह्मपु० (अ० १६७) में गङ्गा-यमुना का मध्यवर्ती; तथा मनुस्मृति (२.१७) एवं वामनपु० (३३.६) में देवनदी सरस्वती-दृषद्वती का मध्यवर्ती देवनिर्मितदेश माना गया हैं। ब्रह्मावर्त के लिए इन पौराणिक संदर्भों में आये 'मनुक्षेत्र', 'गङ्गा-यमुना का मध्यवर्ती' एवं 'देवनिर्मितदेश' विशेषण महत्वपूर्ण हैं। ऐतरेयब्रा० (८.२३) में स्पष्टतः 'देवक्षेत्र' (तु०, ऋ० ३.३३.४, का 'देवकृतयोनि') उत्तर-कुरु के लिए आया है, और यदि देवकृतयोनि, देवक्षेत्र एवं देवनिर्मितदेश एक ही भूभाग के लिए प्रयुक्त हुए हैं तो वह ब्रह्मावर्त ही हो सकता है जो मध्य हिमालय में था और जहाँ देवनदी सरस्वती बहती थी।

(६) आगे अधिक विस्तार से विवेचन किया गया है कि सामान्यतः उत्तर-वैदिक साहित्य एवं इतिहास - पुराणों में वर्णित सरस्वती 'कुरुदेश' में प्रवाहित होती थी जिसे दक्षिण में प्रसार के पश्चात् भरतों ने सर्वप्रथम सरस्वती नाम से पुकारा था। इससे यह भी सिद्ध होता है कि ऋग्वेदीय सरस्वती 'उत्तर-कुरु' की नदी रही होगी, जहाँ आर्यों की यह शाखा मूलतः निवास करती थी। उत्तर-मद्र एवं उत्तर-कोसल की भांति, 'उत्तर-कुरु' भी एक सुपरिचित प्रदेश था जो हिमवत् में अवस्थित था और जिसका उल्लेख प्राचीन भारतीय साहित्य में मिलता है। ऐतरेयब्राह्मण के अनुसार, उत्तर-कुरुजन हिमवत् के उत्तर में निवास करते थे (**उत्तरस्यां दिशि**

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परेण हिमवन्तं जनपदा उत्तरकुरवः, ८.१४) और उनका देश 'देवक्षेत्र' था (८.२३)। मध्य-हिमालय से आर्यों ने जब दक्षिण में मध्यदेश की ओर संक्रमण किया, तब इन औपनिवेशकों ने अपने पुराने देश के नाम पर ही इसका नाम 'कुरुदेश' रखा, और उसकी एक धारा को वे सरस्वती के नाम से पुकारने लगे। परवर्ती साहित्य में, कुरुदेश के आर्य औपनिवेशकों के मूलदेश को ही 'उत्तर-कुरु' कहा गया है। अस्तु, मेरा अनुमान है कि ऋग्वेदीय सरस्वती अवश्य उत्तर-कुरु के दक्षिणी सीमान्त में अवस्थित थी, और यह बदरिकाश्रम से होकर प्रवाहित होनेवाली वर्तमान 'सरस्वती' ही है।

(७) भागवतपुराण में सांख्यदर्शन के प्रसंग में कपिल मुनि का कथन है कि भगीरथ ने सरस्वती को परिवर्तित किया। यह निर्देश सरस्वती-गंगा समीकरण को सिद्ध करता है।

सामान्यतः जिस प्रकार ब्राह्मण-ग्रन्थों के उल्लेख ऋग्वैदिक उल्लेखों से शताब्दियों पश्चात् के हैं। उसी प्रकार, महाभारत एवं पुराणों के कुरुक्षेत्रवर्ती सरस्वती सम्बन्धी उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थों के उल्लेखों से शताब्दियों पश्चात् के हैं। इस दृष्टि से, ऋग्वैदिक सरस्वती के अभिज्ञान की अधिकांश सामग्री ऋग्वेद में ही प्राप्त होनी चाहिए। इनमें से कुछ हमने पूर्व पृष्ठों में प्रमाण रूप में दी हैं। परन्तु ऋग्वेदकालीन अनेक अनुश्रुतियाँ यथावत् स्वतः ही उत्तर-वैदिक एवं पौराणिक वाङ्.मय में भी आ गयी हैं। अतएव ब्राह्मण-ग्रन्थों एवं इतिहास-पुराणों के उक्त संदर्भ भी सिद्ध करते हैं कि, कालान्तर में कुरुक्षेत्र - प्रवाहिनी 'दक्षिण-सरस्वती' की महिमा बढ़ने पर भी, बदरीक्षेत्र की ऋग्वैदिक सरस्वती की अनुश्रुतियाँ लोकमानस में विद्यमान थीं। इन पौराणिक संदर्भों में प्राचीन अनुश्रुतियों का अवश्य ही समावेश है।

ग. भूगर्भशास्त्रीय प्रमाण

भूगर्भविदों को कुछ ही समय पूर्व हिमालय से प्रयाग तक गङ्.गा-यमुना अन्तर्वेदी के मध्य एक भूमिगत जलधारा फैले होने के अवशेष प्राप्त हुए हैं जिसे वे भूमिगत प्राचीन सरस्वती मान रहे हैं। इस खोज ने, यदि यह सत्य है तो, पुराकाल में सरस्वती के भूमि में अन्तर्निहित होने और प्रयाग में गङ्गा से संगम की भारतीय पुरागाथा को ही पुष्ट नहीं किया, अपितु सरस्वती के गङ्गा-प्रवाहक्षेत्र की नदी होने की हमारी धारणा को सत्य सिद्ध कर दिया है।

३.

सारस्वत सभ्यता के दो काल

इस तथ्य को स्वीकार करने के पर्याप्त कारण हैं कि 'सारस्वत सभ्यता' प्राक्-हड़प्पीय थी। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि सारस्वत सभ्यता दो क्रमिक विकासों में आगे बढ़ी। प्रथम, पूर्व-सारस्वत सभ्यता तथा द्वितीय, उत्तर- सारस्वत सभ्यता।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(१) पूर्व-सारस्वत सभ्यता-

इसे आद्य सारस्वत सभ्यता अथवा पूर्व-वैदिक सभ्यता कहा जा सकता है जो बदरिकाश्रम हिमालय के आसपास पल्लवित हुई थी। वस्तुतः पूर्व-वैदिक संस्कृति का सूत्रपात सरस्वती नदी के पावन तटों पर हुआ था, जब आर्य नरनारायण-आश्रम एवं सप्तसिन्धु की उपरली उपत्यकाओं में निवास करते थे। आर्यों के लिए तब सरस्वती ही पवित्रतम नदी थी। सरस्वती तटवर्ती होने के कारण आर्यों को 'सारस्वत' कहा गया है।

सरस्वती वैदिक नदियों में से ज्येष्ठा थी। ऋग्वेद (२.४१.१६) में उसे मातृगणों में श्रेष्ठ, नदियों में श्रेष्ठ एवं देवियों में श्रेष्ठ कहा गया है (अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति)। "प्रवाहित होकर सरस्वती ने जलराशि उत्पन्न की है, ओर इसके अतिरिक्त समस्त ज्ञानों का भी जागरण किया है (ऋ0, १.३.१२) "वह देवलोक से बृहत् पर्वतों से होकर निःसृत होती है" (ऋ., ५.४३.११)। "जो नदियों में सबसे बेगवती हैं, और श्रेष्ठता के कारण अतीव गुणशालिनी हैं ... तुम हमारा बन्धुत्व और गृह स्वीकार करो। हम तुम्हारे समीप से निकृष्ट स्थान को न जायें" (ऋ., ६.६१.१३-१४)।

पूर्व-सारस्वत काल में उत्तर-कुरु की दक्षिणी सीमा पर बहनेवाली इसी सरस्वती ने बध्र्यश्व को दिवोदास जैसा योद्धा पुत्र दिया। यह न अराकोसिया की हरह्वैती है जैसा कि हिलब्राण्ट ने कहा है, और न कुरुक्षेत्र की सरसुती जैसा कि अनेक विद्वानों ने कल्पना की है। ऋग्वेद ६.६१ के प्रथम मन्त्र में आये दिवोदास के उक्त वर्णन को यदि इस सूक्त के अगले मन्त्रों से मिलाकर अनुशीलन करें तो जिस सरस्वती - तट पर दिवोदास ने जन्म लिया था वह स्पष्टतः पर्वतीय धारा की विशेषताओं से युक्त थी : "घोरा हिरण्यवर्तिनी", "अमश्चरति रोरुवत्", इत्यादि। ये पर्वतीय विशेषताएँ न हरह्वैती में हैं न सरसुती में, यह हम पूर्व ही बता चुके हैं।

आर्यों ने उसे यदा-कदा 'सिन्धु' नाम से भी पुकारा है। सरस्वती एवं सप्तसिन्धु के तटों पर ही आर्य ऋषियों ने पराज्ञान की प्राप्ति की थी। यहीं ऋग्वेद का अधिकांश अंश रचा गया और पुनः संग्रहीत किया गया था। उस विशुद्धा एवं शुभ्रवर्णा के तट पर वैदिक यज्ञों का विकास हुआ था (**'यज्ञं दधे सरस्वती'**, ऋ0, १.३.११)।

यह अनुमान संगत है कि ऋग्वेद में सरस्वती का पार्थिव नदी-रूप ही प्रायः दिखायी देता है। "नदियों में एकान्ततः सरस्वती ही शुचि है, जो पर्वतों से निःसृत होकर समुद्र में प्रवाहित होती है" (ऋ0, ७.९५.२)। परन्तु, बाजसनेयिसंहिता (१९.१२.९४) में सर्वप्रथम इसको पार्थिव नदी से दिव्य देवी के नये संदर्भ में पाते हैं, और आगे ब्राह्मण-ग्रन्थों में तो इसका 'वाक्' से

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ताद्रूप्य पूर्णतः प्रतिष्ठित कर दिया गया है ('वाक् तु सरस्वती', ऐ० ब्रा०, ३.१.१०; कौ० ब्रा०, ७.६)।

(२) उत्तर-सारस्वत सभ्यता-

यह सभ्यता उत्तर-वैदिककालीन थी और प्रधानतः दक्षिण में कुरुक्षेत्र के चतुर्दिक विकसित हुई थी। उत्तर-वैदिककाल में, उत्तर-कुरु से आर्यों की एक शाखा का जब दक्षिण की ओर कुरुक्षेत्र में प्रसार हुआ, तब वहाँ भी उन्होंने सरस्वती की कल्पना की। प्रो० चट्टोपाध्याय का अनुमान है कि दक्षिण की ओर बढ़ने में सर्वप्रथम विश्वामित्र के साथ आये भरतों ने कुरुक्षेत्र की इस नदी को 'सरस्वती' नाम से पुकारा। इससे सहमत होने के लिए अनेक प्रमाण हैं क्योंकि सभी औपनिवेशिक इसी प्रकार नये स्थान में अपने पुराने स्थान-नामों का प्रयोग करते हैं। भारतीय साहित्य में कुरुक्षेत्र की एक लघु धारा को कालान्तर में सरस्वती के नाम से पुकारने के स्पष्ट निर्देश हैं। वामनपुराण (अ०, ३७) में वर्णित है कि यज्ञ-फल की प्राप्ति हेतु जब ऋषियों को पुष्कर एवं कुरुक्षेत्र में सरिच्छ्रेष्ठा सरस्वती न दिखायी दी, तब पितामह एवं ऋषि मड्.कणक ने सुप्रभा नामक धारा को ही सरस्वती कहकर प्रसिद्ध किया। मड्.कणक की गाथा महाभारत, कूर्मपु०, पद्मपु० आदि में भी वर्णित है। महाभारत (६२.५३-५५) और वामनपु० (३७.१७-१८) के अनुसार, पीछे कुरुक्षेत्र के सारस्वततीर्थ में ही सुप्रभादि 'सप्तसरस्वती' की कल्पना की गयी।

यदि सारस्वत आर्यों का दक्षिणवर्ती संक्रमण ब्राह्मण-ग्रन्थों के रचनाकाल के समय होने लगा था तो ब्राह्मण-ग्रन्थों, श्रौतसूत्रों आदि में जिस सरस्वती की महिमा का वर्णन है, वह कुरुक्षेत्र-प्रवाहिनी सरस्वती है। निस्संदेह कुरुक्षेत्र के आसपास का सम्पूर्ण प्रदेश यजुर्वेद और ब्राह्मण-ग्रन्थों के युग की सभ्यता का प्रधान केन्द्र बन चुका था। यही प्रदेश ऐत० ब्रा० में 'मध्यमा प्रतिष्ठा दिश' के नाम से अभिहित है। ऐतरेय ब्राह्मण (८.१) में कवष की गाथा प्रकट करती है कि इस ग्रन्थ के रचनाकाल में बदरिकाश्रम - प्रवाहिनी नदीतमा सरस्वती अब अधिक चर्चित नहीं थी। "**ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत.....**" जैसी पदावली दक्षिणवर्ती सरस्वती के लिए हैं। ऋग्वेदसंहिता के अर्वाचीन मंत्रों (१०.६४.९; १०.७५.५-६, इत्यादि), तैत्तिरीयसंहिता, ऐतरेयब्राह्मण, ताण्ड्यमहाब्राह्मण, प्रभृति उत्तर-वैदिक साहित्य में भी 'सरस्वती' शब्द कुरुक्षेत्रवर्ती सरस्वती के लिए ही आया है। **पञ्चविंशब्राह्मण** (२५.१०.६) तथा **ताण्ड्यमहाब्राह्मण** में इसी सरस्वती के 'विनशन' (विलोप-स्थान) का उल्लेख है। जैमिनीयब्राह्मण में इसी सरस्वती के 'उपमज्जन' (पुनः ऊपर निकल आने का स्थान) और 'सरस्वती के शैशव' (सरस्वती की प्रारम्भिक धारा) का वर्णन है।

हम लिख चुके हैं कि महाभारत में प्रधानतः कुरुक्षेत्र-प्रवाहिनी सरस्वती ही का वर्णन

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्राप्त हैः पाण्डव द्वैतवन से सरस्वती तटवर्ती मरुधन्व की समतल भूमि काम्यकवन में गये थे (वन0, अ0 ४ एवं ३७)। मरुपृष्ठ पर जहाँ सरस्वती अन्तर्निहित हो जाती है वहाँ विनशनतीर्थ है (वन0, ८0.११८), एवं कुरुक्षेत्र सरस्वती तटवर्ती था (वन0, अ0 ८१), इत्यादि। शल्यपर्व में भी बलराम द्वारा जिस सरस्वती के तीर्थों की यात्रा का वर्णन है, वह कुरुक्षेत्र-प्रवाहिनी ही है।

वस्तुतः उत्तर-वैदिककालीन एवं पुराणकालीन परवर्ती साहित्य में, मूल सरस्वती सम्बन्धी स्वल्प निर्देशों को छोड़कर, जिस सरस्वती का वर्णन हैं, वह कुरुक्षेत्र में ऋषियों द्वारा आहूत 'दक्षिणी सरस्वती' है। यही सरस्वती "यमुना एवं शतुद्रि के मध्य" प्रवाहित होती है। हिमाचल प्रदेश में शिवालिक पहाड़ियों से निकलकर यही आदिबदरी स्थान पर मैदान में उतरती है। यही भटनेर में मरुभूमि में विलुप्त होनेवाली वर्तमान 'सरसुती' है। अल्-बीरूनी (२५) के शब्दों में, यही "सर्सती सोमनाथ के पूर्व में एक बाण के अन्तर पर समुद्र में गिरती है।"

इस प्रकार, उत्तर-वैदिककालीन सारस्वत सभ्यता का प्रधान केन्द्र था कुरुक्षेत्र। कुरु-पञ्चाल अथवा मध्यदेश। परन्तु इसी काल में ऐलों अर्थात् आर्यों की कुछ शाखाएँ मध्यदेश के पूर्व और पश्चिम में संक्रमित हो चुकी थीं। शतपथब्राह्मण (१.४.१.१४) में पूर्वी संक्रमण का उल्लेख मिलता है, जिसमें कहा गया है कि सरस्वती तटीय राजा विदेघ माथव और उसका पुरोहित गोतम राहूगण पूर्व में सदानीरा (गंडक) के उस पार रहने लगे थे। आर्यों की एक अन्य शाखा मध्यदेश से वर्तमान सिन्धुनद से पश्चिम की ओर संक्रमित हुई। डॉ0 राजबली पाण्डेय का यह निष्कर्ष संगत है कि "नंदीस्तुति - सूक्त प्रैयमेध सिन्धुक्षित् की पश्चिमाभिमुख यात्रा का द्योतक है।" पश्चिमोन्मुख इस शाखा ने भी मूल सरस्वती के नाम से वहाँ भी सरस्वती की कल्पना की। सिन्धुनद के पश्चिमवर्ती अराकोसिया प्रदेश को अवेस्ता (बेन्दिदाद, प्र0, १३) में 'हरक्षवैती' और बेहिस्तान इत्यादि प्राचीन ईरानी अभिलेखों में 'हरह्वैती' नाम मिलता है। निश्चय ही, उत्तर-वैदिक सारस्वत सभ्यता के युग में आर्यों का भौमिक प्रसार मध्यदेश से पूर्व और दक्षिण की ओर ही नहीं पश्चिम की ओर भी हो रहा था।

सारांशतः उत्तर - सारस्वत सभ्यता मुख्यतः कुरुक्षेत्र के कुरुओं की थी जो मध्य-हिमालयवर्ती उत्तर-कुरुओं से सम्बन्धित थे।

४.
निष्कर्ष

साहित्यिक एवं भौगोलिक साक्ष्य प्रमाणित करते हैं कि उत्तर-वैदिककालीन एवं पौराणिक भारतवर्ष में अनेक सरस्वती नदियाँ थीं। वामनपुराण (१३.२०) में हिमवत्पादनिःसृता पञ्चसरस्वती (सरस्वती पञ्चरूपा) नद्रियों का वर्णन मिलता है। इसी पुराण में आगे (४२.६)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दिशा-प्रवाह से सरस्वती के विभिन्न रूपों का उल्लेख है। वामनपु० (अ० ३७) और महाभारत (शल्य०, अ० ३७) में भी सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, ओघवती, विम्लोदका, इत्यादि 'सप्तसरस्वती' का स्पष्ट वर्णन है जो क्रमशः पुष्कर, नैमिष, गया, कुरुक्षेत्र, केदार - हिमालय आदि स्थलों में प्रवाहित होती थीं। देवल ने अनेक स्थलों को सारस्वततीर्थ (सारस्वतानि) नाम से पुकारा है (तीर्थकल्पतरु, पृ० २५०)। हिमालय में ही आज बहुशः सरस्वती नदियों का अस्तित्व है।

वस्तुतः परवर्तीकाल में मङ्कणक, उद्यालक, वशिष्ठ, प्रभृति "तपस्वी मुनियों ने जहाँ सरस्वती को आहूत किया, वहाँ-वहाँ सरस्वती गयी" (शल्यपर्व, ३७.३; तु०, वामनपु०, अ०, ३७)। ऋग्वैदिककाल में एक ही सरस्वती थीः नदीतमा सरस्वती, सिन्धुमाता सरस्वती। उसे ही कालान्तर में अन्यत्र 'आहूत' किया गया था।

सारांश यह है कि ऋग्वेदीय सरस्वती बदरिकाश्रम हिमालय में प्रवाहित होती थी। सप्तसिन्धुओं का महाप्रवाह सरस्वती के नाम से वर्तमान गङ्गा-प्रवाहक्षेत्र से होकर पूर्व-सागर में संगम करता था। इस प्रकार, वर्तमान अलकनन्दागङ्गा का ही ऋग्वेदीय नाम सरस्वती था (मानचित्र सं०-१)।[१२] शताब्दियों पश्चात्, जब दक्षिण में कुरुक्षेत्र आर्य सभ्यता एवं संस्कृति का प्रधान केन्द्र बन गया, तब स्मृति बनाये रखने के लिए कुरुक्षेत्र में सरस्वती की कल्पना की गयी, और तब इसी 'दक्षिण-सरस्वती' का महत्व बढ़ गया। वस्तुतः ऋग्वेद की 'नदीतमा' सरस्वती आर्यों की इतनी पूज्या थी कि परवर्ती आर्य-प्रसार के प्रदेशों में अनेक धाराओं को यज्ञीय कार्यों के लिए सरस्वती नाम दिया गया।

बाबा साहब आपटे स्मारक-समिति की इतिहास संकलन योजना के तत्वावधान में पद्मश्री डॉ० वि० श्री० वाकणकर के नेतृत्व में आयोजित 'वैदिक सरस्वती शोध अभियान' के सर्वेक्षण (१९८५ ई०) से जो प्राथमिक निष्कर्ष समिति के प्रकाशन **सरस्वती शोध** (नागपुर, १९८८ ई०) में प्रकाशित हुए हैं, उनमें से निम्नांकित विचार द्रटव्य हैं:-

(१) "तभी हिमालय में भी भौगोलिक उत्थान हो रहा था। अतः माना के निकट निकलने - वाला (सरस्वती का) यह प्रवाह-मार्ग बीच-बीच में अवरुद्ध होता गया" (पृ० ११)।

(२) "मोहेंजो-दाड़ो - हड़प्पा की सभ्यताएँ वैदिक लोगों की थीं" (पृ० २६)। "सिन्धु-सभ्यता अर्थात् हड़प्पीय सभ्यता को वेदोत्तर उपनिषद्-काल से सम्बद्ध कर सकते हैं "(पृ० १०)। "हमने इस हड़प्पीय सभ्यता का नामकरण "सारस्वत-सभ्यता" किया है, क्योंकि मूलतः इसका विकास (कुरुक्षेत्र के आसपास) सरस्वती-क्षेत्र में ही हुआ" (पृ० १०)। "(हरियाणा एवं राजस्थान के) सारे प्रमुख तीर्थ-स्थान हड़प्पीय या प्राग्-हड़प्पीय सभ्यता से सम्बद्ध हैं" (पृ० ४४)।

प्राथमिक सर्वेक्षण के इन तथ्यों से भी हमारी स्थापनाओं की पुष्टि होती है। प्रथम,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बदरीनाथ के समीप माना से प्रवाहित सरस्वती ही ऋग्वैदिक सरस्वती है। हिमालय का यही अञ्चल सरस्वती का उद्गम था, सिरमौर की पहाड़ियों में आदिबदरी वाला प्रवाह नहीं। द्वितीय, यतः हड़प्पीय सभ्यता ब्राह्मण एवं उपनिषद्कालीन वैदिक लोगों की सारस्वत सभ्यता है। अतः, वास्तव में, यह 'उत्तर-सारस्वत सभ्यता' थी, दक्षिण में वैदिक लोगों के प्रसार के उपरान्त की।

सन्दर्भ

१. Roth, **St. Petersberg Dictionary**, Vol. VII, p. 786.

२. "Identification of the Rgvedic River Sarasvati", **Calcutta University, Journal of the Deptt. of Letters**, Vol. XV, P. 45-48; "वैदिक भूगोल", (भूगोल का भुवनकोषाङ्क प्रयाग, १६३२ ई०): **Rgvedic River Sarasvati**, Reprit, New Delhi, 1986.

३. Prof. Macdonell, **Hist. of Sanskrit Lit.**, p.142; **Vedic Mythology**. p. 87; **Vedic Index**, Vol.II, 435-437.

४. Prof. Keith, **Vedic Index**, पूर्व उद्धरित; **Camb. Hist. of Ind.**, I,Ch. IV, p.80.

५. **भारतीय आद्य इतिहास का अध्ययन** (हिन्दी अनुवाद), पृ० ८६।

६. हरिराम धस्माणा, वेदमाता, १६५४ ई.; भजन सिंह, **आर्यों का आदिदेश मध्य हिमालय**, १६६८ ई०; शूरवीर सिंह पँवार, "Uttarakhand, the Cradle of...." (**The Himalaya**, Vol.I, JOHSARD, Garhwal Univ. Shrinagar, 1977.)।

७. द्रष्टव्य, **Virgil's Aeneid** (Ch. IX), जिससे ज्ञात होता है कि प्राचीन यूनानी भी गङ्गा की सप्तधाराओं से परिचित थे।

८. **Rgvedic River Sarasvati**, first Indian Reprint, New Delhi, p. 19.

९. **श्रीवामनपुराण** (कल्याण का विशेषांक, गीताप्रेस गोरखपुर, १६८२ ई०)।

१०. **महाभारत**, डॉ० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर द्वारा सम्पादित (स्वाध्याय मण्डल पारडी, वि० सं० २०२५-२०३६)।

११. **श्री सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन-ग्रन्थ**, काशी, वि० सं० २00७, पृ० ८८.

१२. **ऋक्संहिता** के दशम मण्डल (७५.५) में अवश्य गङ्गा नदी का नामोल्लेख है ('इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति'), परन्तु यह नदीस्तुति-सूक्त ऋग्वेद का अत्यन्त अर्वाचीन अंश माना जाता है। इस सूक्त की रचना के समय गङ्गा की महिमा बढ़ चुकी थी तथा कुरुक्षेत्रवर्ती सरस्वती ही अधिक चर्चित थी।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तृतीय अध्याय

पुराणों में हिमवन्त

१. हिमवन्त अथवा केदारदेश

पौराणिककाल में उत्तर प्रदेश के पर्वतीय मण्डल गढ़वाल को केदार, केदारदेश, केदारमण्डल और केदारक्षेत्र कहा जाता था। यद्यपि इसके प्राचीनतर नाम हिमालय, हिमवन्त, हिमवत् देश और बदरिकाश्रम भी प्रचलित थे। स्कन्दपुराण के अन्तर्गत (?) केदारखण्ड (अ० १०२) में हिमवत्-देश और केदारदेश नाम पर्याय रूप में आये हैं। गढ़वाल के उक्त पौराणिक नाम बारहवीं शती विक्रमी में भी प्रचलित थे। क्योंकि राजतरंगिणी में 'केदारमण्डल' और अशोकचल्ल के गोपेश्वर - लेख में 'केदारभूमि' नाम मिलते हैं। केदारमण्डल की पौराणिक सीमाएँ क्या थीं? केदारखण्ड के अनुसार, श्वेतपर्वत के पंचखण्ड हैं और उनमें 'केदार' सबके मध्य में है। इसकी सीमाएँ गङ्गाद्वार से श्वेतगिरि और तमसा से पूर्व में बौद्धाचल पर्यन्त हैं (४०.२८,; २०६.२०-२१)। यहीं प्रकारान्तर से इसकी सीमाएँ मायाक्षेत्र गङ्गाद्वार से रत्नस्तम्भ और नन्दापर्वत से काष्ठगिरि पर्यन्त कही गयी हैं (१०१.३०-३१), अथवा कण्वाश्रम से समारम्भ कर नन्दगिरि पर्यन्त (५७.१०)।

महाभारत और पुराणों में जहाँ भी 'हिमालय' नाम आया है उसका मन्तव्य इसी प्रदेश से है। भारतवर्ष के उत्तर में "देवतात्मा हिमालय" यही है। हिमालय की महनीयता के लिए ऋषियों की यह अमर अभिव्यक्ति हिन्दू पुराण - प्रणेताओं को इतनी प्रभावित कर गयी कि महाशिवपुराण में हिमालय के लिए यही अभिव्यक्ति रुद्रसंहिता के पार्वतीखण्ड (१. १४-१६) में मिलती है। 'केदारखण्ड' के अनुसार, गंगाद्वार से उत्तर में "स्वर्गभूमि" है (गङ्गाद्वारोत्तरंस्वर्गभूमिः अन्यत्र पृथिवी प्रोक्ता)। क्योंकि यहाँ सरिद्वरा गंगा बहती है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२. केदाराधिपति शिव

'शिवमहापुराण' में वर्णित है कि सर्वेशशिव विशेषतः केदारक्षेत्र के स्वामी हैं। नर-नारायण ऋषियों और पाण्डवों ने शिव के केदारेश्वरलिंग की पूजा की थी (कोटिरुद्रसं0, अ0 १६)। शैव पुराणों की ये उक्तियाँ कि बदरिकाश्रम शैवस्थान है, नर-नारायण ने बदरिकाश्रम में केदारेश्वरलिंग की पूजा की थी और, श्रीकृष्ण ने बदरीपर्वत पर शिवपूजन किया[1], केवल शिव-माहात्म्य को बढ़ाने के लिए कही गयी होंगी, परन्तु यह सत्य है कि पौराणिककाल में केदारक्षेत्र में शिव का प्रभाव सर्वाधिक हो चुका था। इसीलिए वामनपु0 (अ0 ६५ और १२१) में शिव का एक नाम 'केदाराधिपति' कहा गया है। वराहपुराण (अ0 ६७ और १२२) के अनुसार भी केदारक्षेत्र पाशुपततीर्थ है जहाँ ब्रह्मशिरच्छेदन करने पर उससे मुक्ति पाने के लिए रुद्र कापालिक व्रत का पालन करते हुए रुद्रमहालय, दारुवन, केदारवन में घूमते रहे।

३. सरस्वती तटवर्ती बदरिकाश्रम

पौराणिककाल में भी बदरिकाश्रम के विद्याकेन्द्र की वही ख्याति थी जो उसकी वैदिक - और महाभारत-काल में थी। वामनपु0 (२.४२,७६.५) में इस नरनारायण-स्थान को हिमालय में वहाँ बताया गया है जहाँ पुण्य सरिता सरस्वती है। इसका अपर नाम महाभारत वनपर्व में और पुराणों में 'विशाला' भी मिलता है। वराहपु0 में विशाला एक वैष्णवस्थली के रूप में वर्णित है जहाँ मनु-पुत्र प्रियव्रत ने तपस्या की थी (अ0२)। ब्रह्मपुराण, वामनपुराण, आदि वैष्णव पुराणों में बदरिकाश्रम अष्टोत्तरशत विष्णुस्थानों में है जहाँ नारायण निवास करते हैं।

'बदरिकाश्रम' के सम्बन्ध में वामनपु0 के दो श्लोक विशेष द्रटव्य हैं। पहले (२.४२) में उसे सरिद्वरा सरस्वती-तट पर और दूसरे (६.४) में उसे गङ्गा-तट पर बताया गया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सरस्वती ही गंगा हैं, अथवा गंगा की शीर्षधारा सरस्वती है। बदरी में सारस्वततीर्थ का वर्णन पद्मपु0 (अ0 १३३) में भी मिलता है। वामनपु0 (११.१८) ही में अन्यत्र हिमालयवासी गंधर्वों का धर्म नृत्य-वाद्य के साथ सरस्वती में स्थिर भक्ति बतायी गयी है। नरनारायण- स्थान बदरिकाश्रम सरस्वती-तट पर ही था। अस्तु गंधर्वसेवित मूल सरस्वती यही है, इसी को ऋग्वेद में 'सिन्धुमाता' और 'नदीतमा' कहा गया है। कुरुक्षेत्र- प्रवाहिनी सरस्वती पृथक् नदी थी जिसका महत्व आगे आर्यों के दक्षिणवर्ती प्रसार के साथ बढ़ गया था। बदरिकाश्रम में ही वेदों के संग्रहकर्ता और 'जय'के रचयिता महर्षि व्यास और सात्त्वतशास्त्र के प्रणेता नारद के आश्रम थे। भारत में वैदिक विद्याकेन्द्र के रूप में बदरिकाश्रम की अन्यतम ख्याति थी। सम्भवतः इसी कारण ऋग्वेद के कौषीतकी ब्रा0 (७.६) में उत्तर भाग में वाग्देवी सरस्वती का वास माना गया होगा।

युग-युगों में बदरिकाश्रम वैष्णव वा सात्त्वत धर्म का प्रधान केन्द्र रहा। शैवों के बढ़ते

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रभाव-काल में अथवा शैव-प्रभाव बढ़ाने के प्रयास में 'शिवमहापुराण' की विद्येश्वरसंहिता (१२.२०) में बदरिकाश्रम को 'शैवस्थान' भी बताया गया है। पाण्डुकेश्वर - ताम्रपत्र[2] के अनुसार, कार्तिकेयपुर - नरेशों के राज्यकाल (प्रायः नवीं शती ई० का उत्तरार्द्ध) में यहाँ आश्रम विद्यमान था और उसकी एक शाखा धौली तटीय तपोवन में भी चलती थी जिसे "बदरिकाश्रमीय तपोवन" कहा जाता था।

केदारखण्ड में आये 'बदरिकाश्रम' और 'बदरिकाश्रममण्डल' नाम मात्र-परम्परागत उल्लेख हैं। आज से प्रायः चार शती पूर्व उसकी रचना के समय तक, 'बदरीनाथ' नाम प्रचलित हो चुका था। इस काल से कई शती पूर्व ही इसका विद्याकेन्द्र के रूप में आश्रम समाप्त हो गया था। केदारखण्ड (अ०, ५७, ५८, ६२) में बदरीवन अथवा बदरीनाथ के प्रसंगों में अब कहीं सरस्वती का भी उल्लेख नहीं मिलता है। प्रत्युत उसके स्थान पर सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा का ही उल्लेख है। इसके पूर्ववर्ती ग्रन्थ 'हरिवंशपुराण' (३.७३.४०) में भी बदरीपुरी को गंगाजल ही से प्लावित बताया गया है। यद्यपि यह पुरी उस काल में भी "मुनिजुष्टातपोमयी" और ब्राह्मण धर्म एवं विद्या का आश्रम मानी जाती थी। पाण्डुकेश्वर के अन्य ताम्रपत्र में भी बदरिकाश्रम को "विष्णुगङ्गा - सम्मेलित" कहा गया है। अस्तु, 'नदीतमा' सरस्वती के नाम का प्रचलन सप्तम-अष्टम शती विक्रमी तक समाप्त हो चुका होगा।

४. केदार-यात्रा पथ

पौराणिककाल में भी बदरी - केदार की यात्रा के लिए यात्रियों के समूह भारतवर्ष के सुदूर जनपदों से अविरल आते रहे। हिमवन्त के नदी-संगम, नदी-उपत्यकाएँ, गिरि - गुहाएँ और पर्वतप्रस्थ पवित्र तीर्थों से संकुलित थे। अतएव माल प्रदेश से लेकर हिमालय-पदान्तिक सम्पूर्ण केदारभूमि में यात्रा-मार्गों का जाल बिछा था। 'केदारखण्ड' में तीन स्थलों पर[3] हमें तीन प्रधान यात्रा - मार्गों के जो वर्णन मिलते हैं, उनसे ज्ञात होता है कि यात्रा का प्रारम्भ मुख्यतः गङ्गाद्वार से होता था।[4] एक मार्ग कुब्जाम्रक, देवप्रयाग, भागीरथी-भिल्लांगना-संगम होकर सौम्यकाशी जाता था। दूसरा देवप्रयाग से पृथक् होकर श्रीक्षेत्र (श्रीनगर), अगस्त्याश्रम, कालीमठ होकर मध्यमेश्वर को जाता था। कुछ यात्री तीसरे मार्ग को ग्रहणकर, गंगाद्वार से पूर्व दिशा में कण्वाश्रम होते हुए पहले केदारनाथ और पुनः बदरीनाथ के दर्शन करते थे। बदरिकाश्रम - यात्रा का एक संदर्भ भागवतपुराण (एकादश स्कंध) में भी मिलता है जिसके अनुसार श्रीकृष्ण की प्रेरणा से उद्धव ने वहाँ की यात्रा की थी।

परन्तु केदारदेश के यात्रा-पथों की अन्तिम सीमा बदरिकाश्रम ही न थी। यात्रा-पथ यहाँ से आगे उत्तर में कैलास और मानसरोवर तक बढ़ जाता था। इसका ज्ञान हमें हरिवंशपुराण (कैलास-यात्रा प्रसंग) और अन्य स्रोतों से होता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

५. ऐल वंश का मूलस्थान

पुराणों के अनुसार, इला-पुत्र पुरूरवस् ऐल वंश का प्रथम राजा था। पुरूरवस् का नाम ऐल ऋग्वेद में भी आया है। पार्जिटर का यह कथन सत्य लगता है कि मनु-पुत्री इला से ये नाम बहुत प्राचीन हैं और, इला एवं इलावर्त नामों में सम्बन्ध प्राचीन हो सकता है। पुराणों में सुद्युम्न (= इला) को 'किम्पुरुष' कहा गया है जो उत्तर का प्रदेश था। प्रतिष्ठानपुर पुरूरवस् की राजधानी थी। पार्जिटर ने इसकी एकता प्रयाग से की है। उसकी संकल्पना का आधार हरिवंशपुराण (१.२६.६) आदि ग्रन्थों के वे संदर्भ हैं जिनमें पुरूरवस् द्वारा पुण्यतम देश महर्षियों से सेवित 'प्रयाग' में राज्य करने का उल्लेख है। परन्तु यह एकता संगत नहीं है। हमारी स्थापना है कि इन संदर्भों में 'प्रयाग' से आशय गंगा - सेवित केदारभूमि से ही रहा होगा जो प्रयागों से परिपूर्ण है। हरिवंशपुराण अ० २६ का निम्नलिखित संदर्भ द्रटव्य है :-

देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते ।। ४८ ।।
राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः ।
उत्तरे जाह्नवीतीरे प्रतिष्ठाने महायशाः ।। ४६ ।।

प्रतिष्ठानपुर को मध्य-हिमालय में कहीं होना चाहिए। यह तथ्य जयचन्द्र विद्यालंकार ने भी स्वीकार किया है। आगे ययाति ने समस्त 'मध्यदेश' विजित कर लिया था। पार्जिटर का यह निष्कर्ष महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए कि जिसे हम आर्य जाति कहते हैं, भारतीय अनुश्रुति में उसी को ऐल कहा गया है (हि० ट्रे०, पृ० २६५)। पौराणिक अनुश्रुतियाँ पुरूरवस् ऐल का सम्बन्ध मध्य-हिमालयीय प्रदेश से जोड़ती हैं। पुरूरवस् की पत्नी उर्वशी गान्धर्वी (अप्सरा) थी। वह मन्दाकिनी नदी के तट पर, अलका, चैत्ररथ, नन्दनवन और विशाला में; गन्धमादन एवं मेरुपर्वत पर; गंधर्वों की उत्तर-कुरुभूमि में विचरण करती थी।[५] अतएव ऐल (= आर्यों) का मूल यही प्रदेश है। यही मध्य-हिमालयीय प्रदेश भारतीयों के लिए सदैव पुण्यतम भूमि रही है। हिमालय से ऐलों का प्रसार पहले 'मध्यदेश' में और तदन्तर उसकी एक शाखा द्रुह्यु का उत्तर-पश्चिम की ओर संक्रमण, आर्यों के उत्तर-पश्चिम की ओर प्रसार को ही व्यक्त करता है।

वास्तव में, अनुश्रुतियाँ किसी वास्तविकता ही से विकसित हुई होंगी। अस्तु ऐलवंश के सम्बन्ध में, ऋग्वेद, महाभारत और पुराणों के अनुशीलन से तीन तथ्य प्रकट होते हैं - (१) ऐल (= चन्द्रवंश) का मूल मध्य- हिमालयीय प्रदेश है, और ऐल ही आर्य हैं। (२) प्रतिष्ठानपुर प्रयागराज में न होकर, गढ़वाल में चाँदपुरगढ़ और पैठाणी के मध्य कहीं पर होना चाहिए। इसके लिए यहाँ एक ही क्षेत्र में स्थित 'पैठाणी', 'पिठुण्डी' और 'पीठसैण' स्थान - नाम विचारणीय हैं। (३) ऐलों का मध्य - हिमालय से उत्तरी भारत और उत्तर - पश्चिम की ओर प्रसार ही आर्यों का प्रसार है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

६. मयूरध्वज एवं वन्यश्रीकेश्वर

पुराणों में अनेक ऐसे महत्वपूर्ण स्थान-नाम वर्णित हैं जिनके अभिज्ञान से हिमालयीय इतिहास के धूमिल पृष्ठ प्रोज्ज्वल हुए हैं। उदाहरणार्थ, चीनी यात्री युवान्-च्वाङ्. सुघ्न से 'मयूर' पहुँचा था। 'मयूर' का समीकरण ए० कनिंघम द्वारा भ्रान्ति से मायापुर (हरिद्वार) से किया गया था। परन्तु भविष्यपुराण (खण्ड दो, ५८, ७३) में 'मयूरनगर' और 'मयूरध्वज' नाम मिलने से तथा अन्य प्रमाणों से अब यह निश्चित हो चुका है कि चीनी यात्री का 'मयूर' गढ़वाल में कण्वाश्रम के समीप वर्तमान 'मोरध्वज' ही है। मरखाम (१८८७ ई०) द्वारा मोरध्वज के उत्खनन से उसके युग-युगीन इतिहास पर नया प्रकाश पड़ा है।

इसी प्रकार, केदारखण्ड (१६६.१३) में राष्ट्रकूट पर्वत और उससे सम्बद्ध स्थानों का उल्लेख भी महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ के अनुसार, राष्ट्रकूटपर्वत से नबालका (= नयार[६]) और रथवाहिनी (= रामगंगा) दो नदियाँ निकलती हैं और इस पर 'वन्यश्रीकेश्वर' शिव-मन्दिर स्थापित है। 'राष्ट्रकूट' राठ प्रदेश का दूधातोली पर्वत है और 'वन्यश्रीकेश्वर' है यहाँ का बिन्सर शिवमन्दिर। सातवीं शती विक्रमी के आसपास इसी मन्दिर का प्राचीन नाम 'वीरणेश्वर' था। तालेश्वर-ताम्रपत्रों में भगवान् वीरणेश्वरस्वामी का यह मन्दिर ब्रह्मपुर के पौरव-नरेशों के कुल-देवता का बताया गया है। वीरणेश्वरस्वामी (- नाथ) के लिए ताम्रपत्राभिलेख में "फणसहस्रस्यानन्तमूर्ति" और "भुजगराजरूपस्य" विशेषण शब्द आने से मेरी धारणा है कि बिन्सर - मन्दिर मूलतः शिव-मन्दिर ही था, अनन्तनाग का नहीं। जैसा कि कुछ अनुसंधित्सुओं ने कल्पना की है। यह निम्नांकित तथ्यों से सिद्ध होता है :

(१) 'स्वामी' विशेषण प्रधानतः शिव के लिए प्रयुक्त होता है।

(२) महाभारत के अनुशासनपर्व (अ० १७) में तण्डि-कृत शिवसहस्रनाम में एक नाम 'अहिर्बुध्न्य' है जिसका अर्थ है शेषनाग - स्वरूप शिव। इसी पर्व में अन्यत्र (अ० १५०) एकादश रुद्रों में द्वितीय नाम 'अहिर्बुध्न्य' ही आया है। शिवमहापुराण की कोटिरुद्रसंहिता (अ० ३५) में भी शिवसहस्रनाम के अन्तर्गत एक नाम "अनन्त" मिलता है जिसका अर्थ टीकाकार ने देशकालादि - परिच्छेद - रहित शिव किया है। अमरकोश में 'वीरेश्वर' स्वयं अनन्त का नाम है। शिव अष्ट नागकुलों के आराध्य थे, अतएव उनका एक नाम नागेश भी है। इन तथ्यों से सिद्ध होता है कि तालेश्वर - अभिलेख में "अनन्तमूर्ति" आदि विशेषण शिव के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं।

(३) राष्ट्रकूट के बिनसर का विद्यमान मन्दिर भी रुद्र-शिव का ही है। गर्भगृह में पिण्डिका पर एकादश रुद्रों की प्रतिष्ठा इसका प्रमाण है। मन्दिर - परिवेश में बिखरी सम्पूर्ण मूर्तियाँ शिव-परिवार ही से सम्बन्धित हैं। प्रारम्भिक शिश्न लिङ्ग और प्रांगण में विशाल वृषभ

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्य पुरातत्त्वीय प्रमाण हैं।

अस्तु, 'वीरणेश्वरस्वामी' अवश्य ही शिव हैं, अष्ट नागकुलों के अधीश्वर नागनाथ। 'केदारखण्ड' की रचना के समय इसका लोक-प्रचलित नाम 'बिनसर' हो चुका था। 'केदारखण्ड' के कर्ता ने इस प्रचलित नाम का संस्कृतीकरण 'वन्यश्रीकेश्वर' कर दिया। वीरणेश्वरस्वामी का मूल मन्दिर स्यात् इष्टका - निर्मित था। उसी स्थान पर वर्तमान मन्दिर नवीं-दशवीं शती विक्रमी की संरचना है।

७. कीर्तिमुख एवं गजसिंह : हिमवन्त की देन

देवालय स्थापत्य और देवप्रतिमाओं की भूषा के लिए अनेक प्राकृतिक वा काल्पनिक चित्राकृतियाँ कला में प्रयुक्त होती हैं। इन्हें सामान्यतः आज 'अलङ्कार' कहा जाता है। परन्तु महाभारत में इनके लिए 'अभिप्राय' शब्द प्रयुक्त हुआ है। कला में अलंकारों का प्रयोजन सौन्दर्यवर्द्धन एवं माङ्गल्य हैं और, सबसे बढ़कर, कला को गहनतर दार्शनिक अर्थ प्रदान करना है। पुराणों ने ही हिमालय-कला के अत्यन्त प्रिय दो महत्वपूर्ण अभिप्रायों (motifs) की व्याख्या दी हैं जिन पर अभी तक स्वल्प चर्चा हुई है।

प्रथम अभिप्राय है 'कीर्तिमुख' (चित्र - १)। पद्मपुराण और काश्यपशिल्प में इसका अपर नाम 'पञ्चवक्त्र' भी मिलता है। मङ्गल के प्रतीक कीर्तिमुख का अङ्कन मध्य-हिमाद्रि-कला में सातवीं शती से लेकर सोलहवीं शती विक्रमी तक अत्यन्त व्यापक रूप से हुआ है। आदिबदरी के आरम्भिक मन्दिर - द्वारों से लेकर क्यार्क (इडवालस्यूँ) की उत्तर-मध्यकालीन नन्दादेवी मूर्ति तक। शिवमहापुराण की रुद्रसंहिता (युद्धखण्ड, अ० २०) में कीर्तिमुख की उत्पति का विस्तार से वर्णन मिलता है। पार्वती को अपने लिए माँगने हेतु जलंधर ने दूत राहु को शिव के पास भेजा। इस पर क्रोध से शिव के भ्रू-मध्य से एक पुरुष प्रकट हुआ। सिंहमुख, लोलजिह्वा, प्रज्वलित महानेत्र, ऊर्ध्वकेश और महाशरीर वह गण राहु के ऊपर दौड़ा। शिव की आज्ञा से वह गण क्षुधा के कारण अपने हस्त-पाद का मांस भक्षण कर गया। मात्र-शिर शेष रह गया। तब शिव बोले - "तू कीर्तिमुख नामक मेरा द्वारपाल होगा। तू महागण महावीर समस्त दुष्टों को भय देनेवाला होगा।" उस दिन से शिव के द्वार पर कीर्तिमुख स्थित रहता है। शिव-पूजन के समय इस गण की विशेष रूप से पूजा करणीय मानी गयी है। शिवपुराण की विद्येश्वर- संहिता (२२.५०) में एकादश रुद्रों के पूजन से पूर्व कीर्तिमुख का पूजन अनिवार्य माना गया है। हर-गौरी की इन लीलाओं की भूमि निश्चय ही केदार हिमालय रहा है। अतएव अमङ्गल के अपसारण के लिए पञ्चानन रुद्र के प्रतीक इस अभिप्राय का अङ्कन मध्य-हिमालय-कला में ही व्यापक रूप में मिलता है। आदिबदरी और पलेठी (बनगढ़ पट्टी) में ये मालामुख हैं जबकि जोशीमठ, बैरासकुण्ड और भाभर के काशीरामपुर में घण्टा - श्रृङ्खला - सहित।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्वितीय अभिप्राय है 'गजसिंह' (चित्र - २)। शैव, शाक्त और वैष्णव सम्पूर्ण सम्प्रदायों के पुराण एक स्वर से गजसिंह अभिप्राय का भी उत्पत्ति स्थान हिमालय को मानते हैं। शिवमहापुराण, मार्कण्डेयपुराण और वामनपुराण[७] में यह महत्वपूर्ण तथ्य उद्घाटित हुआ है कि महालक्ष्म्यवतार पर देवी दुर्गा को देवताओं ने जब अन्य आयुध समर्पित किये थे तब हिमवान् ने उसे वाहन हेतु सिंह दिया ("हिमवान् मृगेन्द्रम्")। मध्य-हिमालयीय देवालयों के अग्रभाग पर शुकनास की भूषा के लिए गज को पराभूत करता 'गजसिंह' की स्थापना एक विशिष्टता है। यहाँ स्थापत्य का अंगभूत यह अभिप्राय इतना लोकप्रिय रहा कि इसे मैं 'हिमाद्रि शैली' के मन्दिरों की प्रधान विशेषता मानता हूँ। गोपेश्वर, तुंगनाथ, सिमली, केदारनाथ, पैठाणी और देवलगढ़ के प्राचीन मन्दिरों में यह मूल रूप में स्थापित मिलता है। अस्तु गजसिंह - अभिप्राय का मूल हिमवन्त है। सिंह हिमालय की शक्ति और विभूति है।

पुराणों ने हिमालय के इन कला-तत्त्वों को स्पष्ट किया है। दूसरे शब्दों में, 'कीर्तिमुख' और 'गजसिंह' अभिप्राय भारतीय कला को हिमालय की देन हैं, यह तथ्य मात्र पुराणों से ज्ञात हुआ है।[८]

८. उपसँहार

पुराण-साहित्य का अन्तिम सम्पादन उत्तर-गुप्तकाल तक होता रहा। कुछ इसके पश्चात् भी रचित होते रहे। भारतीय संस्कृति एवं इतिहास की मीमांसा के लिए यह महत्वपूर्ण सामग्री है। परन्तु हिमालयीय संस्कृति एवं इतिहास के स्रोत रूप में पुराणों का उपयोग निम्नलिखित सीमाओं को ध्यान में रखकर होना चाहिए: (१) पुराणों का अन्तिम सम्पादन विभिन्न हिन्दू सम्प्रदायों के गौरव-वर्णन के लिए हुआ है। फलतः दूसरे सम्प्रदाय से सम्बन्धित वर्णन स्वतः गौण महत्व के हो गये हैं। (२) अंतिम सम्पादन के पश्चात्, ये ब्राह्मण - विचारधारा के चरम ग्रन्थ हैं। इनमें एक शब्द भी हिमालय पर बौद्ध-प्रभाव के विषय में वर्णित नहीं है। (३) इनमें पाठ-भेद एवं वर्णन - भेद की बहुलता है। प्रक्षिप्तांश भी कभी प्रच्छन्न और कभी प्रत्यक्ष हैं। गहन निदानभावों का रहस्य सुगम नहीं है। अतएव इनमें सत्यान्वेषण के लिए निष्पक्षता और प्राचीनतर भारतीय परम्पराओं का ज्ञान अपेक्षित है।

भौगोलिक दृष्टि से, प्रधानतः 'हिमालय' का ही पुराणों में वर्णन है। विशेषतः उस केदार हिमालय का, जिसमें यक्षराज कुबेर की अलकापुरी है। जिसके पृष्ठ पर नन्दादेवी है जो ज्ञान - शक्ति है और जिस देवी को देवताओं ने हिमालय पर प्रतिष्ठित किया (मत्स्यपु०)। वराहपुराण के अनुसार, हिमवान् पर्वत पर सानन्द विराजने के कारण उसका नाम 'नन्दादेवी' हुआ। जिस हिमालय पर, शिव-उमा का विवाह-स्थान है। जहाँ हिमवान् ने यह कहकर उमा महेश को सौंप दी थी - "मेरे द्वारा दी जा रही पुलहाग्रज की पौत्री, पितरों की दौहित्री एवं मेरी पुत्री काली को

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आप स्वीकार करें" (वामनपु0, ५३)। जिस हिमालय का अनुपम उदात् वर्णन मत्स्यपुराण (५१.१५) में निम्नवत् हुआ है:-

अहीनशरणं नित्यमहीनजनसेवितम् ।
अहीनः पश्यति गिरिमहीन रत्नसम्पदा ।।

- यह हिमवान् नित्य ही अहीनों का शरण तथा अहीनों द्वारा सेवित है। अहीन ही इस गिरि को देखता है। तथा यह सर्वदा रत्नसम्पदा से अहीन ही रहता है।

सन्दर्भ

१. परन्तु भागवतों से सम्बन्धित हरिवंशपुराण (३.७३.३) में भी पुत्र-कामी श्रीकृष्ण द्वारा विशालाबदरी में शिवार्चन का वर्णन मिलता है। इसका स्पष्ट आशय 'अग्नीषोमात्मकंजगत्' के दार्शनिक भाव का निरूपण मानना चाहिए।
२. प0 म0 प0 ललितशूरदेव का ताम्रपत्राभिलेख, २२ वाँ राज्यवर्ष, पंक्ति २३-२४।
३. केदारखण्ड, ६५.४०-४५ तथा ४७.१५-२३ (बम्बई संस्करण)।
४. इसकी पुष्टि महाभारत (वनपर्व) के सन्दर्भ भी करते हैं।
५. हरिवंशपुराण, १.२६.५-८ (बम्बई सं0, पत्रात्मक)।
६. सूच्य है कि अपने उपरले अंचल में नयार का प्राचीन नाम 'रठगाड' (=राष्ट्र-नदी) आज भी प्रचलित है।
७. द्रष्टव्य, क्रमशः शिवमहापुराण की उमासंहिता (४६.२८), मार्क0 पु0 में देवीमाहात्म्य (२.२६) तथा वामनपु0 (१८.१)।
८. दोनों अभिप्रायों के विवेचन हेतु द्रष्टव्य, मध्य हिमालय का पुरातत्त्व, १९८१ ई0, पृ0 ८२ तथा ८८।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चतुर्थ अध्याय

पुरातत्त्व - निधि

(एक सर्वेक्षण)

१.

पुरातत्त्व से मन्तव्य

अपनी युग-यात्रा में मानव ने जिन शिल्प-उपकरणों को 'निर्मित' किया था और, प्रकृति-प्रदत्त शिल्पेतर उपकरण जिनका उसने अतीत में 'प्रयोग' किया था, पुरातत्त्व के ये दो प्रधान उपादान (materials) हैं। आँग्ल भाषा में इनके लिए क्रमशः ARTIFACT और NON-ARTIFACT शब्दावली का प्रयोग किया गया है। प्रकारान्तर से एक विश्वकोष[१] में पुरातत्त्व-सामग्री के तीन प्रधान वर्ग माने गये हैं जिनके आधार पर पुरातत्त्व की भी तीन प्रधान शाखाएँ बतायी गयी हैं : (१) लिखित पुरातत्त्व, (२) स्मारकीय पुरातत्त्व और (३) परम्परागत पुरातत्त्व। यदि 'लिखित पुरातत्त्व' के अन्तर्गत पुरालिपिशास्त्र एवं मुद्रित ग्रन्थ-सूचियों को लिया जाता है, तो 'परम्परागत पुरातत्त्व' में किसी जन-समूह के सम्पूर्ण अलिखित साहित्य, यथा- लोकगाथाएँ एवं अनुश्रुतियाँ, को सम्मिलित किया जाता है। यह समस्त सामग्री किसी देश की अतीतकालीन दशा का ज्ञान उपलब्ध कराती है। इस सामग्री का अन्वेषण, संग्रहण, संरक्षण, प्रामाणीकरण, वर्णन, समीक्षण एवं प्रकाशन पुरातत्त्वविज्ञान का कार्य है।

इस पुरा-सामग्री का उपयोग अनेक भाषाओं, लिपियों एवं कलाओं में दक्ष 'क्लासिकल वर्ग' के पुरातत्त्ववेत्ता तो मुख्यतः ललितकलाओं और इतिहास के रूप में करते हैं; परन्तु भूगोल, भूगर्भविज्ञान आदि में दक्ष 'मानवविज्ञान वर्ग' के पुरातत्त्ववेत्ता इसका उपयोग अतीत की सभ्यताओं के समूचे जीवन के अध्ययन के लिए करते हैं। इस प्रकार, मानव सभ्यताओं के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'इतिहास' के लिए पुरातत्त्व के उपादानों का एक साधन के रूप में उपयोग होता है।

मध्य हिमालय के इतिहास को वैज्ञानिक एवं तार्किक स्वरूप प्रदान करने के लिए, उसके पुरातत्त्व का अध्ययन इसी व्यापक अर्थ में हमें ग्रहण करना है।

२.
हिमालयीय पुरातत्त्व की पृष्ठभूमि

यमुना की सहायक टोंस की उपत्यका से लेकर पूर्व में नेपाल से सीमा बनानेवाली काली नदी-उपत्यका पर्यन्त विस्तृत मध्य हिमालय में गढ़वाल - कुमाऊँ हिमालय तथा अन्य भू-भाग फैले हैं। गङ्गा-स्रोत और विशालाबदरी से पुनीत यह हिमवन्त वैदिक एवं पौराणिक काल से एक धार्मिक क्षेत्र बना रहा। समस्त प्रकार की जलवायु की उपलब्धता एवं जीवन की सुरक्षा के कारण प्रागैतिहासिक काल से ही मानव ने इस प्रदेश में आश्रय लिया। जहाँ नदीतमा सरस्वती तथा ऋषि नारायण और कण्व के सूक्तों के पाठ की पुनीत ध्वनि सुनी जाती थी; महाभारत-काल में जहाँ पाण्डवों के विचरण करने तथा पार्वतीयों, जागुड़ों, तड्.गणों, नागों आदि द्वारा तत्कालीन घटनाओं में भाग लेने के वर्णन मिलते हैं; जहाँ से सम्बद्ध कैलासपति शिव, हिमवान्-सुता पार्वती, देवसेनापति स्कन्द एवं गान्धर्वी उर्वशी के उपाख्यान पुराणों के वर्ण्य विषय रहे हैं; उस हिमवत् - खण्ड की महिमा विश्व - विख्यात है। गन्धमादन पर बोधिसत्त्व एवं बुद्ध के पदार्पण की कथाएँ[२] और, सम्राट् अशोक के राज्यकाल में धर्म - प्रचार हेतु थेर मज्झिम के 'हिमवन्त' में आने की घटना बौद्ध-ग्रन्थों में वर्णित हैं (तु0, साँची स्तूप धातु-मंजूषा-लेख, जहाँ मज्झिम को 'सवहेमवताचरिय' कहा गया है।)। अस्तु हिमवन्त के प्रति बौद्धों की भी आदर-भावना रही है।

पूर्त धर्म पर पूर्ण निष्ठावान् ऐतिहासिक काल के धर्मप्राण मध्य हिमालयीय नरेशों का उल्लेख यहाँ प्रासंगिक होगा। इनमें सर्वप्रथम नन्दाभगवती के चरणकमल में तत्पर कार्त्तिकेयपुर के महान् कलाप्रेमी राजा हुए जो अपने को सगर्व 'परमब्रह्मण्य' एवं 'परममाहेश्वर' कहते थे। उनके पश्चात् गंगा की पर्वतीय घाटी में उन चन्द्रवंशीय राजाओं का उत्थान हुआ जो स्वमुद्राओं पर 'बदरीनाथो दिग्विजयी जयति सर्वदा' अंकित करते थे।

आद्य-ऐतिहासिक काल से लेकर आचार्य शङ्कर तक, और उनके उपरान्त भी, भारत के विभिन्न अंचलों से तीर्थयात्रियों का प्रवाह यहाँ गतिमान रहा। संस्कृत-पालि साहित्य तथा उपलब्ध पुरातत्त्व इसके प्रमाण हैं। गंगाद्वार युग-युगान्तर से देवभूमि में प्रवेश का सिंहद्वार बना था। कुछ यात्री - दल तो यहाँ से सीधे उत्तर दिशोन्मुख होते थे, जबकि कुछ पूर्व में कण्वाश्रम एवं मयूरध्वज से होकर बदरिकाश्रम और कैलास की यात्रा करते थे।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस भौगोलिक तथा धार्मिक पृष्ठभूमि में, युग-युगीन समृद्ध पुरातत्त्व यहाँ प्राप्त हो रहा है।

३.

प्रागैतिहासिक तथा आद्यैतिहासिक पुरातत्त्व

मध्य-हिमालय में प्रागैतिहासिक तथा आद्य-ऐतिहासिक पुरातत्त्व की खोज का इतिहास उन्नीसवीं शती ई० के छठे दशक से प्रारम्भ होता है, जब हेनवुड ने देवीधुरा के महापाषाण-अवशेषों का पता लगाया। गढ़वाल - कुमाऊँ मण्डलों की इन पहाड़ियों में इस काल की सामग्री का अभी विस्तृत अन्वेषण नहीं हो सका है। तथापि तब से आज तक जो पुरावशेष संयोग से अथवा उत्खनन से प्राप्त हुए हैं उन्हें सुविधा के लिए पाँच वर्गों में विभक्त किया जा सकता है :-

१. पाषाण-एवं ताम्र-उपकरण

१६५१ ई० में हरिद्वार से ८ मील पश्चिम में बहादराबाद में नहर खोदते समय जो ताम्र-उपकरण एवं मृद्भाण्ड प्राप्त हुए तथा इसी स्थल पर १६५३ ई० में यज्ञदत्त शर्मा द्वारा उत्खनन किये जाने पर पाषाण - उपकरणों के साथ जो हलके लाल गेरू रंगे भाण्ड (Pale - red ochre - washed Pottery) प्राप्त हुए उन्हें पुराविदों ने क्रमशः किसी ताम्रयुगीन तथा उत्तर - प्रस्तरयुगीन बस्ती के अवशेष माना है।[३] आर० वी० जोशी ने कालसी के समीप भी पुरा-उपकरण मिलने का उल्लेख किया है [४] अनुमान है कि ये संस्कृतियाँ समस्त गंगाद्वार क्षेत्र में विस्तृत रही होंगी। इसके पश्चात् १६८० ई० में गढ़वाल विश्वविद्यालय के इतिहास - पुरातत्त्व विभाग द्वारा अलकनन्दा - घाटी में पाषाणयुगीन उपकरणों की खोज की सूचना मिली जिन्हें मध्य प्रदेश में नर्मदा - घाटी में स्थित डोंगर ग्राम से प्राप्त उपकरणों के समरूप बताया गया है।[५] परन्तु पुराविद् इस समता के विषय में एकमत नहीं हैं।

महाभारतकालीन अनेक संदर्भ गढ़वाल हिमालय से सम्बद्ध बताये गये हैं। उदाहरणार्थ, महाभारत के आदिपर्व में महाराजा पाण्डु के 'हिमवत्पार्श्व' पर आने और शतश्रृंगपर्वत पर पाण्डु-पुत्रों के जन्म लेने एवं विवर्धित होने के वर्णन मिलते हैं। आरण्यपर्व में हिमालयवासी ज़ागुड - रामठ - खश - तंगणों द्वारा युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में भाग लेने तथा ऋषि लोमश के साथ पाण्डवों की कैलास-गन्धमादन यात्रा वर्णित है। पुनः महाप्रस्थानिकपर्व में पाण्डवों का स्वर्गारोहण हेतु प्रस्थान का वर्णन मिलता है। इन साहित्यिक उल्लेखों एवं धार्मिक परम्पराओं की पुष्टि थापली एवं पुरोला के आरम्भिक उत्खननों से होना बताया जा रहा है। थापली, श्रीनगर के सम्मुख अलकनन्दा के दक्षिण तट पर स्थित है तथा पुरोला यमुना-घाटी में उत्तरकाशी जनपद में। गढ़वाल विश्वविद्यालय द्वारा क्रमशः १६७६ ई० तथा १६८६-८७ ई० में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इन दो स्थलों के उत्खननों से यहाँ चित्रित धूसर मृद्भाण्डों (PGW) के खण्ड, पक्की मिट्टी के मनके और खिलौने, ताम्र-चूड़ियाँ, अश्व की अस्थियाँ, आदि पुरावशेष मिले हैं। उत्खनन-निदेशक डॉ० कां० प्र० नौटियाल का अनुमान है कि इन दो स्थलों के पुरावशेष निश्चिततः 'महाभारतकालीन सभ्यता' से सम्बद्ध हैं, क्योंकि प्रो० बृजबासी लाल तथा पश्चात् अन्य पुराविदों ने चित्रित धूसर मृद्भाण्ड संस्कृति को महाभारतकालीन संस्कृति से जोड़ा है और ऐसे ही सांस्कृतिक अवशेष महाभारत से सम्बद्ध स्थल हस्तिनापुर, तिलवत, पानीपत, इन्द्रप्रस्थ, बागपत, कुरुक्षेत्र से ही नहीं, अहिच्छत्रा, श्रावस्ती, ग्वालियर, उज्जयिनी आदि स्थलों से पहले प्राप्त हो चुके हैं[६]। परन्तु डॉ० धर्मपाल अग्रवाल थापली के मृणभाण्डों को "केवल ३00 ई0 पू0 का" बताते हैं।

डॉ० यशोधर मठपाल[७] ने अलमोड़ा जनपद की पश्चिमी रामगंगा - घाटी तथा नैनीताल जनपद में खुटाने नाले में पूर्व-पुरापाषाणकालीन प्रस्तर-उपकरण खोजे हैं। १९८६ ई0 में प्रकाश में आयी एक ताम्र-मानवाकृति, तथा १९८९ ई0 में पिथौरागढ़ जनपद के बनकोट स्थल से प्राप्त आठ ताम्र - मानवाकृतियाँ यदि ताम्रयुगीन हैं तो मध्य हिमालय में यह एक महत्वपूर्ण खोज है। डॉ० म0 प्र0 जोशी[८] ने इन्हें 'परशु-पुरुष' अर्थात् आयुध का मानवीकृत स्वरूप माना है। मूलतः अलमोड़ा जनपद से प्राप्त उक्त ताम्र - मानवाकृति को वे आकार-प्रकार में गङ्गा-घाटी की ताम्रनिधि संस्कृति में प्राप्त सदृश मानवाकृतियों के समरूप मानते हैं। अतएव वे इस बात की भी "प्रवल सम्भावना" मानते हैं कि द्वितीय सहस्राब्दि ई0 पूर्व में विद्यमान गंगा - घाटी की प्राचीनतम ज्ञात धातुयुगीन संस्कृति के निर्माण में उत्तराखण्ड के ताम्रयुगीन मानवों का भी योगदान रहा है।

गढ़वाल-कुमाऊँ हिमालय में प्राप्त उक्त उपकरणों के अभी विधिवत् अध्ययन की अपेक्षा है।

२. गुहा - चित्र

सन् १९६८ में अलमोड़ा जनपद की पट्टी तल्ला लखनपुर में सुआल नदी के दायें तट पर लखु-उड्यार में डॉ० म0 प्र0 जोशी[९] ने शैल-चित्र खोजे जो, वास्तव में, मध्य - हिमालय में प्रागैतिहासिक शैल-चित्रों की पहली खोज थी। डॉ० ध0 अग्रवाल[10] और डॉ० य0 मठपाल[११] ने इन शैल-चित्रों का विवरण प्रकाशित किया। इसमें अधोभाग के अधिकांश चित्र धुँधले हो चुके हैं। चित्रों में प्रयुक्त प्रधान तीन रंग हैं : श्याम, कत्थई लाल और श्वेत। श्याम चित्र सबसे निम्न स्तरण के माने गये हैं। चित्रण का मुख्य विषय समूहबद्ध नर्तन है, परन्तु रेखाओं एवं बिन्दुओं से बने ज्यामितीय चित्रण भी हुआ है (रेखाचित्र - १)। 'लखु - उड्यार' के गुहा - चित्रों के पश्चात्, अलमोड़ा जनपद में ही फड़कानौली, फलसीमा, ल्वेथाप, पेटशाल

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और कसारदेवी में भी शैल-चित्रों के मिलने की सूचना मिली है।

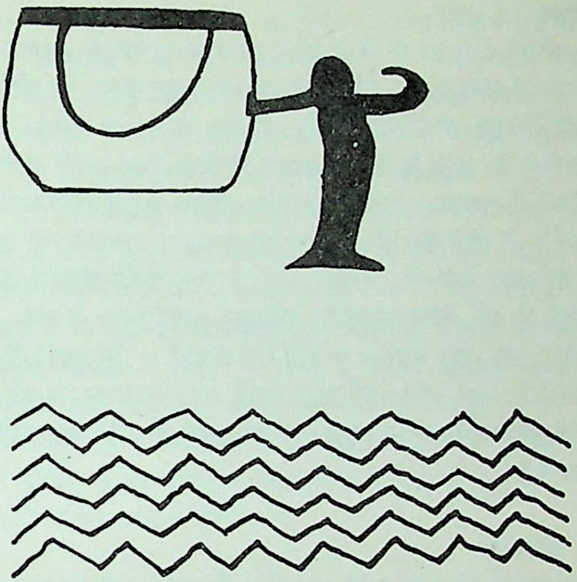

रेखाचित्र - १. लखु-उड्यार के शैल-चित्र।
ज० अलमोड़ा। प्रि-हिस्टॉरिक।

गढ़वाल हिमालय में दो शैलाश्रयों की खोज गढ़वाल विश्वविद्यालय के सर्वेक्षणों द्वारा हुई। प्रथम शैलाश्रय चमोली जनपद में अलकनन्दा के दाहिनी ओर डुंगरी - ग्राम के समीप मिला जिसे स्थानीय लोग ग्वरख्या - उड्यार[१२] कहते हैं। यहाँ प्रायः ६ x ४ मीटर विस्तार के शिलाभाग पर गहरे लाल रंग में अंकित १८ मानव एवं ७ पशु-आकृतियाँ प्रतीक रूप में चित्रित हैं। चित्रों का विषय सम्भवतः आखेट है। द्वितीय शैलाश्रय इसी जनपद में पिण्डर-घाटी के किमनी ग्राम में मिला बताया गया है। इसमें आकृतियाँ मन्द श्वेत रंग से चित्रित हैं। अनुमान तो ऐसा किया गया कि ये शैलाश्रय जिस प्रागैतिहासिक मानव के थे, वह अलकनन्दा-घाटी में आज से प्रायः सात-आठ सहस्राब्दि पूर्व निवास करता था, परन्तु अन्य पुराविद् इन्हें महापाषाणकालीन मानते हैं।

यद्यपि इन शैल-चित्रों का स्तरण के आधार पर अभी गहन अध्ययन कर निश्चित काल - निर्धारण करना शेष है, तथापि मध्य हिमालय में इनकी उपलब्धि प्रागैतिहासिक तथा

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आद्यैतिहासिक पुरातत्त्व के अध्ययन की दृष्टि से, वास्तव में, महत्वपूर्ण है।

३. शैल - चित्रांकन

रिवेट - कार्नक ने १८७७ ई0 में, सर्वप्रथम अलमोड़ा जनपद के द्वाराहाट स्थल के शैल - चित्रांकन पर प्रकाश डाला था।[१३] उसे द्वाराहाट में चन्द्रेश्वर मन्दिर के दक्षिण में महाश्म - संस्कृति से सम्बद्ध विभिन्न आकारों के दो सौ उथले गोल गड्ढे (कप-मार्क्स) बारह समान्तर पंक्तियों में खुदे मिले हैं। इन्हीं के समरूप बृहत्तर दीपाकार 'कप-मार्क्स' द्वाराहाट से प्रायः ३0 कि-मी पश्चिम में रामगंगा - घाटी में अवस्थित नौला ग्राम के वर्तमान मन्दिर के समीप डॉ0 य0 मठपाल[१४] ने खोजे हैं। डॉ0 मठपाल को अलमोड़ा जनपद में ही मुनिया-की-ढाई तथा जोयों ग्राम के समीप दीर्घाश्मों (मेनहिर) पर भी ऐसी ओखलियाँ मिली हैं। डॉ0 म. प्र. जोशी[१५] ने कुमाऊँ के ही खेखन, जसकोट, देवीधुरा, आदि स्थानों में, तथा इस लेखक ने गढ़वाल में गोपेश्वर तथा प0 नयार - घाटी में ऐसे ओखली - जैसे गड्ढों की खोज की है। 'उरखेली - धार' कहे जाने वाले अधिकांश स्थलों पर इस प्रकार के गड्ढे मिलने की सम्भावना रहती है। महापाषाणकालीन मानव ने इनका अंकन कब और किस उद्देश्य से किया, यह हमें अभी अज्ञात है।

४. महापाषाण - समाधियाँ

महापाषाणकालीन मानव ने अपनी संस्कृति के अवशेष यहाँ महापाषाण - समाधियों (Megaliths) के रूप में भी छोड़े हैं। इन्हें हम तत्कालीन मानव के पूजा-वास्तु का एक रूप मान सकते हैं। सर्वप्रथम १८५६ ई0 में हेनवुड ने कुमाऊँ की पहाड़ियों में देवीधुरा स्थान पर प्राप्त ऐसी महापाषाणी समाधियों का विवरण प्रकाशित किया था।[१६] तदन्तर, एम0 ह्वीलर[१७] तथा इतालवी पुरातत्त्वविदों ने भी इनका उल्लेख किया है।

५. महापाषाणकालिक शवाधान

१९५६ ई0 में गढ़वाल हिमालय में मलारी ग्राम के प्रागैतिहासिक शवाधानों (कब्रों) की खोज हुई। मारछा जनजाति का यह ग्राम समुद्रतल से प्रायः ११,000 फुट ऊँचाई पर जोशीमठ से ६२ कि-मी उत्तर-पूर्व में नीति-घाट के मार्ग में स्थित है। इन शवाधानों को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय डॉ0 शि0 प्र0 डबराल को है। किन्नौर में लिप्पा की समाधि के समान ही प0 धौली - घाटी में मलारी के शवाधान मण्डलाकार गर्तों के रूप में थे जिनके चतुर्दिक अनगढ़ शिलाएँ खड़ी थीं। शवाधानों में मानव, अश्व एवं भेढ़ों के कंकालों के साथ मुख्यतः मृत्तिका की तश्तरियाँ और विभिन्न आकार के टोंटी एवं हत्थे - युक्त मृत्तिका - कुतुप उपलब्ध हुए हैं। शवों को घुटने मोड़कर औंधा लिटाने की प्रथा थी।[१८]

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तदन्तर गढ़वाल विश्वविद्यालय के इतिहास - पुरातत्त्व विभाग ने मलारी में प्रारम्भिक उत्खनन किया। उत्खनन द्वारा शवाधानों में मानव अस्थि - अवशेषों के अतिरिक्त, एक अश्व - शवाधान के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। उसमें एक अश्व - कंकाल विभिन्न रूपों के मृद्भाण्डों कें साथ पाया गया है। शवाधानों से प्राप्त टोंटीयुक्त चित्रित कुतुप स्पष्टतः मध्य एशिया से मिले कुतुपों के समरूप बताये जाते हैं। शवाधानों में प्राप्त लौह - फलक आखेट के लिए प्रयुक्त होता रहा होगा। उत्खनन - विवरण के अनुसार, मलारी से प्राप्त ये लौह उपकरण उत्तराखण्ड में लौह उपकरणों के प्राचीनतम प्रमाण हैं जो ई0 पू0 एक सहस्राब्दि के हैं।[१९] मध्य एशिया अथवा पश्चिमी भोट से हिमालय में प्रविष्ट होनेवाली उन पर्वतीय प्रजातियों का अश्व प्रिय सहयोगी था। तभी तो वे उसे मृत्यूपरान्त ससम्मान समाधिस्थ करते होंगे। राहुल (गढ़वाल, पृ0 ५८-५९) ने हिमालय प्रदेश में प्राप्त इन शवाधानों को खशों की समाधियाँ बताया था। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ईसा-पूर्व द्वितीय से प्रथम सहस्राब्दि में अश्व का प्रयोग करनेवाली प्रजातियों के कबीले, पश्चिम में सुवास्तु - द्रोणी के समान, गढ़वाल हिमालय के उत्तरी सीमान्तक क्षेत्र में भी बिखरे रहे होंगे। हमारा विचार है कि प्राचीन भारतीय वाङ्मय में ये प्रजातियाँ किन-किन नामों से अभिहित हुई हैं, अभी निश्चिततः बताना कठिन है। ज्यामितीय सज्जायुक्त लाल मृत्तिका से बने मलारी - शवाधानों के ये पात्र (चित्र - ३) सम्प्रति भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण की आगरा शाखा में सुरक्षित हैं।

पश्चिमी रामगंगा - घाटी में स्थित नौला एवं जैनल गाँवों के सामने प्रायः दो किमी. क्षेत्र में बिखरे शवाधानों की 'सूचना' डॉ0 यशोधर मठपाल[२०] ने दी है। उनके अनुसार, "निःसन्देह पश्चिमी रामगंगा - घाटी के ये शवाधान महापाषाणकालिक हैं, लगभग तीन सहस्र वर्ष प्राचीन।"[२१]

पश्चिमी रामगंगा - घाटी में ही, गढ़वाल विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास - पुरातत्त्व विभाग द्वारा हाल में किये गये उत्खनन से महापाषाणीय सभ्यता के शवाधान मिले हैं। सानणा तथा बसेड़ी ग्राम, जहाँ उत्खनन किया गया, नौला - जैनल के समीप भिकियासैण से उत्तर की ओर दश किलोमीटर दूरी पर हैं। यहाँ दो प्रकार के शवाधान मिले हैं: पेटिका - सदृश प्रस्तर शवाधान तथा घट- शवाधान। आँग्ल भाषा की पुरातत्त्व - शब्दावली में इन्हें क्रमश : 'सिस्ट' तथा 'अर्न - बरियल' कहा जाता है। सानणा में 'सिस्ट' लगभग तीन से छः प्रस्तर - पट्टिकाओं से निर्मित था। 'सिस्ट चेम्बर' को पट्टिकाओं से ढका गया था। सानणा स्थल के 'सिस्ट' के ऊपर ऐसी सात पट्टिकाएँ प्राप्त हुईं। बसेड़ी से प्राप्त 'सिस्ट' शवाधान - कक्ष के कुट्टिम पर प्रस्तर - पट्टिकाएँ बिछायी गयी थीं और उनके ऊपर मृत्तिका - पात्र रखे गये थे। बसेड़ी में 'अर्न - बरियल ' का समूह प्रकाश में आया है। इसमें प्रयुक्त बड़े आकार के घट हस्त - निर्मित हैं जिनका बाह्य भाग लहरदार रेखाओं से अलंकृत है। बसेडी में दो 'अर्न' शवाधानों

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और दो 'सिस्ट' शवाधान - कक्षों के मध्य उत्तर-दक्षिण दिशा में निर्मित एक भित्ति भी प्राप्त हुई है। शवाधानों में विभिन्न प्रकार के मृद्भाण्ड तथा मृतकों के अस्थि-अवशेष मिले हैं। एक शवाधान - कक्ष से ११.३ सेन्टीमीटर लम्बी जंघा की अस्थि, तथा एक पात्र में रखा गया एक दन्त भी मिला। उत्खनन के निदेशक प्रो० नौटियाल के अनुसार, शवाधानों के ये मृद्भाण्ड वास्तविक रूप में गंगा-यमुना अन्तर्वेदी के प्रसिद्ध चित्रित धूसर मृद्भाण्ड (P.G.W.) - संस्कृति की परम्परा के अनुरूप हैं। अधिसंख्यक पात्र आकार - प्रकार में चित्रित धूसर मृद्भाण्डों से अद्भुत समता रखते हैं। इन शवाधानों की निश्चित तिथि प्राप्त अवशेषों के वैज्ञानिक परीक्षण के उपरान्त ही निश्चित की जा सकेगी, परन्तु अस्थायी रूप में वे इनकी तिथि प्रथम सहस्राब्दि ई० पूर्व अनुमान करते हैं।

मलारी, नौला - जैनल, सानणा - बसेड़ी तथा अन्यत्र से प्राप्त शवाधानों का वैज्ञानिक परीक्षण तथा गहन अध्ययन होना अभी शेष है। इनका वैज्ञानिक पद्धति से न उत्खनन हो सका है, न रेडियो कार्बन काल - निर्धारण । निश्चिततः ये सभी महापाषाणकालीन शवागार नहीं हैं। ये न तो एक संस्कृति के थे, न एक प्रजाति के।

४.
ऐतिहासिक पुरातत्त्व

(क) मौर्य - एवं शुंगकालीन पुरातत्त्व

सन् १८६० में जब देहरादून जनपद के कालसी नामक स्थान में अशोक के चतुर्दश शिला-प्रज्ञापनों की खोज हुई, तब से यह अनुमान होने लगा कि मौर्यकालीन संस्कृति से कम-से-कम गढ़वाल हिमालय अवश्य सम्बद्ध था। सन् १९७६ और १९७९ - ८१ में गढ़वाल विश्वविद्यालय द्वारा क्रमशः श्रीनगर के पार अलकनन्दा के दाहिने तट पर स्थित 'राणीहाट' और मध्य हिमालय के समतल पाद - प्रदेश में अवस्थित 'मोरध्वज दुर्ग' में आरम्भिक उत्खनन किये गये। यद्यपि राणीहाट - उत्खनन ३.२५ मीटर मोटे भूमि के स्तर पर एवं एक "सीमित क्षेत्र" में किया गया, तथापि राणीहाट के 'प्रथम काल' के स्तर को सादे (अचित्रित) धूसर - मृद्भाण्ड (Grey - Ware) की उपलब्धि के आधार पर लगभग ६०० से ४०० ई० पूर्व, तथा 'द्वितीय काल' के पूर्वार्द्ध (Period II A) को मौर्य एवं शुंगकालीन निर्धारित किया गया है। लौह - आयुधों के स्थानीय निर्माण के प्रमाणों के साथ-साथ, यहाँ मौर्यकालीन इष्टकाएँ ३०x२३x७.५ सेमी से लेकर २२.८x२१.५x५.९ सेमी. माप की पायी गयी हैं जिनका प्रयोग भवन-निर्माण में किया गया था। उत्खनन के निदेशक डॉ० नौटियाल के अनुसार, "राणीहाट की समस्त इष्टकाओं का प्रमाण हस्तिनापुर की तृतीय कालीन इष्टकाओं के समान होने से इन्हें मौर्य - शुंगकालीन माना जा सकता है।"[२२]

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गढ़वाल-कुमाऊँ में हुए परवर्ती सर्वेक्षणों से ऐसा विदित होता है कि राणीहाट के समरूप सन्निवेश यहाँ अन्य स्थलों में भी थे।

इसी प्रकार, **मोरध्वज** के 'प्रथम काल' के स्तरों से उत्तर भारतीय कृष्ण मृद्भाण्ड (NBP) तथा बृहत् प्रमाण की पक्वेष्टकाएँ प्राप्त हुई हैं। गृह - निर्माणार्थ प्रयुक्त इन इष्टकाओं का प्रमाण ४२x२०x८ एवं ४६x२०x८ सेमी. है। उत्खनन में एक किलोमीटर क्षेत्र में फैली नगर - प्राचीर मिली जिसे मौर्यकाल से पूर्व मिट्टी से बनाया गया था। कालान्तर में इसे इष्टकाओं से आच्छादित कर पक्का कर दिया गया। इन उपलब्धियों के आधार पर मोरध्वज का 'प्रथम काल' प्रायः पंचम शती ई० पू० से द्वितीय शती ई० पू० माना गया है। शुंगकालीन स्तरों (Pd IIA) से भित्तियों तथा भूतल के लिए प्रयुक्त २४x२२x७ तथा २२x१५x६ से-मी माप की पक्वेष्टकाएँ, मृण्मूर्तियाँ, मनके, ताम्र-चूड़ियाँ, आदि वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं।[२३] गढ़वाल विश्वविद्यालय द्वारा किये गये इस उत्खनन से पूर्व फरबरी १८८७ ई० में ए० एम० मरखाम ने मोरध्वज-दुर्ग का उत्खनन किया था। मोरध्वज-दुर्ग के ही अन्तर्गत उसके पूर्वी भाग में एक बड़ा टीला था जिसे 'शीगरी' कहा जाता था और जो ऊँचाई में ३५ फुट तथा परिधि में ३०८ फुट था। वस्तुतः यह एक बौद्ध स्तूप था जिसकी बहुत - सी सामग्री (जिसमें बौद्ध मृण्-मुद्राएँ एवं मृण्फलक सम्मिलित थे) मरखाम ने राज्य संग्रहालय लखनऊ को दी थी (दे०, परिशिष्ट)। ये मृण्मुद्राएँ (चित्र - ४) एवं मृण्फलक पाँचवीं से आठवीं शती ई० के माने जाते हैं। मरखाम ने स्तूप के चतुर्दिक प्रदक्षिणा - पथ की खोज की थी। मोरध्वज - दुर्ग के चारों ओर कई वर्ग कोश में फैले बृहत् इष्टकाओं से निर्मित प्राचीन ध्वंसावशेषों से ज्ञात हुआ है कि इस स्थल पर एक विशाल एवं समृद्ध नगरी थी।[२४] (रेखाचित्र - २)

१. बाह्य प्राचीर के अंश.
२. मुख्य प्राचीर.
३. परिखा ६० फुट चौड़ी.
४. द्वार.
५. दुर्ग (८०० ' x ६२५ ').
६. मूलतः बौद्ध स्तूप का ध्वंस, प्रदशिणापथयुक्त (प्लान से ऊपर ४३ फुट ऊँचा).
७. चतुर्दिक मोरध्वज नगर.

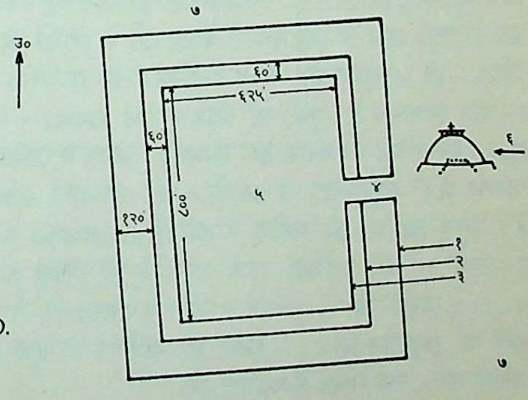

रेखाचित्र - २. मोरध्वज-दुर्ग तथा स्तूप

(कनिं० आ० रि०- १८६३-६४, खण्ड २, १८७१, पृ० २३७-३८ तथा फ्यूरर-कृत मान्यू० एण्टी. एण्ड इन्स०, १८९१, पृ० ३२-३३ पर आधृत)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नैनीताल - तराई में काशीपुर (प्राचीन गोविषाण) के उत्खनन से भी ए0 कनिंघम को शुंगकालीन अवशेष प्राप्त हुए हैं।[२५] तदन्तर, चित्रित धूसर मृद्भाण्ड - खण्डों के सहित कुछ अन्य पुरावशेष भी यज्ञदत्त शर्मा को १९६५ - ६६ ई0 के उत्खनन में यहाँ से मिले हैं।[२६] नैनीताल-तराई में ही सेनापानी स्थान में लाल बालुकाश्म - निर्मित एक शुंगकालीन बौद्ध - स्तूप की प्राप्ति महत्वपूर्ण है(चित्र-५)। शुंगकाल की ही एक मृण्मुद्रा देहरादून जनपद से प्राप्त हुई थी जिस पर "भद्रमित्रस्य - द्रोणी - घाटे" अंकित था, परन्तु अब यह मृण्मुद्रा अप्राप्य है। इसकी सूचना का एकमात्र स्रोत जयचन्द्र विद्यालंकार की कृति *'प्राचीन पंजाब और उसका पास-पड़ोस'* (१९६२, पृ0 ६) ही है। इसी काल के आसपास हरिद्वार से दस मील पूर्व में पाण्डुवाला नामक स्थल पर एक समृद्ध नगरी थी जहाँ से बहुशः पुरावशेष प्राप्त हुए हैं। पुराने विवरण बताते हैं कि लूनी - स्रोत, पाण्डुवाला, आदि स्थलों के बहुसंख्यक सुन्दर शिल्प ग्वालियर तथा जयपुर ले जाये गये ।[२७]

(ख) कुणिन्द, कुषाण एवं प्राक् - गुप्तकालीन पुरातत्त्व

१. यमुना-अपत्यका

मध्य - हिमालय में, मुख्यतः गढ़वाल की यमुना-उपत्यका में, कुणिन्द, कुषाण एवं प्राक् गुप्तयुगीन इतने महत्वपूर्ण पुरावशेष उपलब्ध हुए हैं जिनसे हिमालयीय इतिहास को ही नहीं, भारतीय इतिहास को भी नूतन आयाम मिले हैं। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम देहरादून जनपद में प्राप्त दो स्थलों के अभिलेख उल्लेखनीय हैं :- शीलवर्म्मन् के बाड़वाला इष्टका - लेख तथा शिवभवानी का अम्बाड़ी - शिलालेख। शीलवर्म्मन् एवं शिवभवानी ने, जो सम्भवतः कुणिन्द राजा थे, तृतीय शती ईसवी के आसपास कालसी के निकट ही यमुना-तट पर अश्वमेध - यज्ञ सम्पन्न किये थे। सन् १९५३ - ५४ में बाड़वाला की अश्वमेध - चितियाँ खोजी गयीं जो संस्कृत भाषा एवं अनुष्टुप् छन्द में अभिलिखित इष्टकाओं से निर्मित की गयी थीं।[२८] इन चितियों (यज्ञ - वेदियों) का वास्तुशास्त्रीय महत्व इसलिए है कि प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल के स्थापत्य के ये एकमात्र उदाहरण हैं। पुनः, यह प्रथम पुरातन अश्वमेध - स्थल है, जिसका ज्ञान पुराविदों को हुआ। इन वेदियों की रचना ही "सम्भवत : भारत में धार्मिक वास्तु अथवा प्रासाद - निर्माण का प्रारम्भ था।" यमुना-तट पर अश्वमेध-यज्ञों का वर्णन शतपथब्राह्मण एवं महाभारत में मिलता है। यमुना-तट पर ही सहदेव ने अग्नियों की स्थापना की थी ("अग्नयः सहदेवेन ये चिता यमुनामनु"), यहीं चक्रवर्ती राजा भरत ने भी पैंतीस अश्वमेध-यज्ञ किये थे (आरण्यक0, ८८.६-७ पारडी सं0)। कुणिन्द - काल में शीलवर्म्मन्. ने भी यमुना-तट पर चार अश्वमेध - यज्ञों का अनुष्ठान किया। " इससे ज्ञात होता है कि शुंगों द्वारा पुनर्जीवित यह वैदिक परम्परा शतियों तक उत्तर भारत में प्रचलित रही।"[२९]

उक्त अश्वमेध-स्थलों की प्राप्ति के पश्चात्, यमुना-उपत्यका के ही पर्वतीय अञ्चल में,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देवढुंगा स्थल पर एक अन्य यज्ञ - वेदिका की प्राप्ति निःसंदेह महत्वपूर्ण उपलब्धि है। गढ़वाल मण्डल के उत्तरकाशी जनपद में कमल नदी के वाम तट पर पुरोला के समीप ही देवढुंगा ग्राम में १९८२-८३ ई० में पर्वतीय पुरातत्त्व - इकाई ने एक "इष्टका - वास्तु " की खोज की थी, और उसके स्तूप होने की सम्भावना व्यक्त की थी। उसमें प्रयुक्त इष्टकाओं के आधार पर इसे मौर्यकालीन बताया गया था।[30] तदन्तर, इस यज्ञ-स्थल का उत्खनन गढ़वाल विश्वविद्यालय द्वारा १९८७ ई० में आरम्भ किया गया। आरम्भिक उत्खनन द्वारा उसे भी यह बौद्ध - स्तूप प्रतीत हुआ, परन्तु १९८८ ई० में जब पुनः इसी विश्वविद्यालय द्वारा देवढुंगा यज्ञ - स्थल का उत्खनन किया गया, तब पूर्व - धारणाएँ असत्य सिद्ध हुईं। उत्खनन - निदेशक प्रो० कां० प्र० नौटियाल ने दिसम्बर १९८८ में एक संगोष्ठी में बताया कि, वास्तव में, यह उड़ते गरुड़ के आकार की एक विशाल प्रागमुख 'यज्ञ - वेदिका' है। लगभग २४x१८ मीटर लम्बाई - चौड़ाई में निर्मित इस वेदिका के उत्तरी तथा पश्चिमी भाग (पक्ष एवं पृष्ठभाग) पूर्वकाल में कभी कमल नदी के प्रवाह से विनष्ट हो चुके हैं। वेदिका - निर्माण में विभिन्न आकार की पक्वेष्टकाओं का प्रयोग ...

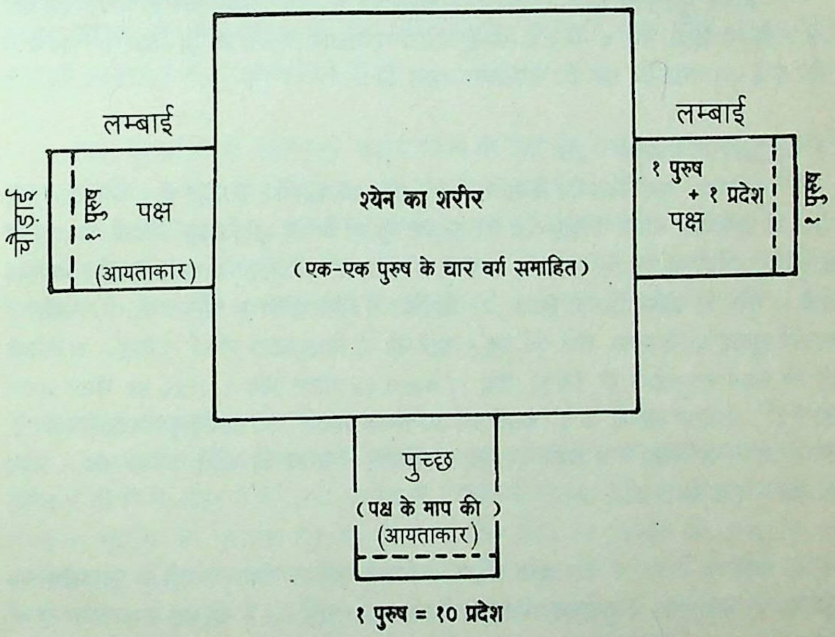

रेखाचित्र-३. शुल्व-सूत्रों के अनुसार श्येनचिति.

देवढुंगा-यज्ञवेदी (ज. उत्तरकाशी) का आकार तदनुरूप है.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किया गया है जिनकी माप ८०x५०x११, ५५x४०x११ तथा ५०x५०x११ से-मी है। इष्टकाओं के ग्यारह स्तरों (Courses) में वेदिका निर्मित हुई है तथा उसकी ऊँचाई २.६० मीटर है। उत्खनन की महत्वपूर्ण उपलब्धि वेदिका के मध्य में पक्वेष्टका - निर्मित ६०x६० से-मी वर्गाकार तथा २.६० मीटर गहरे कक्ष से उपलब्ध पुरावशेष हैं जिनमें : (१) वेदिका - वृक्ष, मृग, त्रिरत्न, स्वस्तिक, आदि से अंकित पाँच कुणिन्द ताम्र-मुद्राएँ, (२) अधोवस्त्र एवं कमण्डलुधारी स्थानक मानवाकृति के अंकनयुक्त एक स्वर्णपत्र, (३) स्वर्णाभूषण, तथा (४) विभिन्न आकार के धूसर मृद्भाण्ड हैं। स्वर्णपत्र एवं स्वर्णाभूषण एक धातु - मंजूषा में मिले हैं। प्राप्त छः मृद्भाण्डों में ताम्र-मुद्राओं के अतिरिक्त, अस्थियाँ, कोयला तथा भस्म के अवशेष प्राप्त हुए। वेदिका के पार्श्व में एक लौह कुठार भी मिला। पर्याप्त सुरक्षित दशा में प्राप्त इस यज्ञ-वेदिका का काल द्वितीय शती ई० पू० से लेकर द्वितीय शती ई० के मध्य निर्धारित किया गया है। अनुमान है कि प्रथम अथवा द्वितीय शती ईसवी में किसी कुणिन्द नरेश ने इस स्थल पर अश्वमेध - यज्ञ किया था।[३१] (रेखाचित्र - ३)

पर्वतीय पुरातत्त्व इकाई ने देवढुंगा - यज्ञस्थल से आगे ढिकाल ग्राम के निकट २३ तथा २५.५ से-मी चौड़ी तथा ८ से ६.५ से-मी. मोटी इष्टकाएँ मिलने का भी विवरण[३२] दिया है और इन्हें कुषाणकालीन होने की सम्भावना व्यक्त की।

२. गङ्गाद्वार वा मायापुर - क्षेत्र

कुणिन्द - कुषाणकालीन भारत में यक्ष - पूजा व्यापकरूपेण प्रचलित थी। फलस्वरूप इस काल के आसपास भारत में यक्ष-यक्षी की उत्कृष्ट मूर्तियाँ निर्मित हुईं जिनसे विदेशी भी आकृष्ट होते थे। पाम्पेई नगर (७६ ई०) के उत्खनन में गजदन्त - निर्मित एक कुषाणकालीन भारतीय यक्षी - मूर्ति की प्राप्ति इसका प्रमाण है। ऋषिकेश में भरतमन्दिर - परिसर में भी, निर्माण - कार्यार्थ खुदाई करते समय, वर्षों पूर्व यक्ष - यक्षी की दो विशालकाय मूर्तियाँ (चित्र - ६) मिली थीं जो लाल बालुकाश्म से निर्मित, तथा १.६७x0.५x मीटर और १.२३x0.४१ मीटर प्रमाण की हैं।[३३] शैलीगत लक्षणों से ये "ईसवी की आरम्भिक शतियों" की अर्थात् कुषाणकालीन हैं।[३४] इनकी प्राप्ति से सिद्ध होता है कि समस्त उत्तराखण्ड हिमालय की भाँति, उसका पाद - प्रदेश भी यक्ष - पूजा से प्रभावित था।

ऋषिकेश के समीप वीरभद्र के दक्षिण - पश्चिम में स्थित श्यामपुर-गढ़ी के पुरावशेष भा० पु० स० के ए० घोष ने कुषाणकालीन माने हैं। १६७३ - ७४ ई० में वीरभद्र के उत्खनन से भी 'प्रथमकाल' के स्तरों से कुषाणकालीन मृद्भाण्ड, इष्टकाएँ, मुद्राएँ, दग्ध पशु - अस्थियाँ प्राप्त हुई हैं। वीरभद्र के प्राचीन शिवमन्दिर की इष्टकाएँ कुषाणोत्तरकालीन हैं जिनका आकार २३x१५x६, २२x१२x६, २७x१२x६ से-मी है।[३५] सितम्बर १६७२ में श्रमिकों को खुदाई के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समय गंगा तटीय शिवानन्द आश्रम मुनि-की-रेती में एक निखात - निधि मिली जिसमें हुविष्क की ४४ तथा (द्वि?) वासुदेव की १ स्वर्णमुद्रा के साथ अन्य पुरावशेष प्राप्त हुए हैं।[३६]

३. मोरध्वज (सं०, मयूरध्वज)

गङ्गाद्वार से पूर्व में, मयूरध्वज प्राचीनकाल में माल प्रदेशीय संस्कृति का प्रधान केन्द्र था। युवान् - च्वाङ् ने इसी नगर को **मो - यू - लो** (=मयूर) कहा है। हम लिख चुके हैं कि मरखाम के पश्चात्, गढ़वाल विश्वविद्यालय ने भी सन् १९७९ - ८१ में यहाँ उत्खनन किया। उत्खनन में 'द्वितीय काल - ब' (Pd II B) के स्तर को कुषाणकालीन (ई० १०० से ई० ३००) माना गया है। यहाँ प्राप्त इस काल के पुरावशेषों में विशाल स्तूप, प्रदक्षिणापथ- युक्त एक मन्दिर, लाल रंग के मृद्भाण्ड (red ware), २४x१२x६ तथा २५x१५x६ से-मी माप की इष्टकाएँ, पक्वेष्टकाओं से निर्मित राजधानी की विस्तृत रक्षा - प्राचीर, उत्तर - कुषाणकालीन एक स्वर्ण - मुद्रा तथा ताम्र एवं लौह उपकरण मुख्य हैं।[३७] डॉ० नौटियाल के अनुसार, कुषाणकालीन स्तूप वर्गाकार भित्ति से आवृत था और भित्ति के ऊपर अलंकृत इष्टकाओं से निर्मित वेदिका बनी थी। वेदिका की इष्टकाएँ कीर्तिमुख, पक्षधारी अश्व, पद्म, वटवृक्ष और लहराती लतिकाओं से अलङ्कृत मिली हैं।[३८]

उक्त पुरावशेषों के अतिरिक्त, इस उत्खनन से बुद्ध की लगभग तीस लघु मृण्मूर्तियाँ, बालुकाश्म की ध्यानमुद्रा में बोधिसत्त्व-मूर्ति तथा केशिसूदनकृष्ण (चित्र - ७.) एवं शिशु - सहित माता के दृश्ययुक्त मृण्पट्टिकाएँ भी मिली हैं। इन्हें भी कुषाणकालीन माना गया है। परन्तु इनमें से कुछ के गुप्तकालीन होने की अधिक सम्भावना है। मरखाम को इन्हीं के समरूप जो मृण्मुद्राएँ एवं औपहारिक मृण्फलक मिले थे उन्हें पाँचवीं से आठवीं शती ई० का निश्चित किया गया है।

४. अलमोड़ा और श्रीनगर

'अलमोड़ा-वर्ग' की मुद्राओं को, जिनमें से चार अब ब्रिटिश संग्रहालय लंदन तथा एक ब्रिटेन में ही निजी संग्रह में हैं, उनके अध्येताओं ने कुणिन्द राजवंश की माना है। वृत्ताकार इन रजत - मुद्राओं के पुरोभाग पर एक वृत्त के नीचे गोमूत्रिका आकार की पुच्छ-सी तथा स-वेदी-वृक्ष के आगे नन्दी अथवा मृग अंकित है। मुद्राओं के पार्श्व भाग में अंकित **म-ग-भ-त-स** (मृगभूति ?), **शिवदत्तस, हरदत्तस, शिवपालित** तथा **शिवरक्षित** पाँच पर्वतीय कुणिन्द-नरेशों के नाम ज्ञात हुए हैं।[३९] अलन ने इन मुद्राओं को लग० द्वितीय शती ई० पू० का, तथा दि. चं. सरकार ने ईसवी प्रथम शती का माना है।[४०] दिसम्बर १९७५ में, इसी वर्ग की १३ मुद्राएँ अलमोड़ा जनपद में ही कत्यूर - घाटी में भी मिलीं जो आज अलमोड़ा - संग्रहालय में प्रदर्शित हैं, और जिनमें **गोमित्र** तथा **आसेक** नाम मिलते हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

श्रीनगर (गढ़वाल) के निकट भी एक सहस्र कुणिन्द - मुद्राओं की एक निखात - निधि मिली थी जिसका विवरण स० चं० काला तथा प्रयाग दयाल ने प्रकाशित किया था। इन मुद्राओं में अंकित लक्षण कुछ भिन्न प्रकार के हैं। इनके पुरो - एवं पृष्ठ - भाग पर क्रमशः ब्राह्मी एवं खरोष्ठी मुद्रालेख मिलते हैं। इनमें अंकित विजयभूति नरेश अलमोड़ा - वर्ग के उक्त सात नरेशों का ही पूर्वगामी प्रतीत होता है।

५. देवप्रयाग और त्रियुगीनारायण

देवप्रयाग के ब्राह्मी - लेख, डॉ० ब० चं० छाबड़ा के अनुसार, द्वितीय से पंचम शती ई० के हैं। स्वतः इनमें से कुछ अभिलेख प्राक् - गुप्तकालीन हैं। 'यात्री नाम - लेख' श्रेणी के इन लेखों से ज्ञात होता है कि केदार - बदरी तीर्थों को जानेवाले यात्रियों ने देवप्रयाग में अपने नाम (यथा, स्कन्ददत्तः, रुद्रवृद्धिः, श्रीगुहवर्म्म, यज्ञ, आदि) अंकित कर दिये थे।

१९८० ई० में राज्य पुरातत्त्व संगठन की पर्वतीय इकाई ने केदारनाथ के निकट अवस्थित त्रियुगीनारायण मन्दिर में एक विष्णु पाषाण - प्रतिमा की खोज की जिसके दक्षिण आयुध के पार्श्व में दो पंक्तियों का एक लघु लेख उत्कीर्ण है। १९८१ में इस लेखक ने उसका वाचनकर प्रकाशित किया था।[४१] तृतीय शती ईसवी के उत्तरार्द्ध की लिपि में 'देवधर्म्मः' तथा '**अर्क्कवर्म्मणः**' अंकित इस मूर्ति को त्रियुगीनारायण के विष्णु-मन्दिर में समर्पित किया गया था (रेखाचित्र - ४)।

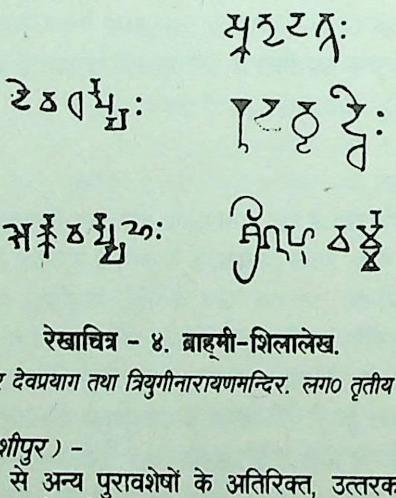

रेखाचित्र - ४. ब्राह्मी-शिलालेख.

रघुनाथमन्दिर देवप्रयाग तथा त्रियुगीनारायणमन्दिर. लग० तृतीय शती ईसवी.

६. ***गोविषाण (वर्तमान काशीपुर) -***

गोविषाण के टीले से अन्य पुरावशेषों के अतिरिक्त, उत्तरकालीन कुषाण - शासकों (द्वि० वासुदेव?) की तीन स्वर्णमुद्राएँ प्राप्त हुई थीं। वृत्ताकार इन मुद्राओं के पुरोभाग में नुकीली टोपी पहने दाहिनी ओर होकर खड़े राजा की आकृति और पार्श्वों पर यूनानी लिपि में अस्पस्ट

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मुद्रालेख हैं। पृष्ठभाग में देवी आरदोक्षो सिंहासनस्थ है और पार्श्व - भाग पर ब्राह्मी में एक मुद्रा पर 'अधुजा' वा 'सधुजा' अंकित पढ़ा गया है। १६६० ई0 में डॉ0 कां0 प्र0 नौटियाल को यहाँ से उत्तरी कृष्ण ओपदार मृद्‌भाण्ड - खण्डों के अतिरिक्त, कुषाणकालीन एक स्वर्णमुद्रा भी प्राप्त हुई थी।[४९]

७. *विभाण्डेश्वर मन्दिर (जनपद अलमोड़ा)* -

द्वाराहाट से छः किमी. दूर दक्षिण में, विभाण्डेश्वर मन्दिर के समीप से प्राप्त लाल रंग के मृद्‌भाण्डों का परीक्षण करने के पश्चात्, प्रो0 धर्मपाल अग्रवाल ने उन्हें इस क्षेत्र से प्राप्त कुषाणकालीन पुरातात्त्विक सामग्री का प्रथम प्रमाण मानने की सम्भावना व्यक्त की है।

८. *देहरादून और कालों- डाँडा* -

देहरादून जनपद के जौनसार-बावर क्षेत्र में लगभग ६४ मुद्राओं की एक निखात - निधि १६३६ ई0 में प्राप्त हुई थी। प्रयाग दयाल ने इन्हें द्वितीय शती ई0 की यौधेय मुद्राएँ माना है। इन वृत्ताकार ताम्र - मुद्राओं का भार १६५ ग्राम से ८२ ग्राम है। इनके पुरोभाग में प्रायः शूलधारी षण्मुख कार्त्तिकेय प्रदर्शित है। कालों-डाँडा (लैन्सडाउन) में भी यौधेयों की लगभग १२६ ताम्रमुद्राओं की दूसरी निखात - निधि प्राप्त हुई जिन्हें स0 चं0 काला ने द्वितीय शती ई0 के अन्त और तृतीय शती ई0 के पूर्वार्द्ध के मध्य का माना है। वृत्ताकार इन ताम्रमुद्राओं के पुरोभाग में भी स्थानक षण्मुख कार्त्तिकेय तथा पृष्ठभाग में ब्राह्मी - मुद्रालेख प्राप्त होता है। अनेक मुद्राओं पर 'रावणस्य' और 'भानुव' मुद्रालेख अंकित हैं।

९. *खाण्ड तथा अठूर (टिहरी गढ़वाल)* -

पुराने टिहरी नगर के सम्मुख ही भागीरथी नदी की दायीं ओर खाण्ड ग्राम नदी की प्राचीन वेदिका पर बसा है। इस ग्राम के बन्दरखेत - क्षेत्र में कुषाणकालीन मृद्‌भाण्डों के खण्ड पाये गये हैं। कभी श्रमिकों को खुदाई के समय इसी काल की एक धातु-मूर्ति भी यहाँ मिली थी। खाण्ड ग्राम से ही सम्बद्ध अठूर ग्राम में अक्टूबर १६८८ में एक ताम्र-पात्र में छत्तीस कुणिन्द रजत-मुद्राएँ तथा दो स्वर्ण छड़ें प्राप्त हुई हैं। पुरोभाग पर एक नारी तथा मृग-युक्त ये मुद्राएँ 'महाराजा अमोघभूति' की हैं (रेखाचित्र - ५)।

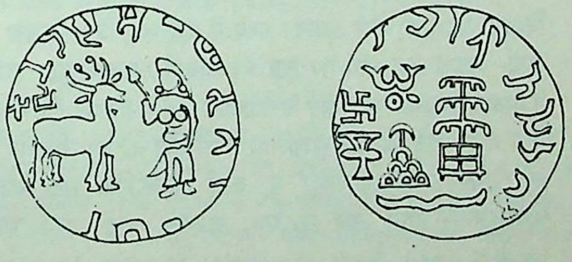

रेखाचित्र - ५. कुणिन्द अमोघभूति की रजतमुद्रा.

अठूड़ निखात-निधि, ज0 टिहरी-गढ़वाल.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट

मोरध्वज - उत्खनन (१८८७ ई0) से प्राप्त पुरा - सामग्री.

(राज्य संग्रहालय लखनऊ, पंजी B (Part III), पृष्ठ २४ - टंकित)

बी ७३७-५६. तेईस अण्डाकार औपहारिक **मृण्फलक** (Votive tablets) - आकार ३" तथा २" के मध्य। इनमें पद्मासीन योगासनमुद्रा में बुद्ध, पार्श्व में अवलोकितेश्वर तथा वज्रपाणि सहित। प्रभामण्डल के ऊपर छत्र (N.W. Province and Oudh Provincial Museum Minute, Vol.I, p. 311, APP. A)।

बी ७६०- ६७. आठ **मृणमुद्राएँ** (Clay Seals)- लग0 ३" व्यास, स्तम्भयुक्त चैत्य जिसके ऊपर एक चैत्यगवाक्ष तथा दोनों ओर अनेक लघु औपहारिक स्तूप। चैत्य में भूस्पर्शमुद्रा में आसीन बुद्धः परिचरों - सहित दो सहायक खड़े, नीचे ८वीं शती ई0 की लिपि में बौद्धसूत्र की दो पंक्तियाँ। सीकरी - मोरध्वज से प्राप्त, तथा ए0 एम0 मारखम द्वारा संग्रहालय को प्रदत्त (पूर्वोक्त, पृष्ठ ३ तथा ३३६; Proc. A.D.B. 1887, p. 123. plate I)।

बी ७६८. पूर्व मृण्फलक संख्या ७३७-५६ के समान एक टेरॅकॉटा-**फलक** के तीन अंश... ।

बी ७६९. अण्डाकार **मृणमुद्रा**, लग0 ४" x ३ १/२" - वृत्त स्तम्भों पर आधृत चैत्यगवाक्ष तथा शीर्ष पर एक छत्रयुक्त चैत्य । इसमें एक अनुचर तथा संख्या १-८ के समान पार्श्ववर्ती आकृतियों सहित आसन बुद्ध। अधोभाग में पंचम शती ई0 की लिपि में बौद्धसूत्र।

बी ७७०. **टेरकॉटा मुद्रा** (व्यास ४ १/२") - पाँच अंशों में खण्डित। मनका - माला की किनारी का एक गोल अंकन। मध्य में एक लघु चैत्य जिसके अग्रभाग में एक चैत्य- गवाक्ष तथा शीर्ष पर छत्र हैं। चैत्य में ध्यानस्थ बुद्ध, उनके दक्षिण पार्श्व में अवलोकितेश्वर तथा वाम में वज्रपाणि खड़े हैं। ऊपर एक विद्याधर। चैत्य के नीचे पंचम शती ई0 की गुप्तलिपि में दो पंक्तियों का बौद्धसूत्र । सूत्र के नीचे एक उपासक नमस्कारमुद्रा में, कोई औपहारिक भेंट आगे समर्पित है। मोरध्वज से प्राप्त, तथा ए0 एम0 मारखम, आई0 सी0 एस0 द्वारा प्रदत्त (N.W.P. and Oudh Provincial Museum Minute, Vol. I, p. **336, App.A**; Proc. A.S.R. 1887, p. 123-124 Pl. I)।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सन्दर्भ

१. **चेम्बर्स एन्साइक्लोपीडिया**, खण्ड १, लन्दन, १८८६, पृ० ३६७।

२. **सासनबंस**, पालि टेक्स्ट्स सोसाइटी द्वारा प्रकाशित, पृ० ६८; **बोधिसत्वावदानकल्पलता**, पंचम पल्लव, पृ० २५ तथा ३१।

३. **ऐन्शन्ट इण्डिया**, ९, नई दिल्ली. १९५३, पृ० ७१ तथा फलक XIV, XXXI; राहुल, **अतीत से वर्तमान**, पृ० १८७।

४. **इं० आर्कि०: ए रिव्यू** (१९६९-७०), पृ० ४०।

५. नौटियाल, कां.प्र., "गढ़वालः महाभारत काल का रंगमंच," "**धर्मयुग** (साप्ताहिक), २१ मार्च, १९८२, पृ. ३५; **J.O.H.S.A.R.D.**, खण्ड ४, १९८०, पृ० ६१-६७।

६. नौटियाल तथा साथी, "थापलीः ए पेंटेड ग्रे वेयर साइट इन गढ़वाल," **पुरातत्त्व**, सं० १०, १९७८-७९, पृ० ९४-९५; **धर्मयुग**, पूर्वोक्त; इं० आर्कि०: रि० (१९८२.८३), पृ० १०३।

७. **पहाड़ - २**, नैनीताल, १९८६ ई० पृ० २२।

८. **पहाड़ - ५/६**, नैनीताल, १९९२ ई०, ४-६।

९. **ऑल इण्डिया ओरियन्टल कानफ्रैन्सः समरीज आव् द पेपर्स**, कुरुक्षेत्र, १९७४, पृ० २१९ - २०।

१०. अग्रवाल, ध० तथा जोशी, म०, "राक पेंटिंग्ज इन कुमाऊँ", **मैन एण्ड इनवाइरनमेंट**, खण्ड २, अहमदाबाद, १९७८, पृ० ७६; अग्रवाल, ध०, **द आर्कि० आव् इण्डिया**, १९८२, पृ० ८१।

११. मठपाल, य०, **नवभारत टाइम्स** (हिन्दी दैनिक), दिल्ली, २६ जनवरी, १९९०, पृ० ३।

१२. **पहाड़-१**, नैनीताल, १९८३ ई०, पृ० २१७-१८, तथा चित्र १।

१३. Rivett - Carnac, H., "रफ नोट्स आन सम ऐन्शियन्ट स्कल्पचरिंगज आन रॉक्स इन कुमाऊँ सिमिलर टु दोज फाउण्ड इन मोनोलिथ्स एण्ड रॉक्स इन यूरॅप", ज० ए० सो० **बं०**, ६६ (२), १८७७, पृ० १-१५।

१४. मठपाल, **पहाड़ - ५/६**, नैनीताल, पृ० १८१-९०।

१५. जोशी, **पुरातत्त्व**, संख्या १६, नयी दिल्ली, १९८५ - ८६, पृ० २५ - २८; **इं० आ० रि०**, १९७९-८०, पृ० ७४।

१६. Henwood, W.J., "नोटिस ऑव् द रॉक - बेसन्स ऐट देवीधुरा नियर अलमोड़ा इन अपर इण्डिया", एड० **न्यू फिलो०** ज० (न्यू सिरीज), खण्ड ४, १८५६, पृ० २०४-२०६।

१७. ह्वीलर, **अर्लि इण्डिया एण्ड पाकिस्तान**, १९५९, पृ० २८।

१८. डबराल, **उत्तराखण्ड का इतिहास**, खण्ड १, संवत् २०२२, पृ० ६९-७९।

१९. **इं० आर्कि०: रि०** (१९८२-८३), पृ० ९५।

२०. मठपाल, **पहाड़ - २**, १९८६ ई०, पृ० २० तथा आगे।

२१. मठपाल, **उत्तराखण्ड**, १ (उ० शो० सं० की वार्षिक पत्रिका), १९८७, पृ० ८।

२२. नौटियाल तथा खण्डूड़ी, **द हिमालया**, खण्ड १, गढ़० विश्वविद्यालय श्रीनगर, १९७७ ई०, पृ० २८।

२३. नौटियाल तथा खण्डूडी, "एक्सकेवेशन ऐट मोरध्वज", **J.O.H.S.A.R.D.**, खण्ड ३, गढ़० विश्वविद्यालय श्रीनगर, १९७९, पृ० ७७-७८; **पुरातत्त्व**, संख्या १०, १९७८-७९, पृ० ८६-८७।

२४. मोरध्वज के पुरातत्त्व - विवरण हेतु द्रष्टव्य - कनि० आर्कि० सर्वे रि०, **खण्ड २** १८७१, पृ० २३७ - २३८; ज० ए० सो० बं०, १८९१, पृ० २; **N.W.P. and Oudha Provincial Museum Minutes**, खण्ड १, पृ० ३११, ३३६, परिशिष्ट A, तथा **प्रोसी० आ० स० रि०**, १८८७, पृ० १२३-१२४, प्लेट I.

२५. कनिंघम, **ए०जि०इं०**, पुनर्मुद्रित १९७५, पृ० ३०१-३०२।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२६. इं० आर्कि०: रि० (१९६५-६६), पृ० ५३-५४।
२७. Pullan, A., ज०ए०सो०बं०, खण्ड ३६ (१), १८६७, पृ० १५६; एट्किन्सन, ई०टी०, हिमा०डिस्ट्रि०, खण्ड २, पृ० ४४३।
२८. रामचन्द्रन, टी०एन०, "अश्वमेध साइट नियर कालसी", ज० ओरि० रि०, खण्ड २१, १९५३, पृ० १ तथा आगे ; शर्मा, यज्ञदत्त, ऐन्शियन्ट इण्डिया, संख्या ९, १९५३, पृ० १४०-१४१, फलक LIX तथा CXII, 4।
२९. कठोच, य० सिं०, मध्य हिमालय का पुरातत्त्व, लखनऊ, १९८१ ई०, पृ० १७ तथा ९३ ।
३०. तिवारी, राकेश, सर्वेक्षण रिपोर्ट (१९८१-८२-८३), उ० प्र० रा० पु० सं० लखनऊ, १९८४, पृ० ७१-७२; ध्यानम्, अंक ३, लखनऊ, १९८३, पृ० ८१; नवभारत टाइम्स, दिल्ली, ७ जुलाई, १९८४।
३१. हिन्दुस्तान (हिन्दी दैनिक), दिल्ली, ४ जुलाई, १९८८, पृ० ४ का समाचार; उत्तराखण्ड शोध संस्थान की देहरादून - संगोष्ठी में प्रस्तुत डॉ० नौटियाल द्वारा यज्ञस्थल - उत्खनन का विवरण (२७ दिस०, १९८८)।
३२. तिवारी, रा०, पूर्वोक्त, पृ० ६४।
३३. कठोच, य०, पूर्वोक्त, पृ० ७८-७९ तथा चित्र ३६।
३४. इं० आर्कि०: रि० (१९६३-६४), पृ० ४५।
३५. पुरातत्त्व, सं० ८, १९७५-७६, पृ० १८०; इं० आर्कि०: रि० (१९७४-७५)।
३६. ज० न्यू० सो० इं०, खण्ड ३७, १९७५, पृ० ७२-७५।
३७. J.O.H.S.A.R.D., खण्ड ३, १९७९, पृ० ७८-८०; इं० आर्कि०: रि० (१९८२-८३), पृ० ९४।
३८. धर्मयुग (साप्ता०), २१ मार्च १९८२, पृ० ३५।
३९. नौटियाल, क्रां० प्र०, ज०न्यू०सो०इं०, खण्ड २३, पृ० ३७५ तथा जोशी, म० प्र०, उत्तराखण्ड भारती, खण्ड १ (१), पृ० ११; सूवनिअॅ, स्नातकोत्तर महाविद्यालय अलमोड़ा, १९८०, पृ० २२।
४०. सरकार, दि०चं०, एज ऑव् इम्पिरिअॅल यूनिटि, पृ० १७१।
४१. कठोच, य० सिं०, पूर्वोक्त, पृ० १०४।
४२. इं० आर्कि०: रि (१९६०-६१), पृ० ६७।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पञ्चम अध्याय

देवालय वास्तुकला

"The true sourse of the inspiration of Indian art,........ was in those wonderful Himalayan mountains whose magnetic force is felt throughout the continent of Asia."

-E.B. Havell

The Himalyas in Indian Art, 1924. P.75.

१.

पृष्ठभूमि

मध्य-हिमालय अपनी अनुपम विशेषताओं के कारण सम्पूर्ण हिमालय में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसीलिए प्राचीन वाङ्मय में 'हिमवन्त' नाम विशेषतः इसी प्रदेश के लिए आया है। गङ्गा-यमुना के पावन स्रोत और बदरी-केदार के प्रख्यात धाम यहीं हैं। इसी प्रदेश के महा-हिमालय में बदरिकाश्रम और उप-गिरि में कण्वाश्रम जैसे महान् वैदिक विद्यापीठ थे। इसी कारण गङ्गाद्वार से श्वेतान्त-पर्वत पर्यन्त इस तपःपूत ऋषिभूमि को आर्यों ने 'स्वर्गभूमि' कहा है। पाण्डवों से लेकर आचार्य शङ्कर तक, और उसके उपरान्त भी, तीर्थ - यात्रियों का प्रवाह यहाँ अविच्छिन्न रहा। फलस्वरूप नाना भारतीय दर्शनों और धर्मों की संगम-स्थली बनी रही यह।

दक्षिण में 'माल' से लेकर उत्तर में महा-हिमालय तक यहाँ सर्वत्र भौगोलिक विषमता के दर्शन होते हैं। अतएव वसती और वास्तु-रचना के लिए यहाँ वही स्थल चुने गये थे, जो

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नदी-उत्तल हैं, अथवा नदी-संगम। हिमानी-उत्तल, हिम-गह्वर, और उष्ण जल-स्रोतों के पास भी वास्तु-रचनाएँ की गयीं। इस पावन एवं समन्वयवादी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि और दुर्गम भौगोलिक पारिस्थितिकी में मध्य हिमाद्रि वास्तुकला विकसित एवं पल्लवित हुई।

२.

वास्तुकला पर अनुसन्धान का महत्व

वास्तुकला अपनी विषय-व्यापकता के कारण समस्त ललित कलाओं की आधारभूत मानी गयी है। परन्तु इसका महत्व इसलिए भी अधिक है कि वास्तु-कृतियाँ ही सर्वाधिक दीर्घकालीन होती हैं। उनमें प्रदेश विशेष की विभिन्न ऐतिहासिक युगों की संस्कृतियाँ प्रतिबिम्बित दिखती हैं। तमसा (टोंस)-उपत्यका से काली-करनाली पर्यन्त फैले मध्य-हिमालय की पुरातन संस्कृति एवं सभ्यता का दर्शन करने के लिए यहाँ की मन्दिर-वास्तुकला का अनुसंधान और विवेचन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

विशेषतः गङ्गा से संयुक्त 'केदार-भूमि' में देवमन्दिर-निर्माण की परम्परा अत्यन्त प्राचीन थी। नदी-संगमों, देवों तथा ऋषियों की तपस्थलियों और यज्ञ-भूमियों पर यहाँ श्रद्धालु नरेशों और यात्रियों ने बहुशः मन्दिरों एवं वेदियों की स्थापना की। प्राकृतिक प्रकोपों और विधर्मियों के अत्याचारों के कारण अनेक देवालय विनष्ट होने पर भी, आज बहुशः विद्यमान हैं।[१] वे विभिन्न कालों में निर्मित हैं, और विभिन्न शैलियों में रचित। उन पर विभिन्न मत-मतान्तरों का प्रभाव है, और विभिन्न भौगोलिक दशाओं का भी। उदाहरणार्थ, दारु-मन्दिरों की उपलब्धि ने शैलियों की इस विविधता के क्रम में ही वृद्धि नहीं की, संरचनात्मक मंदिरों के 'काष्ठ - मूल' पर अनुसंधान के लिए सामग्री भी दी। अतएव बहुलता और विविधता दोनों दृष्टियों से इन मन्दिरों का अध्ययन भारतीय वास्तुकला के इतिहास के लिए अत्यन्त रोचक है।

पुनः, पुराने अधिकारी विद्वानों ने मध्य-हिमालय के इन रोचक देवमन्दिरों का कहीं विवेचन ही नहीं किया; जबकि हिमालय के ही अन्य प्रदेशों के स्थापत्य पर प्रशस्त ग्रन्थ रचे गये। उदाहरण के लिए, हरमन गूज, डॉ० ए० फ्रांके और रामचन्द्र कक ने क्रमशः चम्बा, पश्चिम हिमालय और कश्मीर पर, तथा पर्सी ब्राउन ने नेपाल पर प्रामाणिक पुस्तकें लिखी हैं। इस विवेचन - शून्यता का कारण यह है कि यह पर्वतीय भाग विद्वानों के लिए अपरिचित और अज्ञात रहा। स्वयं प्रसिद्ध स्थापत्य-मर्मज्ञ जेम्स फर्गुसन ने कश्मीर और नेपाल के मध्यवर्ती हिमालय का वास्तु-विवेचन सूचनाओं के अभाव में सर्वथा अछूता छोड़ दिया, यद्यपि इस भाग में मन्दिरों की बहुसंख्या उसने बतायी। अभी तक भी यह विवेचन-शून्यता किसी सीमा तक बनी हुई है।

इस दिशा में कालान्तर में जो अल्प प्रयास हुए, उनमें विस्तृत सर्वेक्षण का अभाव और

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐतिहासिक भ्रांतियों की भरमार मिलती है। इसके अतिरिक्त, सम्पूर्ण मध्य-हिमालयीय मन्दिर-वास्तु का, कला-कृति एवं कला-सिद्धान्तों की समन्वयात्मक पद्धति पर अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है। १६७८ ई0 में प्रस्तुत अपने शोध - प्रबन्ध में लेखक ने सर्वेक्षण के उपरान्त, इस समन्वयात्मक पद्धति का प्रथम वार अनुसरण करने का प्रयास किया। तथापि मैं स्वीकार करता हूँ कि अभी अधिक सर्वेक्षण की सम्भावनाएँ और अनुसंधान की आवश्यकता है।

३.
हिमाद्रि वास्तु-परम्परा

शिल्प-ग्रन्थों में भवन-स्थापत्य के तीन प्रकार प्रकल्पित हैं: शालभवन, राजभवन, और प्रासाद (देव-मन्दिर)। इनमें से प्रथम दो लौकिक वास्तु हैं, और अंतिम धार्मिक वास्तु। पुर और दुर्ग वास्तु भी लौकिक वास्तु के प्रकार हैं। मध्य- हिमालय में पाण्डुवाला, ब्रह्मपुर, कार्त्तिकेयपुर जैसे प्रसिद्ध नगरों का वास्तु अभी भूमि-परतों के नीचे दबा होने से अज्ञात है; चाँदपुरगढ़ और देवलगढ़ में दुर्ग-प्रासाद ध्वंसावशेष रूप में हैं; पुराने ग्रामों में और देवमन्दिरों के परिवेश में 'तिबारी', 'ड्योढ़ी', तथा 'खोली' के रूप में कलात्मक शालभवन जीर्णावस्था में मिलते हैं। इस समस्त लौकिक वास्तु का अध्ययन भी अधिक रोचक है। परन्तु इसे छोड़कर, प्रस्तुत लेख में, 'वास्तुकला' से हमारा मन्तव्य, विशेषतः संरचनात्मक देवमन्दिरों की स्थापत्य-कला से है, जिसमें मन्दिर के स्वतन्त्र सहायक अङ्ग वापी, कुण्ड और वीरस्तम्भ भी आ जाते हैं।

अब पुरात्त्वीय और साहित्यिक दोनों प्रमाणों से इस प्रदेश की विशिष्ट वास्तु-परम्परा से हम परिचित हो चुके हैं। हिमाद्रि वास्तुकला की 'नागर' परम्परा उसके अगणित वास्तु-अवशेषों में प्रत्यक्ष दिखायी देती है। जिसमें उसके मौलिक तत्त्वों की छाप स्पष्ट है। कलात्मक मन्दिरों का निर्माण यहाँ गुप्तोत्तरकाल से विक्रम की तेरहवीं - चौदहवीं शती तक होता रहा।

लेखक द्वारा १६७७ ई0 में वास्तुशिरोमणि नामक संस्कृत ग्रन्थ की पाण्डुलिपि की खोज[2] से इस परम्परा की साहित्य द्वारा भी पुष्टि हुई है। इस वास्तु-ग्रन्थ की रचना विद्वानों के आश्रयदाता पँवारवंशीय महाराजा श्यामशाह के आश्रित गुरु शंकर ने वि0 सं0 १६७७ में की थी। 'वास्तुशिरोमणि' गढ़वाल का ही नहीं, मध्य-हिमालय की वास्तु-परम्परा का, अंतिम ग्रन्थ है। यह पूर्वकाल से चली आ रही स्थानीय परम्परा पर आधारित है, और स्थानीय उपयोग के लिए रचा गया था। इसके अध्ययन से उत्तराखण्ड की वास्तु-परम्परा के विषय में दो सामान्य निष्कर्ष निकलते हैं :-

(१) इस वास्तु परम्परा पर पुराणों, तन्त्रों और शिल्पशास्त्रों तीनों का प्रभाव है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(२) यह वास्तु की उत्तरी शैली (नागर) का अभिन्न अंग है।

वास्तु - परम्परा की प्राचीनता स्थानीय वास्तु-शब्दों से भी सिद्ध होती है। देवमन्दिर के लिए 'ध्यूल' शब्द यहाँ पुराकाल से प्रचलित है। जिन स्थलों पर ये देवल निर्मित थे, वे भी अब 'ध्यूल' कहलाते हैं। इसी प्रकार, 'ध्योथल' (देवस्थल) और 'ध्यूली' (देवलक) शब्द भी यहाँ उतने ही पुरातन हैं।

४.

वास्तुकला का विकास

मध्य-हिमालय में विद्यमान देवमन्दिरों के अगले विवेचन से पूर्व हमारे सम्मुख तीन सामान्य संकल्पनाएँ हैं :-

(१) जो वास्तु-शैली गढ़वाल-हिमालय में विकसित और प्रचलित हुई, वही पूर्व में काली नदी के आस-पास तक कुमाऊँ हिमालय में भी मिलती है।

(२) इन देवमन्दिरों की संरचनात्मक विशेषताएँ सुस्पष्ट हैं; क्योंकि प्रदेशीय पारिस्थितिकी ने मन्दिर-वास्तु की स्वतंत्र परम्पराएँ विकसित होने में योग दिया। अस्तु, इस प्रदेश के स्थापत्य का उत्तरी आर्य शैली की एक स्वतंत्र उपशैली के रूप में विवेचन होना चाहिए।

(३) हिमालय का यह भाग अन्य उत्तरी शैलियों के क्षेत्र-विस्तार की तुलना में उतना विस्तृत न होने के कारण, इसकी वास्तुकला का वर्गीकरण भौगोलिक क्रम से नहीं, कालक्रम से ही करना संगत है।

यहाँ की वास्तुकला का विकास तीन प्रधान उत्थानों में आगे बढ़ा: (१) आद्य-ऐतिहासिक मन्दिर; (२) प्रारम्भिक ऐतिहासिक मन्दिर; और (३) पूर्व- और उत्तर-मध्यकालीन मन्दिर। यदि प्राचीन स्तूप-वास्तु को छोड़ दें, तो इनमें से अंतिम उत्थान में ही प्रस्तर का संरचनात्मक मन्दिर - वास्तु विकसित हुआ दिखायी देता है।

(१) आद्य - ऐतिहासिक मन्दिर :

अन्य देशों की भाँति, आदि काल से मध्य-हिमालयीय जन जड़ात्मक पूजा के उपासक रहे। नाग, यक्ष, घण्टाकर्ण, भूमिया, आदि नाना स्थानीय देवताओं को वे विश्वासपूर्वक पूजते आ रहे हैं। यूरोपीय विद्वानों ने हमारे पड़ोसी भोट देश के इस प्रकार के परम्परागत धर्म को 'प्रिमिटिव' नाम दिया, और स्वयं भोट-वासियों ने उसे 'मि-कोस्' (जन-धर्म)। मध्य-हिमालय के जन-धर्म का 'आद्य - ऐतिहासिक वास्तु' हमें प्रारम्भिक अछादित और छादित मन्दिरों के रूप

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में मिलता है।

'अछादित मन्दिरों' (हाइपीथ्रॅल टेम्पुल्स) का आशय ऐसे 'प्रारम्भिक' मन्दिरों से है, जो परवर्ती मन्दिरों की भाँति संरचनात्मक नहीं होते, और इन साधारण रूपों में मिलते हैं :- (१) 'वृक्ष - मन्दिर', जिनमें अश्वत्थ, वट, पद्म, देवदारु आदि वृक्षों के चारों ओर वेदिका बनाकर उसकी पुष्प, जल और बलि द्वारा पूजा की जाती रही है। (२) 'महापाषाण', जिन्हें मृत योद्धा अथवा सामान्य जन की स्मृति-स्वरूप देवगृह के रूप में स्थापित किया जाता था। उसे बाड़े से घेरकर उसके आगे त्रिशूल व दीपक रखकर उसकी पूजा की जाती थी। (३) 'महापाषाण समाधियाँ', जो 'डोलमेन' के रूप में होती थीं। ऐसी कुछ समाधियाँ धौली-घाटी में स्थित मलारी ग्राम में मिली हैं। बैनिस्टर फ्लीचर ने इन 'प्रीहिस्टॉरिक आर्किटेक्चर्स' पर विवेचन करते हुए समुचित ही कहा कि कालान्तर में इन्हीं अपरिष्कृत रूपों से स्थापत्य के विविध रूपों का उदय हुआ।

इसके उपरान्त, अर्चा-वस्तुओं के ऊपर 'छादित मन्दिरों' का विकास समकालीन जनावासों के अनुकरण पर हुआ था। ये अधिक स्थायी सामग्री से बनाये गये थे, परन्तु आज इनके अवशेष नहीं मिलते।

(२) प्रारम्भिक ऐतिहासिक मन्दिर

इनका एक भी उदाहरण हमें चार दशक पूर्व तक ज्ञात नहीं था। १९५३ ईसवी में देहरादून जनपद में, यमुना-तट पर अवस्थित बाड़वाला ग्राम में, एक भू-खण्ड को कृषि-योग्य बनाते समय अश्वमेध यज्ञ की वेदियों के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जो इष्टका - लेखों के आधार पर ईसवी तृतीय शती के माने जाते हैं। इसके पश्चात् देवदुंगा में उत्खनित यज्ञ-वेदी को कुणिन्दकालीन माना गया है। इन यज्ञ-वेदियों (चितियों) को मन्दिर-वास्तु के अन्तर्गत मानने का कारण यह है कि वैदिक वेदी का प्रतीकवाद ही कालान्तर में हिन्दू मन्दिर के विन्यास में ग्रहण किया गया है। अतएव इस वेदियों की रचना ही "भारत में धार्मिक वास्तु व प्रासाद - निर्माण का प्रारम्भ था" [3], इस मान्यता को स्वीकार करने में कठिनाई नहीं है।

अन्य उदाहरणों के अभाव में, प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल की सामान्य स्थापत्यीय विशेषताओं से हम अभी तक अनभिज्ञ ही हैं।

(३) पूर्व- और उत्तर-मध्यकालीन मन्दिर

विवेच्य वेदियों के पश्चात्, स्मारकीय स्थापत्य का अन्धकार युग हमारे सामने है। इस काल में भी मन्दिर आदि स्मारक अवश्य निर्मित हुए, जो इष्टका - निर्मित थे, परन्तु उनमें से

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आज कोई विद्यमान नहीं है। मात्र उनके अधिष्ठान यत्र-तत्र मिलते हैं। अतएव उनकी रचना-शैली अभी तमाच्छन्न है। यह अन्धकार युग पूर्व - मध्यकाल में समाप्त होता है।

इस तृतीय उत्थान में स्थापत्य-सक्रियता की धारा मध्य-हिमालय में अत्यन्त वेगवती हो गयी। विद्यमान मन्दिरों के सम्पूर्ण उदाहरण इसी काल के हैं। इस काल के मन्दिरों का वर्गीकरण और विवेचन 'शैली' के अनुसार करना लाभदायी है; क्योंकि शैली में आये परिवर्तन ही उनके 'कालक्रम' को स्वतः स्पष्ट कर देते हैं। शैली के निरूपण का सर्वमान्य आधार 'शिखर-भेद' है। शिल्प-ग्रन्थ[४] और भारतीय स्थापत्य के आधुनिक मर्मज्ञ[५] भी इस आधार को स्वीकार करते हैं। अस्तु, इस महत्वपूर्ण तृतीय उत्थान के मन्दिरों का वर्गीकरण निम्नवत् ज्ञातव्य है :-

(क) छत्र प्रासाद

नागर शैली के वैराज अर्थात् वर्गाकार गर्भगृह वाले मन्दिरों का प्रथम प्रकार 'छत्र प्रासाद' है। इनका निर्माण या तो पूर्णतः काष्ठ का अथवा केवल शीर्ष-छाद्य ढालू काष्ठ-छत्रों का बनाया गया है। अतः इनके भी दो उप-वर्ग हैं :-

(१) पूर्णतः काष्ठ-निर्मित छत्र-प्रासादों को 'पैगोडा प्रकार' का कहा जाता है। परन्तु वास्तुशास्त्रों में सम्भवतः इन्हीं प्रासादों को *'यामुन शैली'* का कहा गया है। ये मन्दिर केवल टोन्स की उपरली द्रोणी अर्थात् रवाईं क्षेत्र में सीमित हैं। अनोल में मासू देवता, थान में जमदग्नि, और अगासमुनि आदि के मन्दिर, यद्यपि मूलतः 'पैगोडा प्रकार' के ही थे, क्योंकि उनके व[illegible] छ्गों में प्राचीन 'काष्ठमूल' के स्पष्ट अवशेष मिलते हैं, तथापि उनके मूल वास्तु में समय-समय पर पुनरुद्धार के कारण पर्याप्त परिवर्तन हो चुके हैं। (चित्र - ८)

(२) द्वितीय वर्ग में 'काष्ठ - छत्र के प्रस्तर प्रासाद' हैं, जिनके शीर्ष भागों में काष्ठ-छत्र हैं, परन्तु कटि और शिखर भाग प्रस्तर-निर्मित होते हैं। उत्तर- गुप्तकाल के आस-पास मध्य-हिमाद्रि के देवालयों के लिए प्रस्तर का प्रयोग बढ़ने लगा। इस काल में यहाँ उत्तर भारतीय प्रचलित शैली के पञ्चरथ, त्रिरथ और एकरथ प्रासादों का निर्माण हुआ, परन्तु प्रधान देवालयों की शीर्ष - रचना वही 'पैगोडा प्रकार' की बनी रही। स्कन्ध के ऊपर विशाल आमलक को ढकते हुए एकाधिक ढालू काष्ठ-छत्र (wooden parasol) बनाये गये। लाखेश्वर (चित्र - ६), गोपेश्वर, केदारनाथ, जागेश्वर और बिनसर के शिव मन्दिर, राणीहाट और देवलगढ़ के शक्ति मन्दिर तथा त्रियुगीनारायण और देवप्रयाग के वैष्णव मन्दिर इसी प्रकार के हैं। पैठाणी (चित्र - १४) के प्राचीन मन्दिर का शीर्ष भी सम्भवतः कभी काष्ठ-छत्र का रहा होगा। चौदहवीं शती वि० तक इन मन्दिरों का निर्माण वेग से होता रहा, और इनमें विकास के स्पष्ट

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लक्षण मिलते हैं। परन्तु इसके उपरान्त इनमें कला का ह्रास होता गया। श्रीनगर में केशवराय मठ (विक्रम सं० १६८२), लक्ष्मीनारायण मन्दिर (विक्रम सं० १६६६), और बाड़ाहाट में विश्वनाथ मन्दिर (वि० सं० १६१४), आदि इसी ह्रास काल के हैं।

मध्य-हिमाद्रि में 'काष्ठ - छत्र के प्रस्तर प्रासादों' को मैं दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण मानता हूँ :- (१) मानोन्मान की दृष्टि से यही विशालकाय मन्दिर हैं; और (२) 'मध्य - हिमाद्रि शैली' के ये ही प्रतिनिधि प्रासाद हैं। यहाँ मूल प्रासादों अर्थात् प्रधान देवालयों के लिए प्रायः यही प्रकार गृहीत हुआ।

इन काष्ठ - छत्र प्रासादों को कभी-कभी शिथिल रूप से 'कत्यूरी शिखर मन्दिर' कहा गया है, परन्तु यह नाम सर्वथा अग्राह्य है। बहु-छत्रक से लेकर एक-छत्रक की ओर विकासमान इस वर्ग के मन्दिरों का निर्माण कलापूर्ण रीति से तेरहवीं - चौदहवीं शती विक्रमी तक वेग से होता रहा।

(ख) शिखर प्रासाद

वर्गाकार गर्भगृह वाले वैराज मंदिरों का द्वितीय प्रकार 'शिखर प्रासाद' है। यहाँ इन प्रासादों के तीन उप-वर्ग मिले हैं :-

(१) **रुचक प्रासाद** :- 'समरांगणसूत्रधार' में इन्हें वैराज के चौबीस प्रकारों में गिना गया है। प्रो० स्टेला क्रैमरिश[६] ने इन रुचक प्रासादों के तीन प्रधान लक्षण बताये हैं :- ये लघु आकार के होते हैं; निरंधार हैं; और सामने सस्तम्भ प्राग्ग्रीव (Pillared Porch) ही इनका मण्डप है। ये लक्षण यहाँ यथावत् प्राप्त होते हैं। मध्य-हिमालय में रुचक मन्दिर बहुधा समूह-रूप में मिलते हैं। आदिबदरी (चाँदपुर), भेत् (नागपुर) और धूल (सितोनस्यूँ) में ऐसे मंदिर - समूह हैं। (चित्र - १०, ११) इनके संवादी मन्दिर-समूह कुमाऊँ में बैजनाथ और बागेश्वर में है। वासुदेव मन्दिर जोशीमठ के परिवार-मन्दिर और उरगम में विश्वनाथ का स्वतंत्र मन्दिर इसी प्रकार के हैं। तलछन्द में ये चतुरस्र हैं। ऊर्ध्वछन्द में तीन प्रधान भाग हैं : पीठ, सस्तंभ प्राग्ग्रीव-युक्त कटि, और आमलक-संयुक्त शिखर। इन रुचक प्रासादों के सम्बन्ध में दो सामान्य तथ्य सामने आये हैं :- (१) समरांगण० (अ० ५८) में ये प्रासाद विष्णु-संबद्ध बताये गये हैं। उक्त तीन प्रधान समूह भी विष्णु - समर्पित हैं। (२) काल की दृष्टि से, रुचक-प्रासाद अन्य वर्ग के शिखर प्रासादों की अपेक्षा प्रारम्भिक - काल के हैं।

(२) **स्तम्भ-रहित शिखर प्रासाद** :- सिमली के वैष्णव मन्दिरों तथा जोशीमठ के कुछ परिवार-मन्दिरों के अतिरिक्त, अन्यत्र भी इनके उदाहरण मिले हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(३) पिढा-शिखर प्रासाद :- तलछन्द में चतुरस्र एकरथ, तथा ऊर्ध्वछन्द में चतुर्दिक दश अथवा द्वादश गहरी क्षैतिज पट्टियों (Horizontal Tiers) वाला सोपानीय रीति का शिखर इस वर्ग की विशेषताएँ हैं। ये भी आकार में लघु हैं। पलेठी (चित्र - १२) और भेत् में इस वर्ग के दो-दो स्वतन्त्र मन्दिर हैं। परन्तु गरुड मन्दिर आदिबदरी और बिनसर का एक अवशिष्ट परिवार-मन्दिर भी इसी उपवर्ग के मन्दिर हैं। कुमाऊँ में कटारमल और जागेश्वर के समूहों में भी इस उपवर्ग के अनेक परिवार-मन्दिर हैं।

(ग) वलभी प्रासाद

उक्त चतुरस्र प्रासादों से भिन्न, आयतास्र (Rectangular) मन्दिर भी इस प्रदेश में पाये जाते हैं, जिन्हें उत्तरी शिल्प-ग्रन्थों में 'वलभी' कहते हैं। अग्निपुराण, समरांगणसूत्रधार, आदि ग्रन्थों में इनकी सामान्य संज्ञा 'पुष्पक' है। राजसिंह-वास्तुशास्त्र (अ० १) के अनुसार, इन मन्दिरों की विशेषताएँ हैं : आयतास्र तलछन्द, त्रितल, और गजपृष्ठाकार छाद्य (Vaulted roof)। ये सर्वत्र परिवार-मन्दिरों के रूप में मिलते हैं।

गढ़वाल हिमालय में ही चार वलभी प्रासाद अर्चित अवस्था में होने से सुपरिचित हैं: माता मन्दिर (गोपेश्वर), नवदुर्गा और अन्य परिवार-मन्दिर (जोशीमठ), नन्दादेवी मन्दिर (बजिंग) और घंडियाल मन्दिर (बूढ़ा - भरसार, चित्र- १३)। अन्यत्र भी कुछ मन्दिर उपेक्षित और अर्द्धध्वस्त अवस्था में पाये गये हैं। इनमें विकास की दृष्टि से 'माता-मन्दिर' प्राचीनतम है, जो मूल मन्दिर के साथ नवीं शती के लगभग निर्मित हुआ होगा।

'वलभी प्रासादों' के अध्ययन से लेखक इन निष्कर्षों पर पहुँचा है: (१) इस उप-वर्ग के मन्दिर अष्टायतन मन्दिरों के लिए एक विहित व्यवस्था थी। मन्दिर-समूहों में ये परिवार-मन्दिरों के रूप में ही निर्मित किये जाते थे। इस प्रदेश में तो प्रधान मन्दिरों के लिए यह रूप कभी मान्य न हो सका। (२) इनमें से जो नवदुर्गा के लिए समर्पित होता था, उसे सदैव मूल मन्दिर के वाम पार्श्व में निर्मित करने का विधान था। (३) परिवार-मन्दिरों के समुच्चय में आयताकार विन्यास के वलभी-शिखर मन्दिरों के निर्माण का उद्देश्य एकरसता का निवारण रहा होगा। (४) ये मन्दिर निश्चय ही नागर वर्ग के हैं। अतएव पर्सी ब्राउन का यह मत है कि ये मन्दिर "इतर परम्परा से व्युत्पन्न" हैं, ग्राह्य नहीं हो सकता।

(घ) मिश्रक वेसर प्रासाद

विशुद्ध 'वेसर' रूप में तो नहीं, परन्तु अपने मिश्रित रूप में 'योगबदरी मन्दिर' पाण्डुकेश्वर इस प्रकार का अकेला उदाहरण है। इस मन्दिर की कटि चतुरस्र, शिखर वृत्त और शीर्ष काष्ठछत्र- युक्त है। मेखला के ऊपर चारों कोणों पर चार सिंह बहिर्मुख खड़े हैं, जो मानों

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शिखर को संभाले हों। मन्दिर का बाह्य और अन्तर्भाग नितान्त सादा है। 'वृत्त शिखर' हिमाद्रि शैली के मन्दिरों के मध्य एक विरल प्रकार है। वास्तव में, विशिष्ट वर्ग के इस मन्दिर पर विभिन्न स्थापत्य-शैलियों का प्रभाव स्पष्ट है।

तीन प्रधान उत्थानों में विकसित यह है मध्य-हिमालय का मन्दिर स्थापत्य, जिसके तृतीय उत्थान में उपरिवर्णित चतुर्विध प्रासादों का निर्माण हुआ। तृतीय उत्थान के उक्त वर्णित समस्त देवालय संरचनात्मक हैं। परन्तु एक ही चट्टान पर उकेरा गया इस काल का एक-मात्र देवालय जनपद पिथौरागढ़ में थल के समीप अल्मियाँ ग्राम में प्राप्त हुआ है। नागर शैली का त्रिरथ-विन्यास में निर्मित यह देवालय शिव को समर्पित है। इन प्रासादों से संबद्ध, उनके 'स्वतंत्र सहायक अंगों' का वास्तु भी उल्लेखनीय है। इनमें मन्दिर - प्रांगण में स्थापित प्रायः अश्वारोही चित्रांकन-युक्त 'वीर-स्तम्भ', और देवालयों के सम्मुख 'कुण्ड', 'वापी' और 'पुष्कर' प्रमुख हैं। अवश्य 'वीर-स्तम्भ' रक्षा और शांति के प्रतीक है, जबकि कुण्डों का महत्व उनकी आध्यात्मिक एवं लौकिक उपयोगिता में है।

५.
रचना-शिल्प तथा अभिव्यञ्जना

रचना -शिल्प (तकनीक) की दृष्टि से, मन्दिरों की रचना में मुख्यतः इष्टका, प्रस्तर और दारु 'निर्माण - द्रव्यों' का प्रयोग किया गया है। इष्टका - मन्दिर आरम्भिक गुप्त-काल तक बनते रहे। आज इनके अवशेष मात्र पूर्ण ध्वस्त रूप में मोरध्वज, वीरभद्र, लाखामण्डल, गोपेश्वर, बिनसर, इत्यादि पुरास्थलों में उत्खनन द्वारा मिले हैं। दारुओं में देवदारु और थुनेर का ही अधिक प्रयोग हुआ। पीत रंग का नर देवदारु और लाल रंग का थुनेर अधिक दीर्घजीवी माने गये। टोन्स की उपरली उपत्यका को छोड़कर (जहाँ काष्ठ-मन्दिरों का प्रचलन है), विद्यमान समस्त देवमन्दिर प्रस्तर-निर्मित हैं। ज्ञातव्य है कि सर्वत्र स्थानीय प्रस्तर का ही प्रयोग हुआ है। उसके साथ भित्ति - शिखाखण्डों को बाँधने तथा वास्तु के अन्य अंगों के लिए लौह-कीलें और लौह-पट्टिकाएँ भी प्रयुक्त हुई हैं। हिमादि-मन्दिरों के स्तम्भ, द्वार, शुकनास, अधिष्ठान, वितान, आदि की 'निर्माण - पद्धतियों' का वर्णन, साथ ही, उनकी 'चयन-विधि' तथा 'स्थायित्व-सिद्धांतों' की समीक्षा भी उपयोगी विषय हैं।

इसके अतिरिक्त, हिमालय स्थापत्य को उत्कर्ष और अर्थ देनेवाली अभिव्यञ्जना (Expression) का विवेचन भी अधिक रोचक प्रकरण है, जिसमें विशिष्ट अर्थ को व्यक्त करनेवाले विभिन्न 'स्थापत्य रूपों' और 'कलाकारों की मौलिकता' का वर्णन किया जा सकता है। अपने ग्रन्थ *'मध्य-हिमालय का पुरातत्त्व'* (१६८१) में लेखक ने इनका विस्तार से वर्णन करने का प्रयास किया है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

६.

वास्तु अलङ्कार

स्थापत्य-भूषा के लिए कला में जो प्राकृतिक अथवा काल्पनिक अभिप्राय प्रयुक्त होते हैं, उन्हें अलङ्कार कहा जाता है। अलंकरण - अभिप्रायों का प्रयोजन स्थापत्य का सौंदर्यवर्द्धन-मात्र नहीं है। ये रक्षा और शान्ति, माङ्गल्य और पुष्टि के लिए भी निर्मित किये जाते हैं। सौंदर्य के सहित, वास्तव में, ये कला को गहनतर दार्शनिक अर्थ प्रदान करते हैं।

मध्य-हिमालय की वास्तुकला में भी विविध अङ्करण -अभिप्रायों के दर्शन होते हैं। ये अभिप्राय कभी प्राकृतिक होते हैं, तो कभी काल्पनिक। कभी मानव, पशु और पक्षी-आकृतियों के रूप चित्रित हैं, तो कभी लतापर्णालङ्कार रूप में। कभी ज्यामितिक होते हैं, तो कभी स्थापत्य के अङ्ग रूप में। इन्हें प्रायः मन्दिरों के द्वार, भित्तियों, वितानों और स्तम्भों पर स्थान दिया गया है।

वृत्तनेत्र और स्मश्रुल कीर्तिमुखों (चित्र-१) का चित्रण नाना प्रकार से किया गया है। आदिबदरी में वे मालामुख हैं, तो वासुदेव मन्दिर जोशीमठ के तोरण-द्वार और पुनाणू के चैत्य-गवाक्ष पर घण्टा-श्रृङ्खला-सहित। सिंहमुख-संयुक्त घण्टा-श्रृङ्खला अभिप्राय स्वयं गुप्तकालीन स्तम्भों की एक विशेषता थी, परन्तु यहाँ इनका चित्रण प्रायः मध्यकालीन है।

'स्थापत्य-अभिप्रायों' में यहाँ मुख्यतः मकर-मुख प्रणाल, पूर्वकालीन काष्ठ-रचना से गृहीत कूट धरणशीर्ष (लुमा/लुपा), सादे और मदनिका-रूप कोष्ठक और मन्दिरों के अग्रभाग पर चैत्य-गवाक्षों का प्रयोग उपयोगिता एवं सौन्दर्यवर्द्धन दोनों उद्देश्यों के लिए किया गया है। इनमें से चैत्य गवाक्ष अभिप्राय सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जिसके मध्यभाग में चित्रित 'भद्रमुख' के ही अङ्कन में रोचक विविधता है।

लुकाधड़ी के एक घटपल्लव- भूषित स्तम्भ (चित्र - २३) और चण्डीमन्दिर गोपेश्वर की कल्पलता - मण्डित द्वारशाखा में प्रदर्शित सहज सौंदर्य निश्चय ही गुप्तकालीन कला है। समृद्धि का मङ्गल प्रतीक घटपल्लव अभिप्राय मध्य-हिमालय में आगे अत्यन्त लोकप्रिय बना। कुमाऊँ के जागेश्वर-मन्दिरों में कलाकारों ने इसका व्यापक प्रयोग किया। इन 'लतापर्णालंकारों' के अतिरिक्त, ज्यामिति अलंकारों का भी वितानादि में प्रयोग हुआ, परन्तु अत्यल्प। आख्यानमूलक- फलक मृत्तिका और पाषाण दोनों से निर्मित पाये गये हैं। 'केशीसूदन कृष्ण', (चित्र - ७) 'समुद्र-मंथन,' 'मृगयाशील दुष्यन्त', आदि दृश्य-फलकों में गति और समायोजन जीवन्त हो उठा है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गजसिंह अभिप्राय 'स्थापत्य पशुओं' (टेम्पुल फौना) में यहाँ सर्वाधिक लोकप्रिय रहा (चित्र -२) है। मन्दिर-वास्तु में इसका प्रयोजन सदैव शुकनास की भूषा के लिए होता था। अतएव स्थापत्य के अंगरूप में इसका चित्रण सर्वत्र किया गया है।[७] धर्म का प्रतीक वृष यहाँ प्रायः शिव-मन्दिरों के सम्मुख प्रतिष्ठित दिखायी देता है, अथवा कभी मुद्रा-लांछन के रूप में। मकर, मेष और मृग के अभिप्राय भी विरल रूप में अंकित मिलते हैं। माङ्गल्य-विहगों में हंस और मयूर-मिथुनों का चित्राङ्कन क्रमशः शिवमन्दिर गोपेश्वर और लक्ष्मण मन्दिर ग्यूल में दर्शनीय है। नाग - मिथुन का अङ्कन टिहरी-गढ़वाल में स्थित नागेश्वर और पुनाणू (चित्र - २४) में ही नहीं, जागेश्वर आदि मध्यकालीन मन्दिरों में भी द्वारभूषा के लिए हुआ है। सर्वाधिक रोचक तो सवत्सा गौ का अभिप्राय है, जिसका अङ्कन चन्द्रबदनी मन्दिर के पास गोमुख के उत्तर-मध्यकालीन वैष्णव मन्दिर में लेखक को मिला। वास्तव में, यह शिलापट्ट आज मन्दिर-कुण्ड का अंश है। जलकुम्भ आदि की भांति स-वत्सा गौ भी एक माङ्गलिक अभिप्राय है। ऐसे ही शिलापट्ट, एक सूचना के अनुसार[८], राजस्थान के भीलवाड़ा जनपद में गूंगा-अगूंचा ग्राम के उत्खनन से भी कुछ दिन पूर्व मिले हैं।

७.

सामान्य मूल्याङ्कन

क. शैली के सर्जन में प्रमुख शक्तियाँ -

तीन शक्तियों ने इस प्रदेश की वास्तु शैली के सर्जन में योगदान दिया है :-

(१) **परम्परा** - विद्यमान स्मारकों तथा 'वास्तु-शिरोमणि' (अप्रकाशित) शिल्प - ग्रन्थ के आधार पर हमें ज्ञात है कि मध्य - हिमालय में वास्तु की 'नागर' परम्परा प्रचलित थी। प्रस्तर - प्रयोग के पूर्व से लेकर उसके पश्चात् भी काष्ठ का मुक्त रूप से प्रयोग होता रहा।

(२) **प्रभाव** - यह शैली समकालीन अभिव्यञ्जना - शैलियों के प्रभाव से अछूती न रही। युगान्तर से यहाँ भारत के प्रत्येक प्रदेश से, शान्ति की खोज में, जन-आप्रवास होता रहा। फलतः नागर शैली के ही नाना उप-वर्ग यहाँ विकसित हुए। शैलियों का यह समागम यहाँ के धार्मिक शासकों की ग्रहणशीलता से ही सम्भव हुआ। यह प्रभाव कालगत भी है, गुप्तकाल से लेकर प्रतीहार - काल तक।

(३) **नवीनता** - संस्कृति एवं शिल्पियों के सर्जनात्मक योगदान के बिना कोई विशिष्ट कला-शैली पल्लवित नहीं हो सकती। कार्त्तिकेयपुर-नरेशों का काल मध्य-हिमालय में स्थापत्य का स्वर्ण-युग था। स्थानीय शिल्पियों ने ग्रहणशील होकर, स्वपरम्पराओं और पारिस्थितिकी के प्रति सचेष्ट रहते हुए, जो अभिनव परिवर्तन किये, उनसे कला में 'नवीनता' बनी रही।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इन प्रभावकारी शक्तियों से इस प्रदेश में एक विशिष्ट शैली का विकास हुआ, जिसे मध्य हिमाद्रि शैली कहना चाहिए। प्रो० म० ढाकी ने भी इसे 'सुनिश्चित लक्षणों से युक्त एक पृथक् शैली'[९] स्वीकार किया है। अतः लेखक की स्थापना है कि इस शैली का संगत नाम 'मध्य-हिमाद्रि शैली' है, जो तमसा से काली नदी पर्यन्त विस्तृत है। इसके स्वतन्त्र अस्तित्व का प्रमाण इसके अनेक स्पष्ट लक्षणों से ज्ञात होता है।

ख. मध्य-हिमाद्रि शैली के कुछ प्रमुख लक्षण -

(१) तलछन्द में मूल-प्रासाद का चतुरस्र तथा त्रिरथ - विन्यास (परन्तु पञ्चरथ - विन्यास भी परकीय नहीं है)।

(२) अग्रभाग में शुकनासा - उद्गम (कपिलि); इसके ऊपर बृहत् अलंकृत शूरसेन-युक्त शुकनासा और गजाक्रान्त - सिंह।

(३) गूढ़मण्डप परवर्ती वृद्धियाँ।

(४) रुचकवर्गीय शिखर मन्दिरों में एक द्वि-स्तम्भीय प्राग्ग्रीव (अर्द्धमण्डप)।

(५) शीर्षभूषा; 'छत्र-शैली' के मन्दिरों में आमलक को ढकते एकाधिक काष्ठ-छत्र और पुनः कलश; 'रुचक मन्दिरों' में ग्रीवा, आमलक, और कलश का क्रम।

(६) गर्भगृह के ऊपर लतिन (एक-अण्डक) प्रकार का नागर रेखा - शिखर (उरुश्रृङ्ग - रहित)।

(७) वास्तु-संरचना आच्छादन-विहीन, और स्थानीय प्रस्तर से निर्मित।

(८) मन्दिर आकार में लघु और भूषा में सादे।

८.

निष्कर्ष

'मध्य-हिमाद्रि शैली' पर राजस्थान, गुजरात और मध्य-भारतीय शैलियों का तो स्पष्ट प्रभाव है ही। इसके अतिरिक्त, यह कलिङ्ग शैली से भी प्रभावित हुई है। दक्षिण भारतीय कहे जाने वाले स्वल्प तत्त्वों की छाया भी यदा-कदा मिल जाती है। अतएव यह अन्य उत्तर-भारतीय स्थापत्य-शैलियों की भाँति, एक 'मिश्र शैली' है, और उसको प्रभावित करनेवाले तत्त्व अधिक व्यापक हैं।[१०]

इस शैली का उत्कर्ष - काल गुप्तोत्तर-काल से लेकर तेरहवीं - चौदहवीं शती विक्रमी तक रहा। ऐतिहासिक दृष्टि से, यह प्रधानतः कार्त्तिकेयपुर के महान् शासकों का काल था। परन्तु, इस उत्कर्ष - काल की अंतिम शतियों में पँवार वंश प्रबल हो चुका था, और उसके बलशाली प्रारम्भिक शासकों ने पूर्ववर्ती परम्परा का अनुसरण कर ही मन्दिरों का निर्माण किया। इस उत्कर्षकालीन कला से सम्बन्धित कुछ भ्रांतियाँ भी हैं :-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(१) कहा जाता है कि यहाँ "कत्यूरी प्रथम निर्माता" थे। यह भ्रांति कार्त्तिकेयपुर के नरेशों को 'कत्यूरी' मानने से हुई है। कत्यूरी राजवंश का उत्थान तो कुमाऊँ में परवर्ती काल में हुआ था।

(२) बारहवीं शती विक्रमी तक की इस उत्कर्षकालीन कला के लिए "कत्यूरी कला" और मन्दिरों के लिए "कत्यूरी शैली के मन्दिर" कहा जाता है। इन भ्रांत अभिव्यक्तियों का मूल भी उपरिलिखित प्रथम धारणा ही है।

हमेंने देखा कि मध्य-हिमालय में नागर-परम्परा की स्वतन्त्र उप-शैली के कलात्मक मन्दिर हैं, जिनका अध्ययन भारतीय स्थापत्य के इतिहास के लिए महत्वपूर्ण है। परन्तु आज मन्दिर - जीर्णोद्धार के नाम पर किये गये प्रयास अविचारित सिद्ध हो रहे हैं, और कभी-कभी विनाशकारी भी। जोशीमठ के पास परसारी का शिव-मन्दिर और चौथान का प्राचीन बिनसर महादेव का मन्दिर ग्राम-वासियों द्वारा सीमेंट से पोतकर उनका पुरातत्त्व समाप्त किया गया है। इसी प्रकार, परम्परागत मन्दिर - व्यवस्था को समाप्त करने से भी कई हानियाँ हुई हैं। अग्रहार ('गूँठ') और 'पुजारी' संस्था की स्थायी व्यवस्था के विना प्राचीन मन्दिर ध्वस्त हो रहे हैं, और उनका समृद्ध पुरातत्त्व द्रुत गति से विलुप्त हो रहा है।

सन्दर्भ

१. १८८२-८४ ई०, में ई० टी० एट्किन्सन ने मध्य हिमालय में लगभग एक सहस्र देवमन्दिर होने का अनुमान किया था (हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, खण्ड २, भूमिका, पृ० ८)।

२. द्र०, सत्यपथ (साप्ताहिक), कोटद्वार, २३ सित०, १९७९ ई० में मेरी टिप्पणी।

३. आचार्य, प्रसन्न कुमार, "प्रिन्सिपॅल्स ऑव् इण्डियन आर्किटेक्चॅर" (दि कल्चॅरल हेरिटिज ऑव् इण्डिया, खण्ड ३, पृ० ५२३)।

४. ईशानशिवगुरुपद्धति, तृतीय पाद, पृ० २६९.

५. ब्राउन, पर्सी, इण्डियन आर्किटेक्चर, खण्ड १, पृ० १११; पिशरोटी, के० राम, इण्डिवन कॅल्चॅर, खण्ड ६ (१), १९३९, पृ० ३७; हरिराव, वी० एन०, प्रोसीडिंग्स ऑव् इण्डियन हिस्टॉरिकल कांग्रेस, १९६४, पृ० ६५।

६. क्रैमरिश, दि हिन्दू टेम्पॅल, खण्ड १, पृ० २४६।

७. कठोच, य० सिं०, "गज-सिंह", नैनीताल समाचार (पाक्षिक), १५ फरवरी, १९८०। 'गज - सिंह' के महत्व एवं मन्तव्य पर लेखक ने सन् १९७५ से इस विषय में रुचि रखनेवाले विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है।

८. हिन्दुस्तान (हिन्दी दैनिक), नयी दिल्ली, १२ अप्रैल, १९८२, पृ० ६ (प्रभात सं०)।

९. ढाकी, म०, "रिपोर्ट....टेम्पल ऑव् बदरीनाथ," श्री-बदरीनाथ मन्दिर जीर्णोद्धार समिति का प्रतिवेदन (१९७४ - ७५), लखनऊ, परिशिष्ट 'ट', पृ० ४६-५०।

१०. देवालय - वास्तुकला पर अधिक विस्तार के लिए द्रष्टव्य, लेखक का ग्रन्थ मध्य हिमालय का पुरातत्त्व (१९८१ ई०), अध्याय २ तथा ३।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

षष्ठ अध्याय

मूर्ति-शिल्प

१.

भूमिका

हम लिख चुके हैं कि स्थापत्य-कला की दृष्टि से सर्वाधिक अल्प अध्ययन यदि किसी भू-भाग का हुआ है तो वह है उत्तर प्रदेश का पर्वतीय अञ्चल तथा उसका पास-पड़ोस। प्रसिद्ध विद्वान् फरगुसन (१८७६ ई०) ने भी कश्मीर और नेपाल के मध्यवर्ती हिमालय का स्थापत्य- विवेचन अछूता छोड़ दिया। परन्तु वास्तविकता यह है कि प्रथम शती विक्रमी से लेकर कला-सृजन की जितनी सक्रियता अजस्र रूप में मध्य हिमालय में रही, सम्भवतः उतनी अन्यत्र नहीं। इन पहाड़ों में उसकी भौगोलिक पारिस्थितिकी से प्रभावित, परम्परागत समस्त शैलियों के देवमन्दिर बने जिन्हें हम सामान्यतः 'मध्य- हिमाद्रि- शैली' के मन्दिर कहते हैं। और साथ-साथ विकसित हुआ देवालयों को प्राणवान् बनानेवाला मूर्ति - शिल्प। ऐसा मूर्ति-शिल्प, जो अपनी उत्कृष्टता में ही नहीं, मौलिकता में भी श्रेष्ठ है।

मध्य- हिमालय में मूर्ति-शिल्प की साधना में 'अजस्र सक्रियता' का कारण स्पष्ट है। हिमालय का यही अञ्चल सुरसरि गङ्गा का उद्गम है। यहाँ केदार-बदरी के भारत प्रसिद्ध तीर्थ विद्यमान हैं। यह पञ्च-प्रयागों की पवित्र भूमि है। कैलास-मानसरोवर का यात्रा-मार्ग इसी देवभूमि से होकर जाता है। आध्यात्मिक शान्ति के लिए ऋषि-मुनि और धर्मप्राण राजा-प्रजा सहस्राब्दियों से यहाँ आते रहे। और सबसे बढ़कर, स्थानीय नरेश, जिनमें कार्त्तिकेयपुर के शासक अग्रणी थे, अपनी धर्मनिष्ठा के लिए प्रख्यात रहे। इन सबने अपने पूर्त धर्म की सिद्धि के लिए स्वभावतः मन्दिर और मूर्ति - निर्माण को यहाँ माध्यम बनाया। मध्य-हिमालयीय मूर्ति-शिल्प का सुदीर्घ इतिहास इन्हीं प्रेरणाओं का प्रतिफल है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२.

शिल्प-माध्यम

हिमालय का प्राचीनतम एवं श्रेष्ठतम मूर्ति-शिल्प प्रस्तर पर उकेरा गया है। प्रस्तर-प्रतिमाएँ ही यहाँ बहुसंख्या में उपलब्ध हुई हैं। धातु-मूर्तियाँ भी मिली हैं, परन्तु संख्या एवं प्राचीनता की दृष्टि से उनका स्थान द्वितीय है। मृण्मूर्तियाँ हिमालय के मात्र समतल पाद- प्रदेश से प्राप्त हुई हैं। टिहरी-गढ़वाल के मैगाधार स्थल से प्राप्त साँचे से गढ़ी गयीं कलात्मक मृण्मूर्तियाँ तो कदाचित्त तराई अथवा मैदान से आयातित्त की गयी होगी। दारु- मूर्तियाँ आज नगण्य हैं, वे नाश्य सामग्री की होने से अधिक प्राचीन भी नहीं हैं। परन्तु दारु-शिल्प की भी यहाँ स्थापित परम्परा थी। अलमोड़ा जनपद में कटारमल्ल सूर्य मंदिर के काष्ठ- अवशेष इसके उदाहरण हैं जो अब राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में सुरक्षित हैं। इनमें देवदारु के एक काष्ठ-स्तंभ पर, जो लगभग ९वीं शती ई० का है, एक पूर्ण पुरुषाकृति के साथ-साथ मकर-बल्लरी और नाग-वेष्टित पूर्णघट का सुन्दर चित्रण है। शीशम के काष्ठ-कपाटों (लगभग १३वीं-१४वीं शती ई०) पर उमा-महेश, लक्ष्मीनारायण के साथ व्यालाकृतियों सहित कीर्तिमुखों का उत्तर-मध्यकालीन शिल्प जीवंत हो उठा है।[१] ज्ञात होता है कि विशेषतः देवी की दारु-मूर्तियाँ बनाने का यहाँ भी प्रचलन था। इस प्रदेश में बहु-मानित नन्दा-महामाया को केदारखण्ड (११०.६) में 'दारु मूर्तिसमासीना' कहा गया है। देवी की दारु-प्रतिमाएँ आज भी पूजित होती हैं जिन्हें स्थानीय बोली में 'देवी-का-परस' कहते हैं।

निःसन्देह श्रेष्ठतम हिमालय- शिल्प प्रस्तर पर उत्कीर्ण है, सर्वथा स्थानीय प्रस्तर पर। गढ़वाल में ताड़केश्वर महादेव की मूर्तियाँ उस प्रस्तर से निर्मित हैं जो उसी पर्वत-श्रेणी पर उपलब्ध है। कुमाऊँ में द्वाराहाट का देवालय-स्थापत्य भी स्थानीय बालुकाश्म से निर्मित है। प्रधानतः मन्द हरित शिष्ट अथवा धूसर वर्ण स्थानीय बालुकाश्म का प्रयोग कला-कृतियों के निर्माण के लिए किया गया। 'शिष्ट' प्रस्तर पर बज्रलेप की ओप देकर शिल्पियों ने 'मध्य-हिमाद्रि शैली' का स्वतंत्र विकास किया। अपवाद रूप में, जोशीमठ से नातिदूर तपोवन की महिषमर्दिनीदुर्गा और खला गाँव की त्रिपुरबालासुन्दरीदेवी क्रमशः श्वेत तथा लोहित स्थानीय स्फटिक से निर्मित हुई हैं। भरत मंदिर ऋषिकेश की यक्ष-यक्षी और मोरध्वज की प्रतिमाएँ भी अपवाद हैं जिनके लिए मथुरा के लाल प्रस्तर का प्रयोग हुआ है। लोहित बालुकाश्म की मूर्तियाँ मात्र हिमालय की तराई में मिली हैं।

३.

वर्गीकरण

मध्य- हिमालय में उपलब्ध मूर्ति-शिल्प का वर्गीकरण विभिन्न कालों में कला-शैली में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आये परिवर्तनों के अनुसार भी कर सकते हैं। यथा-आद्य-शिल्प, क्लासिकल - शिल्प, रीतिवादी शिल्प, इत्यादि। परन्तु, यह वर्गीकरण 'सौन्दर्य और आकर्षण' का मूल्यांकन भले ही करे, इससे किसी प्रदेश अथवा जन विशेष के साँस्कृतिक-धार्मिक विचारों के अध्ययन का अवसर नहीं मिलता है। अतएव इस शिल्प के वर्गीकरण के लिए हम उसकी 'विषय-वस्तु' को आधार मान सकते हैं। और, शिल्प की यह विषय-वस्तु है धर्म। हिमालय के कला-प्रतीकों की सम्यक् व्याख्या के लिए, यहाँ उपलब्ध देव-मूर्तियों को ब्राह्मण, बौद्ध और जैन तीन प्रधान धार्मिक वर्गों में बाँटना लाभकारी है।

४.
उत्स

पहाड़ी मूर्ति-शिल्प का उत्स पहाड़ है, स्थानीय प्रस्तर के प्रयोग में ही नहीं, अपनी विषयवस्तु और मौलिकता में भी। इस मूर्तिकला का विकास,, वास्तुग्रन्थों के परम्परागत सिद्धान्तों पर, विशिष्ट कला-केन्द्रों पर साकार हुआ। यह तथ्य सुस्पष्ट है कि मोरध्वज, लाखामण्डल, गोपेश्वर, जागेश्वर, इत्यादि स्थान मध्य हिमालय में महत्वपूर्ण कला-केन्द्र थे। प्रत्येक कला-केन्द्र की अपनी कुछ विशेषताएँ थीं। उदाहरणार्थ, जागेश्वर के कलाकार 'पूर्णघट' के अङ्कन में अधिक अनुराग दिखाते थे। यह उसी कला-केन्द्र के शिल्पियों का प्रभाव था कि निकट ही कटारमल्ल के मन्दिरों की भूषा में भी 'पूर्णघट' का उत्कीर्णन बहुशः हुआ है।

५.
उद्‌भव

'उत्तराखण्ड' हिमालय में प्रस्तर शिल्पकला का उद्‌भव प्रथम शताब्दी विक्रमी के आसपास में ही हो चुका था। मोरध्वज, पाण्डुवाला, सेनापानी, इत्यादि हिमालय-तराई के स्थलों में इसी काल के आसपास अथवा इससे पूर्वकालीन ईंटों से निर्मित बौद्ध- स्तूपों के पुरावशेष प्राप्त हुए हैं (चित्र-५)। शिव मन्दिर वीरभद्र (ऋषिकेश) की इष्टकाएँ उत्तर-कुषाणकालीन हैं। यतः पूजा -वास्तु के निर्माण के लिए पक्वेष्टकाओं का प्रयोग यहाँ विक्रमी की प्रथम शती से लेकर आरम्भिक गुप्तकाल तक होता रहा। अतः इन स्तूपों और मन्दिरों को प्राणवान् बनानेवाली प्रतिमाएँ भी उतनी ही प्राचीन रही होंगी। इन पुरातत्वीय साक्ष्यों के अतिरिक्त, नये सर्वेक्षणों से प्राप्त शिल्प-कृतियाँ भी प्रमाणित करती हैं कि प्रस्तर-मूर्तिकला का स्पष्ट विकास मध्य- हिमालय में प्राक्-गुप्तकाल से ही हो चुका था। भरत मन्दिर की महाकाय यक्ष-यक्षी मूर्तियाँ (चित्र - ६) और गोपेश्वर- संग्रह में लम्बा भारी कञ्चुकधारी सूर्य तथा कुछ अन्य मूर्तियाँ पूर्व-गुप्तकालीन हैं। गोपेश्वर, लाखामण्डल और बिनसर की शिश्नाकार आरम्भिक निष्कल लिंग- मूर्तियाँ भी इसी काल की हैं। एक

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महत्वपूर्ण पाषाण विष्णु-मूर्ति केदारनाथ के पास त्रियुगीनारायण के प्रधान मन्दिर से मिली है। इस स्थानक मूर्ति के अधोपार्श्व में अंकित 'देवधर्म्मः अर्क्कवर्म्मणः' अभिलेख की लिपि निश्चय ही तृतीय शती ईसवी अन्त की है। इस प्रकार, यह मूर्ति भी उक्त वर्णित प्राक्-गुप्तकालीन प्राचीन मूर्तियों में से एक है। पिण्डर-घाटी के कोबगाँव की नागराज-प्रतिमा भी इसी काल के आसपास की मानी जाती है।

६.
विकास

गुप्तकाल और उत्तर- **गुप्तकाल** में प्रस्तर मूर्ति- शिल्प की सक्रियता यहाँ तरुणाई की ओर बढ़ी, अपनी समस्त कमनीयता और लावण्य के सहित। गुरुकुल काँगड़ी संग्रहालय (हरिद्वार) का बुद्ध- शीर्ष मथुरा के लाल प्रस्तर का बना है। कुञ्चित केश तथा अर्द्धउन्मीलित नेत्रों की गुप्तकालीन कला इसमें स्पष्ट है। इसी प्रकार, लाखामण्डल की कुछ प्रतिमाएँ और नकुलेश्वर (पिथौरागढ़) की विष्णुमूर्ति गुप्तकालीन कलाकारों द्वारा उकेरी गयी हैं। बिनसर मन्दिर (गढ़वाल) का एकमुख लिंग, पलेठी की वैकुण्ठविष्णुमूर्ति (चित्र १५), चमाल गाँव (टिहरी गढ़वाल) की गरुडवाहन विष्णुमूर्ति (चित्र १६), चण्डी मन्दिर गोपेश्वर की कलशधारिणी गङ्गा और रुद्रनाथ (चमोली गढ़वाल) की अनन्तशायी विष्णुमूर्ति (चित्र १७) उत्तर- गुप्तकाल की उत्कृष्ट शिल्पकृतियाँ हैं। रुद्रनाथ के भव्य अनन्तशायीविष्णु ध्यानस्थ एकार्णव जल के मध्य आदिशेष पर शयनमुद्रा में चित्रित हैं। शेष का पंचभोग सिर पर छत्र बना है। कला-उत्कृष्टता में देवगढ़ की शेषशायी-मूर्ति जैसी कुछ सुन्दर मूर्तियाँ भी इसकी समता नहीं कर सक्तीं। "रूपायन में अनुपात, छन्द, तरलता और भव्यता तथा अङ्कन में गहराई जो इसमें है, वह अन्यत्र दुर्लभ ही है।"

पूर्व- मध्यकालीन हिमालय प्रस्तर-शिल्प ने भारतीय कला को अधिक समृद्ध किया। लाखामण्डल-संग्रह की तपरता पार्वती, उमा-महेश्वर, त्रिपुरान्तक-शिव और कुबेर; गोपेश्वर के धर्मचक्रप्रवर्तन-मुद्रा में बुद्ध और वीणाधर-दक्षिणामूर्तिः देवलगढ़ के स्थानक विष्णु और विशाल पक्ष गरुड; भानुमन्दिर पलेठी के चुस्त कञ्चुक और सनाल पद्ममुकुलधारी सूर्य (चित्र १८) आठवीं-नवीं शती ईसवी की प्रतिनिधि प्रतिमाओं में गिनी जा सकती हैं।

पाषाण पर मूर्तन की सर्जना अधिक वेग से **मध्यकाल** में अवतरित हुई। कटारमल्ल की प्रधान आसन सूर्यमूर्ति, आदिबदरी की अलंकृत शिरश्चक्रयुक्त प्रधान विष्णुमूर्ति, गौरी मन्दिर उरगम की षोडश सह-आकृतियों से संकुल सूर्यमूर्ति, बिलेश्वर की अनुचरों से संयुक्त उमामहेश्वर मूर्ति, गोपेश्वर की वीणाधर-नटराजमूर्ति, मध्यमेश्वर की **हैमवती** - पार्वती बारहवीं शती ईसवी के आसपास की कुछ प्रतिनिधि कला- कृतियाँ हैं

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिनमें रीतिवादी समस्त विशेषताएँ प्रकट हुई हैं।

यह है उस मूर्ति-शिल्प का एक विहंगम सर्वेक्षण, जिसमें ब्राह्मण देवमण्डल प्रधान रूप से शिल्प का विषय बना। इन देव-मूर्तियों के 'विस्तृत' विवेचन द्वारा ही हिमालय कला-सम्पदा का समुचित मूल्यांकन हो सकता है और उस कला की बहु-आयामीय शक्ति आँकी जा सकती है। अनसूया मन्दिर की उमामहेश मूर्ति, चण्डीमन्दिर गोपेश्वर की द्वादशभुजा चण्डिका, बैजनाथ की पार्वती ऐसी ही अद्वितीय शिल्प-कृतियाँ हैं जिनमें क्रमशः शिल्पियों द्वारा गहराई से उकेरकर ओप देने की क्षमता, मुखमण्डल पर दैवीभव्यता लाने की कुशलता और नारी रूप में शक्ति को सँवारने की कला अपने चरम रूप में प्रकट हुई है। भिल्लांगना-घाटी की 'महामाया', बिनसर मन्दिर की 'स्कन्दमाता' (चित्र २१) शिव मन्दिर पैठाणी की संश्लिष्ट रूप 'हरिहर'- प्रतिमा, लालढाँग की विशाल 'पंचायतन लिंगमूर्ति' और चमाल गाँव की आसन ' विष्णु प्रतिमा' हिमालय की ऐसी विरल प्रस्तर मूर्तियाँ हैं जिनमें शक्ति और शिव के विविध रूपों का मूर्तन है, अपनी समस्त सादगी में विष्णु के आरम्भिक रूप का अङ्कन है, हिमालय-शिल्पियों की मौलिकता है तथा पर्वतीय वेश-भूषा का प्रभाव है।

७.
विषय

पुराणों में 'देवभूमि' नाम से विख्यात मध्य- हिमालय में शिल्प- कला का **प्रधान विषय** ब्राह्मण देवमण्डल रहा। कारण इसका स्पष्ट है। हिन्दू धर्म के शैव, वैष्णव और शाक्त तीनों सम्प्रदाय यहाँ पल्लवित ही नहीं हुए, उनके अनेक मत और सिद्धांत यहीं उद्भूत भी हुए हैं। अतएव देवभूमि की जनाकाँक्षा से प्रेरित शिल्पियों ने अगणित देवमन्दिर यहाँ निर्मित किये, अगणित देवमूर्तियाँ यहाँ उकेरीं। तथापि इससे यह समझना भूल होगी कि ब्राह्मणेतर प्रभाव हिमालय में कभी रहा ही नहीं। इतिहास के पृष्ठ इस बात के साक्षी हैं कि हिमवन्त में बौद्ध थेर भी धर्म प्रचार के लिए आये थे। हिमवन्त प्रियदर्शी राजा अशोक का अन्त-राज्य था जहाँ कालसी (देहरादून जनपद) में उसने अपने धर्मलेख खुदवाये थे। उत्तर में सीमा से लगे बौद्धधर्मी भोट देश का इन पहाड़ों से अविरल सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा। इन प्रभावों का ही प्रतिफल है कि हिमालय के दक्षिणवर्ती पाद- प्रदेश में ईसवी की प्रारम्भिक शतियों के आस- पास का और समस्त पहाड़ में सातवीं से दशवीं शती ईसवी का बौद्ध- शिल्प (चित्र ४,५,२०) भी प्रचुर मात्रा में मिला है। हमें ज्ञात है, बारहवीं शती ईसवी के अन्तिम दशकों से लेकर तेरहवीं शती के प्रथम चतुर्थांश तक भी केदारभूमि पर्यन्त यह प्रदेश पश्चिमी नेपाल के बौद्ध राजाओं द्वारा आक्रांत रहा। उनके प्रभाव की उपेक्षा नही की जा सकती। हिमालय के पाद- प्रदेश का बौद्ध- शिल्प मुख्यतः मथुरा के लाल प्रस्तर का है, तो पहाड़ों का सर्वथा स्थानीय प्रस्तर का। पाद- प्रदेश के बौद्ध शिल्प- पुरावशेष सेनापानी, मोरध्वज और अन्यत्र से मिले हैं तो उससे उत्तर में स्थित

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पहाड़ के गोपेश्वर, बागेश्वर, तुङ्गनाथ, माणा, नाला, उत्तरकाशी, इत्यादि स्थलों से।

उत्तर- मध्यकाल के आरम्भ में स्थानीय कुछ शासकों की जैन धर्म में भी अनुरक्ति रही। फलस्वरूप मध्य-हिमलाय में जैन प्रतिमाएँ भी उकेरी गयीं। भले ही उनकी संख्या नगण्य है। कुमाऊँ में द्वाराहाट, नैनीताल, जागेश्वर और पिल्ख से तथा हरिद्वार के समीप काँगड़ी और आमस्रोत से मिली जैन प्रतिमाएँ विद्वानों को पहले से ज्ञात हैं। हाल में गौरा मंदिर देवलगढ· (गढ़वाल) तथा त्रिनेत्रेश्वर मन्दिर बमण-सुयाल (अलमोड़ा) से भी दो तीर्थंकर मूर्तियाँ मिली हैं।

८.
अलङ्कार

मध्य- हिमालयीय शिल्प- निधि में ब्राह्मण, बौद्ध और जैन देवमूर्तियाँ तो हैं ही, वह समस्त अलङ्करण शिल्प भी सम्मिलित है जिसके द्वारा देवालयों और प्रतिमाओं की भूषा की गयी है। कला में पूर्णता और समृद्धि का मङ्गल - प्रतीक 'पूर्णघट' ऐसा ही अलंकरण अभिप्राय है, जिसका पहले वर्णन कर चुके हैं (चित्र २३)। कीर्तिमुख भद्रमुख, कल्पवल्ली, नाग- मिथुन (चित्र २ ४) आदि नाना अभिप्रायों का भी हिमालय - शिल्प में यथास्थान सुन्दर चित्रण है। मन्दिरों की शुकनास को मण्डित करता 'गजसिंह' अभिप्राय तो मध्य - हिमाद्रि वास्तुकला की एक प्रधान विशेषता है (चित्र २)। इन सम्पूर्ण अलंकरण- अभिप्रायों ने हिमालयीय शिल्प को सौन्दर्य दिया, और सबसे बढ़कर, उसे गहनतर दार्शनिक अर्थ की शक्ति दी, यह हम पूर्व ही बता चुके हैं।

९.
उपसँहार

मध्य- हिमालयीय शिल्प के अध्ययन के विना भारतीय कला का अनुशीलन अधूरा ही रहेगा। आञ्चलिक संस्कृति एवं सभ्यता के मूल्यांकन के लिए भी इसका विवेचन आवश्यक है। परन्तु हमारी उपेक्षा से यह शिल्प- निधि विनाश के क्रूर हाथों में पड़ी है। आज आवश्यकता है, निष्ठापूर्ण प्रयासों से, समय पर इस निधि के परिरक्षण की।[2]

सन्दर्भ

१. अग्रवाल, र० चं०, "अनपब्लिश्ड कटारमल वुडन रिलीफ्स इन दि नेशनल म्यूजियम, न्यू दिल्ली" **ईस्ट एण्ड वेस्ट**, न्यू सिरीज, खण्ड १७- संख्या १-२, मार्च-जून १९६७, रोम, पृं० ८३-९५।

२. 'देवालय-वास्तुकला' एवं 'मूर्ति-शिल्प' का विस्तृत अध्ययन **मध्य-हिमालय के द्वितीय खण्ड** में द्रष्टव्य है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सप्तम अध्याय

सूर्योपासना तथा सूर्य-देवालय

१

सूर्योपासना की प्राचीनता

१. **पुरातत्त्वीय प्रमाण**

मध्य हिमालय के शैव-शाक्त-वैष्णव समस्त प्राचीन देवालयों में अन्य देवमूर्तियों के साथ **सूर्य-मूर्तियाँ** भी बहुसंख्या में मिलती हैं; अर्चा-प्रतिमा तथा पार्श्व-देवता दोनों रूपों में। लक्षणों के आधार पर, ढीले एवं भारी कञ्चुकधारी गोपेश्वर-संग्रह की सूर्य-प्रतिमा को यदि प्राक्-गुप्तकालीन मान सकते हैं तो पद्मुकुलधारी पलेठी की प्रधान अर्चा-प्रतिमा (चित्र १८) को छठी-सातवीं शती ईसवी की। गौरी-मन्दिर उरगम, अनसूयामन्दिर सिरोली, आदि स्थलों की फुल्लपद्मपाणि स्थानक प्रतिमाएँ और कटारमल्ल की भव्य आसन प्रतिमा निश्चिततः बारहवीं शती ईसवी की हैं। इस प्रकार, इस अञ्चल में विभिन्न कालों की सूर्य-प्रतिमाएँ (चित्र - १९) तो बहुशः उपलब्ध हुई हैं, परन्तु शिव-शक्ति-विष्णु के देवालयों की तुलना में सूर्य के **स्वतन्त्र देवालय** अल्पसंख्यक ही हैं। वास्तव में, सूर्य के प्रख्यात स्वतन्त्र मन्दिर आज केवल दो ही स्थलों पर विद्यमान हैं - पलेठी तथा कटारमल्ल।[१] पिथौरागढ़ जनपद में मढ़, बेलोर, सुई और दुगई-आगर में भी सूर्य के स्वतन्त्र मन्दिरों के होने की सूचना मिली है। दुगई-आगर का सूर्य मन्दिर इस प्रदेश में इष्टका-निर्मित होने से महत्वपूर्ण है। अनुश्रुति है कि 'गुणादित्य' की सूर्यमूर्ति (सम्प्रति अलमोड़ा संग्रहालय में, रेखाचित्र-६) की पूजा पहले अलमोड़ा जनपद के सूरी ग्राम में होती थी। इसका तात्पर्य यह हुआ कि कभी सूरी ग्राम भी सूर्य-पूजा का एक प्रधान स्थल था। मेरा अनुमान है कि सूरी ग्राम में 'सूर' वा 'शौरि' नामक सूर्य की पूजा होती थी। सूर्य के नाम 'सूर' तथा 'शौरि' प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में मिलते हैं। धौम्य द्वारा वर्णित सूर्य के अष्टोत्तरशत

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नामों में से एक नाम 'शौरि' निर्दिष्ट है (महाभारत, आरण्यकपर्व, ३.२० _ परडी संस्करण)। अल्मोड़ा जनपद के आदित्यथान में भी एक स्वतन्त्र मन्दिर रहा होगा। परिवार-मन्दिरों के रूप में भी अनेक सूर्य मन्दिर यहाँ निर्मित हुए। उदाहरणार्थ, जोशीमठ का सूर्यनारायण-मन्दिर (अब मूर्ति-शून्य है) वासुदेव विष्णु के परिवार-मन्दिर के रूप में, तथा सुमाड़ी का सूर्य मन्दिर देवी के परिवार-मन्दिर के रूप में निर्मित हुए हैं।

रेखाचित्र - ६. गुणादित्य.

पालो, ज. अलमोड़ा. सम्प्रति अलमोड़ा - संग्रहालय में.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अभिलेख भी इस प्रदेश में सूर्योपासना की प्राचीनता प्रमाणित करते हैं। पलेठी के प्रारम्भकालीन सूर्य मन्दिर में उपलब्ध कल्याणवर्म्मन् के शिलाभिलेख (लग० सप्तम शती ई०) के आरम्भ में 'सविता' का ध्यान किया गया है। इसी प्रकार, प०म०प० ललितशूरदेव के कण्डारा ताम्रपत्राभिलेख (नवम शती ई० का मध्य) में 'अर्क्कस्थल' में अवस्थित आदित्य भगवान् के एक प्रख्यात देवालय का उल्लेख है जिसके लिए उस प्रतापी नरेश ने दान दिया था।

२. साहित्यिक प्रमाण

केदारखण्ड में दो प्रख्यात सौर-स्थलों का उल्लेख है : प्रथम, भुवनेश्वरीपीठ के समीप भागीरथी के पश्चिम तीर पर 'भाष्करक्षेत्र' (अ०, १४१ तथा १४८), और द्वितीय, मन्दाकिनी एवं अलसतरंगिणी (वर्तमान लस्तर) के संगम पर 'सूर्यप्रयाग' (अ०, १६४)। 'भाष्करक्षेत्र' की एकता लेखक ने टिहरी गढ़वाल के बनगढ़ क्षेत्र में वर्तमान पलेठी से की है। इस ग्रन्थ के रचनाकाल में 'सूर्यप्रयाग' में एक स्वतन्त्र सूर्य मन्दिर रहा होगा इसमें कोई संदेह नहीं। मानसखण्ड (अ०, ३८) में कौशिकी (वर्तमान कोशी) के दक्षिणपार्श्ववर्ती 'बडादित्य' नामक एक तृतीय प्रसिद्ध सूर्य-देवालय का वर्णन है। यह बात नहीं है कि इन दो ग्रन्थों के रचनाकाल में गढ़वाल-कुमाऊँ तथा उसके पासपड़ोस के हिमालय में अन्य सूर्य-स्थल न रहे हों। ऐसे स्थल अनेक थे, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इन ग्रन्थकर्ताओं को शिव-शक्ति के स्थलों को ही विशेषरूपेण वर्णित करना अभिप्रेत था।

३. परम्परागत पूजा प्रमाण

मध्य हिमालय में सूर्योपासना के परम्परागत विविध रूपों के दर्शन होते हैं। उदाहरणार्थ, 'नवग्रहपूजन' के प्रमाण कला में ही नहीं, किसी भी शुभ संस्कार के अवसर पर होने वाले पूजाकृत्य में भी देखे जा सकते हैं। सूर्योपासना का दूसरा रूप यहाँ भी 'पञ्चदेवोपासना' अथवा पञ्चायतन-पूजा रही है। इस अञ्चल के स्थापत्य में पञ्चायतन देवालय प्रारम्भ से ही निर्मित होते रहे। बजिंग एवं पैठाणी के प्रारम्भिक तथा द्यूराड़ीदेवी, पाख, आदि के मध्यकालीन पञ्चायतन देवालयों में सूर्य-पूजा भी होती थी। एक समय, मध्यकाल से पूर्व ही, स्मार्त सम्प्रदाय के अन्तर्गत पञ्चदेवोपासना यहाँ भी जनमानस का लोकप्रिय धर्म बन गया था। ताम्रपत्राभिलेखों में अयन, सङ्क्रान्ति, विषवयोग तथा रविवार की तिथियों में दान के प्रभूत उल्लेख मिलते हैं। ये समस्त सूर्य-पूजा की ही तिथियाँ हैं। इन प्रमाणों के अतिरिक्त, ओंकारोपासना, गायत्री-जप (वैदिक गायत्री), सौरसाम-पाठ तथा सूर्यार्घ्य प्राचीनकाल से यहाँ भी लोकप्रचलित रहे हैं।

उक्त प्रमाणों के आधार पर, कला-समीक्षकों का यह कथन सारहीन हो जाता है कि "सूर्य की पूजा इधर (उत्तराखण्ड में) बहुत कम मिलती है। कटारमल्ल का सूर्य मन्दिर अपवाद स्वरूप ही है।"[२]

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२.

दो प्रख्यात सूर्य देवालय

१. पलेठी का सूर्य देवालय

१. **वास्तु (चित्र-१२)**

देवप्रयाग से नातिदूर भागीरथी के वायें तट पर, पलेठी ग्राम का भानुमन्दिर आकार में लघु होते हुए, आरम्भकालीन है तथा मध्य हिमालय के प्राचीनतम देवालयों में से एक है। पिढ़ा-शिखर अथवा फाँसणा वर्ग के इस प्रस्तर प्रासाद की **तलछन्द** - योजना में दो भाग हैं: वर्गाकार गर्भगृह (बाह्यतः ३.२४ तथा आभ्यन्तरतः १.७२ मीटर) और अन्तराल (0.८६ मी0 आगे की ओर प्रक्षिप्त)। **ऊर्ध्वछन्द**-योजना में प्रायः ७.५ मीटर ऊँचे प्रासाद के 'वेदीबन्ध', सादी 'कटि', बारह क्षैतिज पट्टियों से युक्त पिढ़ा 'शिखर' तथा स-ग्रीवा आमलकशिला - मण्डित 'शीर्ष' - चार अङ्ग हैं। आमलकशिला सम्प्रति कलश-विहीन है।

अन्तराल में खुलनेवाला प्रागमुख प्रवेश 'द्वार' गुप्तोत्तरकालीन शिल्पियों के कुशल हाथों की अनुपम रचना है। वास्तुमान के अनुरूप इसकी चौड़ाई-ऊँचाई का अनुपात १:२ है। प्रवेश-द्वार के अधोभाग में दोनों ओर पद्महस्ता गङ्गा- यमुना देवियाँ, उनके ऊपर लतापर्ण, पुष्प एवं कल्पवल्लरी - भूषित त्रि-शाखाएँ तथा उपरिभाग में दो अतिरिक्त शाखाएँ चित्रित हैं। अतिरिक्त शाखाओं में से हंस-युक्त शाखा तो कल्पवल्लरी-शाखा के नीचे है, परन्तु ग्रासमुख-शाखा कल्पवल्लरी - शाखा से ऊपर, त्रि-शाखा की सीमाङ्कन करती मनका-माला से भी बाहर, द्वार के सर्वोपरिभाग को मण्डित करती है। इस ग्रासमुख-शाखा में, पुष्पों से प्रस्फुटित मुक्तामालाओं को उनके दोनों ओर निर्मित ग्रासमुख अपने मुखों में लिये हैं। हंस-युक्त शाखा के सिरदल के भार को दोनों छोरों पर बने दो कीचक मानो अपने हाथों पर संभाले हैं। द्वार के पार्श्वद्वय में, मनकामाला के बाहर, लघु कोष्ठों से झाँकते, मानों अमंगल का अपसारण करते, दो ग्रासमुख भी चित्रित हैं।

इस अत्यन्त अलङ्कृत द्वार के उपरिभाग में, कपिलि के निम्नतम दो पिढ़ों की भूषा चैत्यगवाक्ष-रूप 'कुडु' अभिप्रायों से की गयी है। इन भूषित दो पिढ़ों के ऊपर, कपिलि का दूसरा अलङ्कृत अंग शुकनास का 'चैत्यगवाक्ष' है। विभिन्न अभिप्रायों से अलङ्कृत यह चैत्यगवाक्ष - प्रस्तरपट्ट तो आज अपने मूल स्थान से नीचे गिर चुका है। उसके मध्यभाग को शोभित करता वह चौकोर फलक भी पृथक् हो चुका है जिस पर सप्ताश्वरथसूर्य - बिम्ब भव्य रूप में रचित है। इसमें पद्ममुकुलधारी सूर्यदेव के चतुर्दिक ज्वाला - वलय का निरूपण अपूर्व है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गर्भगृह की भित्तियाँ सादी हैं तथा उसका वितान भी कोष्ठक - रहित, समतल तथा सादा निर्मित है। एक ऊँची पीठिका पर सूर्यदेव की विशाल अर्चा - प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

२. शिल्प

भानुमन्दिर के गर्भगृह में, लगभग ५३ सेमी. ऊँची पीठिका पर, १०२ सेमी. ऊँची सूर्य (चित्र-१८) की समपादस्थानक पाषाण प्रतिमा उदीच्य वेश में प्रतिष्ठित है। हस्तद्वय में कमल - कलिका (पद्ममुकुल) का अङ्कन विशेष उल्लेखनीय है जो त्रियुगीनारायण, बमन - सुआल तथा कुछ अन्य स्थलों की सूर्य-मूर्तियों में भी मिलता है। इसी प्रकार, मथुरा - संग्रहालय की एक कुषाणकालीन सूर्य मूर्ति (संख्या १२.२६९) के दक्षिण हस्त में भी पद्ममुकुल धारण है। यह स्पष्टतः आरम्भकालीन विशेषता मानी जाती है। परन्तु आपाद चोलकयुक्त इस सूर्यप्रतिमा में आरम्भकालीन सादगी विद्यमान होते हुए, विकास के कुछ तत्त्व नये झलक रहे हैं।

शुकनास के मध्यभाग को मण्डित करता सप्ताश्वरथारूढसूर्य - बिम्ब अपनी विशिष्टताओं के कारण मध्य हिमालयीय सूर्य-प्रतिमाओं में विरल है। इसमें भी अनुचर-सेवित द्विहस्त सूर्यदेव उदीच्य वेश में पद्ममुकुलधारी चित्रित हैं। प्रभामण्डल के बाहर, ज्वाला-वलय का अङ्कन इसमें एक नवीन विशेषता है जो इस सम्पूर्ण स्थापत्य को आरम्भकालीन प्रमाणित ही नहीं करता अपितु सूर्य के एक नाम 'तेजोराशि' को भी सार्थक करता है। विवेच्य सूर्यबिम्ब - फलक का महत्व एक अन्य तथ्य के स्पष्टीकरण के लिए भी है कि यही देवालय निश्चिततः सूर्यदेव को समर्पित था। नहीं तो पिढ़ाशिखर वर्गीय इस लघु आकार के देवालय को भानु का प्रधान देवालय मानने में शंकाएँ सामने आ सकती थीं।

सम्प्रति गर्भगृह में सुरक्षित एक वैकुण्ठमूर्ति (६७ सेमी. ऊँची) भानु मन्दिर के स्थापत्य से उत्तरकालीन प्रतीत होती है। जबकि इसके पृष्ठभाग के एक ध्वस्त देवालय से प्राप्त दूसरी वैकुण्ठविष्णु मूर्ति (७७ x ३७ सेमी.) इससे पूर्ववर्ती ही नहीं अधिक कलात्मक भी है (चित्र-१५)। हस्ततल में पद्म प्रतीक का अङ्कन, प्रभामण्डल की सज्जा एवं अन्य सादगी से दूसरी प्रतिमा पलेठी समुच्चय के आरम्भकालीन देवालयों की प्रायः समकालीन है। दोनों प्रतिमाओं में महाविष्णु का अग्र दक्षिण पद्म - हस्त वरदमुद्रा में है। दोनों एक ही परम्परा में रचित प्रतीत होती हैं। इनकी उपलब्धि से विदित होता है कि सातवीं-आठवीं से लेकर दसवीं - ग्यारहवीं शती ईसवी तक पाञ्चरात्र भावना भी यहाँ लोकप्रिय रही।

पलेठी-शिलालेखों में उल्लिखित है कि भानुमन्दिर का निर्माण प०म० कल्याणवर्म्मा ने किया था। अतएव भानुमन्दिर का रचना-काल, इस स्थल पर उपलब्ध शिलालेखों की लिपि के आधार पर, सातवीं शती ईसवी में कभी निश्चित किया जा सकता है। स्थापत्य शैली के आधार

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर भी फ्लेठी - समुच्चय के मन्दरों का काल निश्चिततः आरम्भकालीन है।

२. कटारमल्ल का बडादित्य देवालय

१. सामान्य परिचय

अल्मोड़ा नगर से प्रायः १४ किमी. पश्चिम में, पट्टी तला तिखोन में कटारमल्ल ग्राम अवस्थित है। यहाँ का प्राचीन सूर्य देवालय 'बडादित्य' के नाम से प्रख्यात है। **मानसखण्ड** में भी बडादित्य को कौशिकी के दक्षिण पार्श्व में प्रतिष्ठित बताया गया है। इस ग्रन्थ में 'बडादित्य' की व्याख्या 'वटशिलामध्ये बडादित्येति गीयते' अर्थात्, वटवृक्ष से सम्बद्ध आदित्य की गयी है। परन्तु पुराणों में स्थान-नामों की व्याख्या में बहुधा जिस प्रकार आख्यान कल्पित किये गये हैं, यही बात 'बडादित्य' की इस व्याख्या पर भी लागू होती है। वस्तुतः वैदिक संहिताओं में सूर्योपस्थान के मन्त्रों में 'बडादित्य' शब्द का प्रयोग मिलता है। ऋक्संहिता (८.१०१.१२) का मन्त्र है: बट्सूर्य अवसा महा२ असि सत्रादेव महा५ँअसि। सायण-भाष्य में यहाँ 'बट्' को 'सत्यम्' कहा है- "हे सूर्य त्वं श्रवसा श्रवणेन महान् सर्वाधिक : असि बट्सत्यम्"। महीधर, उव्वट, आदि भाष्यकारों ने उन स्थलों पर इस शब्द की सन्धि 'बट्+आदित्य' की है तथा 'बट्' शब्द का अर्थ 'सत्य' माना है,[3] जो सर्वथा संगत है।

फ्लेठी के मूल सूर्य देवालय - निर्माण के चार-पाँच शतकोपरान्त, 'बडादित्य' नामक हिमाद्रि-शैली का दूसरा विशाल सूर्य देवालय निर्मित हुआ । इसके निर्माणोपरान्त इसके परिसर में अनेक परिवार- मन्दिरों का निर्माण आगे प्रायः दो शतियों तक होता रहा। इस सुविस्तृत मन्दिर - समुच्चय में प्रधान मन्दिर के अतिरिक्त, ५४ परिवार-मन्दिर विद्यमान हैं। मन्दिर-समुच्चय के उत्तर में कटारमल्ल नामक जो ग्राम विकसित हुआ उसमें अधिकांश बेलवाल जाति के लोग निवास करते हैं। यही लोग परम्परागत रूप से इस देवालय के पूजक हैं। मन्दिर-निर्माण काल से ही बेल (सूर्य) के पूजक होने के कारण उनका यह नाम पड़ गया। सर्वथा उसी प्रकार जैसे अलमोड़ा जनपद के सूरी ग्राम में 'शौरि' की पूजक जाति का नाम 'शूरी' पड़ गया था। किसी भी प्रख्यात देवालय की भाँति, प्रतीत होता है, बडादित्य भी स्वयं में एक संस्था थी जहाँ पौष मास के शनिवार की रात्रि में मेला जुड़ता था, दूसरे दिन रविवार को विशेष पूजार्चन होता था और देवदासी-प्रथा प्रचलित थी।

बडादित्य के प्रख्यात देवालय के निर्माता कौन थे, इस विषय पर लिखित इतिहास मौन है। अनुमान है कि कुमाऊँ के मध्यकालीन कत्यूरी राजा कटारमल्लदेव ने इसका निर्माण किया था। रजबार अस्कोट की कत्यूरी-वंशावली के अनुसार वह इस राजवंश का ३३ वाँ राजा था, परन्तु डोटी की वंशावली के अनुसार २२ वाँ राजा। दोनों वंशावलियों में उसे बासन्तिदेव का पुत्र बताया गया है। कहा जाता है कि कुमाऊँ के कत्यूरी राजा भी, पञ्चाल के मित्र राजाओं की भाँति, आदित्य-भक्त थे। इस मन्दिर - समुच्चय में यत्र-तत्र चौदहवीं - पन्द्रहवीं शती विक्रमी के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जो नागरी-लेख मिलते हैं, उनसे विदित होता है कि इनसे प्रायः दो शती पूर्व ही वर्तमान सूर्य देवालय का निर्माण हो चुका था। श्री कृष्णदत्त बाजपेयी का कथन संगत है कि ' मुख्य मन्दिर का प्रारम्भिक रचना-काल ईसवी बारहवीं शताब्दी कहा जा सकता है, क्योंकि प्रधान सूर्य-मूर्ति इसी समय की कृति है।'

२. वास्तु

बडादित्य का देवालय उत्तर-मध्यकालीन हिमाद्रि-शैली का विशालाकार मन्दिर है। **तलछन्द-योजना** में 'गर्भगृह' (बाह्यतः ७.३० मीटर) और 'कपिलि' (बाह्यतः १.९० मीटर) इस त्रिरथ देवालय के मूल भाग हैं। अन्तराल के अग्रभाग में निर्मित दो मण्डप परवर्ती वृद्धियाँ दिखायी देती हैं। गर्भगृह की **ऊर्ध्वछन्द-योजना** में, 'पीठ', 'कटि', 'शिखर' और 'शीर्ष'-रचना उत्तराखण्ड के अन्य प्रधान देवालयों के समरूप है। प्रधान रथों (भद्रों) की रथिकाओं के तल की ऊँचाई तक कालान्तर में तीन ओर सुरक्षा-भित्ति बनाये जाने से पीठ की रचना ढक चुकी है। एक सादा अन्तरपत्र, कटि से शिखर को पृथक् करता है। यद्यपि शिखर दो भूमि - आमलकों के ऊपर खण्डित हो चुका है, तथापि यह अनुमान सहज में ही किया जा सकता है कि कम-से-कम पङ्चभूमिक त्रिरथ-शिखर की विशाल आमलक-शिला को काष्ठ-छत्र (Wooden Canopy) द्वारा छादित किया गया होगा। जैसा कि मध्य-हिमालय के अन्य प्रधान मन्दिरों की शैली है। पुनः, काष्ठ-छत्र के ऊपर रहा होगा उच्च एवं भव्य कलश। अन्तराल के शीर्ष पर, शुकनासा का 'गजसिंह' भी आज अपने स्थान पर नहीं है। गर्भगृह के मध्य में आदित्य भगवान् की पीठिका एक वर्गाकार वेदी के रूप में निर्मित है, तथा उसके चतुर्दिक उपासकों के लिए 'भ्रमणी' बनी है। गर्भगृह का 'वितान' दो विशाल धरणों पर आधृत है, और अतिरिक्त आधार के लिए वितान के नीचे भित्तियों पर चतुर्दिक युग्म धरण-शीर्ष (double beam-heads) अभिप्राय बने हैं।

बडादित्य देवालय का द्वार पलेठी के सूर्य देवालय की भाँति प्रागमुख है इसके द्वार-कपाट, जो सम्प्रति राष्ट्रीय संग्रहालय नयी दिल्ली में प्रदर्शित हैं, अपने कलात्मक काष्ठ - शिल्प के कारण महत्वपूर्ण माने जाते हैं। तेरहवीं - चौदहवीं शती ईसवी के आसपास निर्मित इन कपाटों पर शैव-वैष्णव देवाकृतियों के अतिरिक्त, मंगलघट तथा कीर्तिमुख अभिप्रायों का सुन्दर चित्रण है। ज्ञात होता है कि कटारमल्ल के इस देवस्थल में, विद्यमान बडादित्य देवालय के निर्माण से पूर्व एक काष्ठ-प्रासाद भी था जिसका ५' १०' ऊँचा एक 'काष्ठ-स्तम्भ' यहाँ से प्राप्त हुआ है जो प्रायः नवीं शती ईसवी का है। स्तम्भ-यष्टि के उपरिभाग में नाग-वेष्टित मंगलघट अभिप्राय, और मध्यभाग में एक स्थानक देवाकृति विशेष महत्वपूर्ण है। यह 'काष्ठ-स्तम्भ' भी आज राष्ट्रीय संग्रहालय नयी-दिल्ली में प्रदर्शित है। इनके अतिरिक्त, यहाँ सुन्दरता से उकेरी गयी भण्डार-गृह की काष्ठ-रचना भी पायी गयी है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देवालय की कटि का मध्य भाग चतुर्दिक 'कुड्ड' **अलङ्करण** द्वारा, और तीनों भद्र-प्रक्षेपों की रथिकाएँ सादे उद्‌गमों ('शूरसेनों') से भूषित हैं। स्थपतियों ने कटि की एकरसता को रथकों द्वारा ही नहीं, कोणों के मध्य में एक-एक हलके 'कुड्यस्तम्भ' द्वारा भी निवारण किया है। कभी अन्तराल का उपरि अग्रभाग (facade) तीन और उसके दोनों पार्श्व एक - एक रथिका-बिम्बों द्वारा अलङ्कृत थे, परन्तु आज ये पाँचों रथिकाएँ बिम्ब - शून्य हैं। 'ललाटबिम्ब' का स्थान रिक्त छूट गया है, परन्तु द्वारोपरि भाग तीन 'तिलकों' द्वारा अलङ्कृत है।

अपने विविध रूप एवं आकार के ५४ **परिवार-मन्दिरों** के मध्य बडादित्य का देवालय, लघु श्रृङ्गमाला के मध्य हिमालय के एक उतुंग शिखर की भाँति लगता है। ये परिवार-मन्दिर अधिकांशतः रुचकवर्गीय हैं, परन्तु इनके मध्य तीन मन्दिर 'पिढा-शिखर' वर्ग के भी हैं। इनका निर्माण सोलहवीं शती ई० तक होता रहा। इनमें से अनेक मन्दिरों के द्वारों पर द्वारपाल एवं घटधारिणीदेवी चित्रित हैं। उत्तर दिशा में, वर्तमान प्रवेश-द्वार के समीप एक लघु परिवार-मन्दिर तो अत्यन्त सुन्दर निर्मित है। कभी इसकी बाह्य रथिकाएँ (niches) देव-बिम्बों से भूषित थीं। इसके स्तम्भ-द्वय का अलंकरण घटपल्लव, कीर्तिमुख और मध्य में लटकती श्रृंखला अभिप्रायों से किया गया है।

देवालय के दक्षिण में जो 'नौला' विद्यमान है उसे 'सूर्य-कुण्ड' कहते हैं। शास्त्रीय विधानानुसार, उसमें मूलतः शेषशायीनारायण की भव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित थी जो आज गर्भगृह में डाल दी गयी है। आदित्यदेव के नित्य अभिषेक हेतु इसी कुण्ड के जल का उपयोग होता था।

३. पाषाण - शिल्प

बडादित्य देवालय का पाषाण-शिल्प समग्र रूप में आज अपने स्थान पर नहीं मिलता। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण ने यहाँ की साठ मूर्तियों की संख्या दी है। मैंने १९८२ ई० में प्रथम वार जब यहाँ की यात्रा की तब आदित्यदेव की प्रधान प्रतिमा के अतिरिक्त, मात्र सोलह प्रतिमाएँ यहाँ पर थीं। शुकनास के चैत्यगवाक्ष - शिलापट्ट और अनेक परिकर-खण्ड भी यहाँ पड़े थे। गर्भगृह की इन प्रतिमाओं में सूर्यकुण्ड की प्रधान शेषशायीविष्णु- प्रतिमा (संख्या ५४) कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है। इसके अतिरिक्त, एक अन्य प्रतिमा अपने लक्षणों में विरल है जो अञ्जलिमुद्रा में हस्त में खंग धारण किये है। कभी मण्डप में विराजमान लगभग ४-५ फुट ऊँची एक विशाल धातु-प्रतिमा, जिसे स्थानीय जन पोण राजा की प्रतिमा कहते थे, बहुत समय पूर्व ही यहाँ से चुरा ली गयी थी, और आज अमरीका में है।

अवशिष्ट पाषाण - शिल्प में से भव्यतम **आदित्यदेव** की अर्चा-प्रतिमा, सौभाग्य से, सम्प्रति अपनी ध्वस्त पीठिका पर ही अवस्थित है। भूरे रंग के स्थानीय सिलेटी प्रस्तर की यह

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आसन प्रतिमा (६३ सेंटीमीटर ऊँची) कमलासन पर विराजमान है। फुल्लपद्मपाणि आदित्यदेव किरीट, ग्रैवेयक, यज्ञोपवीत तथा प्रभामण्डल से शोभित हैं। पीठिका पर सारथी अरुण तथा सप्ताश्वरथ निरूपित हैं। उभय पार्श्व में बाल-व्यजन लिये राज्ञी एवं निष्प्रभा खड़ी हैं जैसा कि अग्निपुराण (अ०, ५१) में निर्दिष्ट है। दो पार्श्व-किन्नरों के अतिरिक्त, अधोभाग में दो अन्य अनुचर, तथा आकाश में मालाधारी विद्याधरों का चित्रण है। परिकर-मण्डल में, सूर्य के अन्य स्वरूपों के सहित नवग्रहों का अंकन दर्शनीय है। आदित्य भगवान् पादाच्छन्न ('बूटधारी') हैं। उनके पैरों के नीचे मध्य में भी एक मालाधर का अंकन मिलता है। इस प्रकार, उत्तर-मध्यकालीन कला-शैली के अनुरूप, इस प्रतिमा में भी सह-आकृतियों की बहुलता सम्पूर्ण सामंजस्य के साथ प्रकट हुई है।

सन्दर्भ

१. उत्तर प्रदेश हिमालय के पश्चिम में , सतलज पर बसे गाँव निरत (हि०प्र०) का वर्तमान सूर्य-देवालय भी प्रसिद्ध है।

२. बाजपेयी, कृ०, 'कटारमल का सूर्य मन्दिर' (उ०प्र० पंचायती राज्य, लखनऊ, अगस्त १९५२, पृ० ४५)।

३. शुक्ल यजुर्वेदसंहिता (३३.३९) के अधोलिखित मन्त्र में भी 'बट्' सत्य का बोधक है:-
"ऊं बण्महा ऽँ असि सूर्य्य बडादित्य महा ऽँअसि ।
महस्ते सतोऽमहिमापनस्यते' द्धादेव महा असि ।।"
अर्थात्, हे सूर्यदेव! सत्य ही (बट्) तुम महान् हो। हे आदित्य ! सत्य ही (बट्) तुम महान् हो। बड़े महान् होने से तुम्हारी महिमा लोकों में स्तुत होती है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अष्टम अध्याय

ललितशूरदेव का कण्डारा ताम्रपत्राभिलेख

यह ऐतिहासिक ताम्रपत्र लेखक को गढ़वाल क्षेत्र में अपनी पुरातत्त्वीय अनुसन्धान - यात्रा के समय मन्दाकिनी के बायीं ओर स्थित कंडारा ग्राम में प्राप्त हुआ। स्थानीय सूचना के अनुसार, यह कभी कंडारा ग्राम के रौलदाणा भूमिखण्ड से मिला था। ताम्रपत्राभिलेख का सार - विवरण लेखक ने १६७७ ई० में प्रकाशित किया (*उत्तराखण्ड भारती,* २(२) कुमाऊँ विश्ववि० जॅर्नल)। अब इसे, नवीन शोधों के प्रकाश में, मूलपाठ सहित अधिक परिमार्जन के साथ सम्पादित किया जा रहा है।

ताम्रपत्र (६0.१ x ४१.५ सें.मी.) की दायीं ओर एक प्रक्षिप्त भाग है जिस पर चौकोर छिद्र बना है। इस ताम्रपत्र के चारों ओर के छोरों पर एक हल्का - सा उभार है जिससे अभिलेख कहीं क्षत नहीं मिलता। अभिलेख फलक के एक ही ओर उत्कीर्ण है, वह इकतीस पंक्तियों में अभिलिखित है तथा उसका उत्कीर्णन गहरा और सुन्दर है।

अभिलेख की लिपि, पाण्डुकेश्वर - ताम्रपत्राभिलेखों के समान, उत्तरी वर्ग की कुटिल है। उसका रूप आरम्भिक काल का अर्थात् नवीं शती ईसवी के आसपास का है। आदित्यसेन के अफसड - अभिलेख तथा द्वि० जीवितगुप्त के देव - बरणार्क - अभिलेख से इसकी भी निकट समता है। कुटिल लिपि की सामान्य विशेषताओं के अतिरिक्त, इस अभिलेख में उसकी अन्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं : (१) 'ओम्' का प्रतीक रूप में प्रयोग, (२) 'आ' की मात्रा शिरोरेखा से पृथक् एक लघु एवं खड़ी वक्ररेखा द्वारा प्रदर्शित, (३) 'क', 'म', 'य', 'र' तथा 'ल' के रूप नागरी के निकट, (४) 'प', 'म', 'य' तथा 'स' सदैव शीर्ष पर खुले, और (५) 'त्' के उस रूप

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का प्रयोग जो महानाम्न् के बुद्धगया - लेख, प्रतीहार भोजदेव के लेख, आदि में प्राप्य है (द्र0, पंक्ति २३ में 'सम्वत्', पं0 २७ में 'वसेत्')। (६) पंक्ति २३ में २, ४ तथा ७ के अंकों का प्रयोग।

ताम्रशासन की भाषा संस्कृत है। अन्तिम धर्मानुशासन (benedictive and imprecatory) श्लोकों को छोड़कर, समस्त अभिलेख ओजस् गद्य में है जिसकी शैली समास - बहुला है। वर्ण - विन्यास की दृष्टि से, 'ब' के स्थान पर 'व' (व्रह्मण्य, निम्वर, वीज) तथा परवर्ती 'र' के साथ संयोग होने पर 'त', 'क', आदि व्यञ्जनों का द्वित्व (कार्त्तिकेय, दुर्म्मोर्ग, पर्व्वत) द्रष्टव्य है। परन्तु पंक्ति ३ के 'धूर्जटेः', 'उपार्जित', इत्यादि पदों में 'ज' का द्वित्व नहीं मिलता है। अल्प अव्याकरणीय प्रयोग भी देखे गये हैं। ('अनण - रण', 'सकत्ते', 'उर्त्किण्र्ण', 'सम्वत्', 'क्लिोप')। वर्ण - विपर्यय (पंक्ति २ में घतनमस्=घन - तमस्) तथा वर्ण - विलोप ('[रा]ज', 'कार्त्तिकेयपुरा[त्]') भी हो गया है जो लिपिकार की त्रुटि होगी।

वर्णन - क्रम की दृष्टि से, ललितशूरदेव के ही २१ वें वर्ष के ताम्रशासन से इसकी रोचक समता है। लेखारम्भ 'ओम् स्वस्ति' से हुआ है। पुनः ताम्रशासन के निर्गम - स्थान 'कार्त्तिकेयपुर' के उल्लेख के अनन्तर, क्रमशः ध्यानश्लोक, वंशावली (पं. १० तक), राजपदाधिकारियों की विस्तृत सूची (पं. १० से १५), दान का विषय और संवत्सर वर्णित है। अन्त में (पं. २४ से ३१) परम्परानुसार धर्मानुशासन - श्लोक निबद्ध हैं।

अभिलेख का अभिप्राय प्रतापी शासक श्री -ललितशूरदेव द्वारा, समस्त राजपदाधिकारी वर्ग एवं संवासों के समक्ष, उत्तरायण - सङ्.क्रान्ति के दिन, अर्क्कस्थल में स्थित भगवान् आदित्यदेव के देवालय के लिए, दुर्म्मोर्ग - विषय से प्रतिबद्ध भूमि का दान समाज्ञापित करना है। इससे 'परममाहेश्वर' ललितशूरदेव की धार्मिक सहिष्णुता प्रकट होती है।

विवेच्य ताम्रशासन कार्त्तिकेयपुर - नरेश **परमभट्टारक - महाराजाधिराज - परमेश्वर - श्री - ललितशूदेव** के चौबीसवें राज्यवर्ष का है जिसके दो ताम्रशासन पहले ही योगबदरी मन्दिर पाण्डुकेश्वर से प्राप्त हो चुके हैं। उत्तर प्रदेश तथा पास-पड़ोस हिमालय के इस प्रतापी शासक का काल नवीं शती ई0 का मध्य है, जब दक्षिण में प्रतीहार - राजशक्ति निर्बल हो चुकी थी। उसकी वंशावली, उसके अन्य दो शासनों के समान, इसमें निम्नवत् वर्णित हैः -

१.	श्री - निम्बर		=	श्री - नासूदेवी
२.	प.म.प.	श्री - इष्टगणदेव	=	श्री - वेगादेवी
३.	प.म.प.	श्री - ललितशूरदेव		

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ज्ञातव्य है कि कार्त्तिकेयपुर - शासकों के किसी ताम्रशासन में उनके राजवंश का नामोल्लेख नहीं है। उनके लिए तथा - कथित 'कत्यूरी' नाम किसी प्राचीन अभिलेख में नहीं मिलता। अतएव यह नाम अतार्किक है। इस सम्बन्ध में कोलसारी मूर्तिपीठिका - लेख में आयी 'स्वस्ति - श्री - कातियुर - महाराज ... ।।' शब्दावली को मैं महत्वपूर्ण मानता हूँ। वस्तुतः 'कार्त्तिकेयपुर' अथवा 'कार्तिकपुर' का >कात्तियउर>कात्तिउर>कातियुर अधिक स्वाभाविक विकास है। अस्तु इन शासकों के राजवंश का मूल नाम कार्त्तिकपुरीय अर्थात् 'कार्त्तिकेयपुरीय' था जो उत्तर-मध्यकाल में 'कातियुर' हो गया। स्पष्टतः यह उनका जातीय नाम न था, वरन् राजधानी के नाम पर संज्ञापित हुआ था।

ताम्रपत्राभिलेख में निर्दिष्ट **भौगोलिक नाम** निम्नांकित हैं:

कार्त्तिकेयपुर (पंक्ति १) - मध्य हिमालय में यह नगर कार्त्तिकेयपुरीय नरेशों की राजधानी था जो कार्त्तिकेयपुर - विषय में अवस्थित था। एट्किन्सन एवं उसके अनुयायी इसकी स्थिति गोमती-घाटी में स्थित बैजनाथ ग्राम के निकट मानते रहे हैं, और महापण्डित राहुल आदि जोशीमठ में। परन्तु योशि (जोशीमठ) के दक्षिण में कार्त्तिकेयपुर मानने के लिए हमारे पास सबल तर्क हैं: अलकनन्दा-घाटी से गोमती -घाटी में कार्त्तिकेयपुर - शासकों का संक्रमण हिमालय - इतिहास के समस्त विद्वान् स्वीकार करते हैं। अधिकांश ताम्रपत्रों की प्राप्ति अलकनन्दा-क्षेत्र से हुई है। इस नगर की स्थिति पर लेखक ने अन्यत्र विस्तारपूर्वक विचार किया है (द्र0, 'कार्त्तिकेयपुर का राजवंश')। इस राजवंश के वंशजों ने कालान्तर में बैजनाथ के समीप अपनी नयी राजधानी निर्मित की जिसे बैजनाथ - शिलालेखों में 'वैद्यनाथ - कार्त्तिकेयपुर' कहा गया है।

दुर्म्मोर्ग-विषय (पंक्ति १०) - कार्त्तिकेयपुर शासकों के अधीन कार्त्तिकेयपुर, टङ्गणपुर, ईशाल, अंतरंग तथा विष्णुधर्म्मण पाँच विषयों का उल्लेख हमें उनके अन्य अभिलेखों में प्राप्त है। परन्तु इस ताम्रपत्र से उनके अधीन एक छठे 'दुर्म्मोर्ग - विषय का पता लगा है। यह विषय कहाँ था? 'रामायणप्रदीप' की हस्तलिखित प्रति में दुर्मार्ग - नरेश मंगलसेन का उल्लेख हुआ है ('दुर्मार्गदिशाधिपतिं महान्तं दिल्लीशसीमावधि भूमिभागम्।' १.२०)। जो चाँदपुर - नरेश अजेयपाल द्वारा विजित हुआ था तथा जिसकी राजधानी कंडारागढ़ थी। एक प्राचीन 'वृतांत' में भी वर्णित है कि मंगलसिंह 'दुमग' का राजा था जिसने वर्ष १२७५ में कंडारागढ़ को राजधानी बनाया। 'दुर्मार्ग' तथा 'दुमग' नाम यदि एक हैं तो मंगलसेन तथा मंगलसिंह एक ही राजा होगा। इसके अतिरिक्त, जनश्रुतियों में भी 'दुमाग' का उल्लेख मिलता है। अस्तु यह 'दुर्म्मोर्ग - विषय गढ़वाल की मन्दाकिनी तथा भिल्लंगना की घाटियों के मध्य विस्तृत था।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

खष (श) – किरात – द्रविड – कलिङ्ग – गौड – हूण – उड्र – मेद – आन्ध्र (पंक्ति १४) –ये समस्त संवास तथा जनपद कार्त्तिकेयपुर – नरेश के अधीन – से बताये गये हैं। परन्तु यह सत्य नहीं है, मात्र गतानुगतिक वर्णन है।

राजपल्लिका – तलसारिकाय – तथा – नगरपर्व्वत (पंक्ति १६) – दुर्म्मोर्ग-विषय से प्रतिबद्ध ये तीनों स्थल मन्दाकिनी-घाटी में अवस्थित थे। 'तलसारिका' (वर्तमान तलसारी) मन्दाकिनी के वाम तट पर अगस्त्यमुनि के समीप पट्टी तल्ला कालीफाट में स्थित है। 'नगरपर्व्वत' कालान्तर में नगरकोट बन गया होगा जो सिलगढ़ पट्टी में स्थित वर्तमान कुमड़ी ग्राम का पुराना नाम था। यह भी सम्भव है कि मूल पाठ 'नागपर्व्वत' रहा हो और लिपिकार की त्रुटि से वर्ण – व्यत्यय द्वारा 'नगरपर्व्वत' उत्कीर्ण हो गया हो। कंडारा ग्राम के पृष्ठभागीय पर्वत का वर्तमान नाम नागपर्वत ही है। ' राजपल्लिका' पूर्वोक्त दो स्थलों के समीप ही कहीं थी।

अर्क्कस्थल (पंक्ति १६) – इस स्थल पर भगवान् आदित्य का देवालय निर्मित था। इसका अभिज्ञान अभी अज्ञात है। यह भी सम्भव है कि सूर्यमन्दिर – क्षेत्र की सामान्य संज्ञा ' अर्क्कस्थल' रही हो। क्योंकि बरगेज (ज. आ. स. वे. इं., खण्ड ६) के अनुसार कोणार्क का सूर्यमन्दिर उड़ीसा के अर्क्कक्षेत्र में स्थित है।

अन्त में, अभिलेख में वर्णित कुछ पारिभाषिक पदों को स्पष्ट करना आवश्यक है:

कुशली (पंक्ति १०) – 'कुशली' शब्द का अर्थ है: '(जो) स-कुशल हैं')। महाभारत (उद्योगपर्व, ३२.१०) में इसी अर्थ में यह शब्द मिलता है ('क्वचित् सराजा कुशली सपुत्र')। कादम्बरी में भी यही अर्थ है ('कुशलिन्यः प्रजाः')। ४६३–६४ ई. के जयनाथ के कारीतलाई ताम्रपत्र में (फ्लीट, संख्या २६) और आगे अनेक राजपत्रों में निरन्तर इस पद का इसी अर्थ में प्रयोग देखते हैं।

प्रवर्द्धमान्-विजयराज्य-संवत्सर (पं. २२ – २३) – अभिलेखों में यह एक पारिभाषिक पद है जिसके अपर रूप हैं: 'विजयराज्य सम्वत्सर', 'अभिवर्धमान् विजयराज्य सम्वत्सर'। द्वितीय चन्द्रगुप्त के मथुरा – स्तम्भ लेख (३७० ई.) में सम्भवतः यह सर्वप्रथम प्रयुक्त हुआ है। गुप्तों ही ने नहीं, आगे हूणमिहिरकुल तथा पाल – शासकों ने भी इस मङ्गल – अभिव्यक्ति का प्रयोग किया। इसका अर्थ है: 'विजयोन्मुखी शासनकाल'।

अ-चाट-भट-प्रवेशा (पं. २०) – पाठान्तर 'अचाट – भट्ट – प्रवेश्यः' (हस्तिन का दानपत्र)। अर्थात्, ब्रह्मदेय भूमि में सेना प्रवेश नहीं कर सकती, तथा दानग्राही को 'चाट – भट्ट – प्रवेश दण्ड' भी अदेय है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पाठ[५]

१. ऊं[६] स्वस्ति [।।*] श्रीमत् - **कार्त्तिकेयपुरा** [त्*] = सकलामर - दितितनुज - मनुज - विभु-भक्तिभाव - भर - भारानमित - अमितोत्तमाङ्ग - सङ्गि - विकट-किरीट-विटङ्क-कोटि - कोटि - शौने (श्वेतै) क्ना (ता) नानायक - .

२. प्रदीप - दीप्त - दीधिति - पान - मद - रक्त - चरण - कमलामल - विपुल - व(ब) हल - किरण - केसरासार - सारित - अशेष - विशेष - मोषि - घत(न) - न(त)मस् - तेजसस् = स्वर्धुनी - धौत - जटाजूटस्य भगव -

३. तो धूर्ज (र्ज्ज) टेः = प्रसादान्-निज - भुजोपार्जि (र्ज्जि) तो (तौ) र्जि (र्ज्जि) त्य - निर्जि (र्ज्जि) त - रिपुतिमिर - लव् (ब्) धोदय-प्रकाशः दया - दाक्षिण्य - सत्य - सत्त्व - शील - शौच - शौर्यौदार्य - गाम्भीर्य - मर्यादा - आर्यवृत्ताश्चर्य - कार्यवर्यादि-

४. गुण - गण - अलङ्कृत - शरीरः महा - सुकृति - सन्तान - वीजावतारःकृतयुगागम - भूपाल - ललित - कीर्त्तिः श्री - **नन्दाभगवती** - चरणकमल - कला[७] - सनाथ - मूर्त्ति [:*] श्री - **न्निम्व**(ब) रस्=तस्य तनय-

५. प्(स्) = तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी श्री - **नासूदेवी** तस्यामुत्पन्नः परममाहेश्वर : परम व्र(ब्र)ह्मण्यः शित - कृपाण - धारोत्खात - मन्ते(त्ते) भ- कुम्भाकृष्टोत्कृष्ट - मुक्तावली - यशः - पताकोच्छ(च्छ्रा)य - चन्द्रि-

६. कापहस्तित - तारागण [:*] **परमभट्टारक** - **महाराजाधिराज** - **परमेश्वर** - **श्रीमद्** - **इष्टगणदेवस्** = तस्य पुत्रस् = तत्पादोनुध्यातो राज्ञी महादेवी **श्री** - **वेगादेवी** तस्य (T) मुत्पन्नः परममाहेश्वरः पर -

७. मव्र (ब्र) ह्मण्यः कलि - कलङ्क - षड्कातङ्क- मग्न - धरण्य - उद्धार - धारित - धौर (रे) य वर - वराह - चरितः सहज - मति - विभव विभु- विभूति - स्थगिताराति - चक्र - प्रतापदहनः अतिवैभव - सम्भारारम्भ - सम्भृत - भी -

८. म - भ्रुकुटि - कुटिल - केसरि - सटा - भीत् - भीतारातीभ - कलभ - भरः अनण[८] (अतुण्ड) - रण [त्*] - कृपाण - वा (बा)ण - गण - प्रणा(प्राण) - गुण - हठाकृष्टोत्कृष्ट - सलील - जयलक्ष्मी - प्रथम - समालिङ्गन - अवलोकन- वे(वै) लक्ष्य - स -

९. खेद - सुरसुन्दरी - विधूत - कर - स्खलद् - वलय - कुसुम - प्रकर - प्रकीर्णावितंस - सम्व(संव) र्द्धित - कीर्त्ति - वी(बी)जः पृथुरिव दोर्द(र्द्द)ण्ड - साधित - धनुर्म(र्म्म)ण्डल - व (ब) लावष्टम्भ - वश - वशीकृत - गो - पालना - निश्चलीकृ -

१०. त - धराधरेन्द्रः **परमभट्टारक** - **महाराजाधिराज** - **परमेश्वर** - **श्रीमल्** - **ललितशूरदेवः** कुशली। **दुर्म्मोर्गि** - **विषये** समुपगतात् (न्) = सर्व्व [T*] नेव - निये (यो)ग स्थाना (न्) = [रा*]ज - राजनक - राजपुत्र - राजामात्य - साम -

११. न्त - महासामन्त - ठक्कुर - महामनुष्य - महाक(का)र्त्ताकृतिक - महाप्रतीहार -

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महादण्डनायक - महाराजप्रमातार - शरभंग - कुमारामात्योपरिक - दुस्साध्यसाधनिक - द(दा) शापराधिक - चौरोद्धरणिक - शौ -

१२. ल्किक - गौल्मिक - तदायुक्तक - विनियुक्तक - पट्टकापचारिक - अशे (से) धभङ्गाधि कृत - हस्त्यश्वोष्ट्रव (ब)लव्यापृतक - दूत - प्रेषणिक - द(दा)ण्डिक - द [T*] ण्डपाशिक - गमागमिक - खाड्गिक - अभित्वरमाण -

१३. क - राजस्थानीय - विषयपति - भोगपति - तरपत्यश्वपति - खण्डरक्ष - प्रतिशूरिक - स्थानाधिकृत - वर्त्मपाल - कोट्टपाल - घट्टपाल - क्षेत्रपाल - प्रान्तपाल - किशोरवडवागोमहि -

१४. ष्यधिकृत - भट्ट -महा[त्*]तम - आभीर - वणिक् - श्रेष्ठि - पुरोगान् = साष्टादश-प्रकृत्यधिष्ठानीयात् (न्) = खष(श) - किरात - द्रविड - कलिङ्.ग - गौड - हूणोड्र - मेद - आन्ध्र - चाण्डाल - पर्यन्ता(न्) = सर्व्व - सम्वासा -

१५. न् = समस्त - जनपदान् = भट - चाट - सेवकादीन् = अन्यान्श् = च कीर्त्तितान् = अकि(की)र्त्तितान् = अस्मत्[६] - पा[T*] दपद्मोपजीविनः प्रतिवासिनश् = च व्र (ब्रा)ह्मणोत्तरान् = यथार्हम् मानयति वो(बो)धयति समाज्ञापय-

१६. त्यस्तु (....यति ।अस्तु) वस् = सम्विदितम् [।] = उपरिनिर्दिष्ट - विषय - प्रतिव(ब)द्ध - भट्ट - श्री - हर्षुक - परिभुज्यमान - राजपल्लिका - तलसारिकाय - तथा नगरपर्व्वत व्रा(ब्रा)ह्मण व्र(ब्र)ह्मियाकसक्त - भूमि-

१७. पितु-पितामहेपार्जित्तं शासना .र्धं - एतत्सर्व्वसाम्प्रत - मया माता - पित्त्रा (त्रो) रान्म (त्म) नश् = च पुण्य - यशोभिवृद्धये पवन - विघट्टिताश्वत्व(त्थ) - प्र (प)त्र - चत्रचल-तरङ्ग - जीवलोकम् = अ -

१८. वलोक्य जल - वु(बु) द्वु(बु) दाकारम्= असारञ्च। आयुर्दृष्ट्वा गजकलभ - कर्ण्णाग्र - चपलताञ्च लक्ष्म्या ज्ञात्वा परलोक - निःश्रेयसार्थ [मं*] सन्साराण्णव - तरणार्थञ्च पुण्येहनि उत्तरायण - सक्त्ते (सङ्क्रान्तौ) ।

१९. गन्ध - पुष्प - धूप - दीपा (पो) पलेपन - नैवेद्य - व(ब)लि - चरु - नृत्य - गेय - वाद्य - सत्रादि - प्रवर्त्तचा(ना)य खण्ड - स्फुट्टित - संस्करणाय - अभिनव - कर्म्म - करणाय च भृत्य - पादमूल - भरणाय च अर्क्कस्थ -

२०. ल(ले) भगवत - श्री - आदित्य - भट्टारकदेव पादेभ्यः प्रतिपादिता व्रा(ब्रा)ह्मणैः पदवण्..कनन (?) वण्यित्वा न ग्रहेतव्या तदेतदवधार्य प्रकृति - परिहार - युक्त [T*] अ - चाट - भट - प्रवेशा अकि-

२१. ञ्चित् प्रग्राह्य [T*] अनाच्छेद्य (द्या) आचन्द्रार्क्क - क्षिति - स्थिति - समकालिका - अवस्थानादुद्धृत - पिण्डा [स्*] = स्वसीमा - गोचर - प्र(प)र्यं (र्यन्)त्ता (तास्) = स - वृक्षारामोद्भेद - प्रश्र(स्र)वणोपेता - देव - व्रा(ब्रा)ह्मण - भुक्त - भुज्यमान - वर्जिता [:।*] य-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२२. तः सुखं पारम्पर्येण परिभुन्जतश् = च = अस्योपरि - निर्दिष्टैर् = अन्यतरे (रै) र्व्वा धरण - विधारण - परिपन्थनादिक - उपद्रवो मनाग् = अपि न कर्त्तव्या (व्यो) = ता(तो) न्यथाज्ञा - भाने (हानौ) महान् = द्रोहाः स्यादिति [।।*] प्रवर्द्धमा-

२३. न - विजयराज्य - सम्व (संव)त्सरे (र) चतुर्वसमे (विंशतितमे) सम्व(संव)त् २४[10] माघ- वदि ७ [।।*] दूतकोत्त महादानाक्षपटलाधिकृत - श्री - पीजक(:)। लिखितमिदं महासंधिविग्रहाक्षपटलाधिकृत - श्रीमद् - आर्य -

२४. ट्। - वचना [त्।*] टा (ट) ङ्कोर्त्कि (त्की) ण्र्ण(र्ण्णं) श्री - गङ्गभद्रेण। (।।) व(ब) हुभिर्व्वसुधा भुक्ता राजा (ज)भिस् = सगरादिभिः (।*) यस्य यस्य यदा भूमिस् = तस्य तस्य तदा फलं (लम्)। [।*] सर्व्वं [T*] नेतान् = भाविनः पार्थिवेन्द्रान् = भूया (यो) भूया(यो) याचते रामभ -

२५ द्रः [।*] सामान्या (यो) यं धर्म्म - सेतुर् = नृपाणां काले काले पालनीया (यो) भवद्भिः ॥[।*] स्व - दत्ताम् = पर - दत्ताम् (त्तां) वा यो हरेत क्सुन्धरां (राम्)। षष्टिम्व (ष्टिं व) र्ष - सहं (ह)स्र [T*]णिश्च (स्व) विष्ठ्या (ष्ठायां) जायते कृमिः। [।*] भूमेर् = दाता याति लोके सुराणं (णां)-

२६. हाशे (हंशै)[र्*] = युक्तं यानमारुह्य दिव्यं [।*] ..भकर्यत (लौहे कुम्भे) तैल - पूर्णे श्रुतस्त (सुतप्ते) भूमेर् = हर्त्ता पस्य (च्य) ते कालदूतैः। [।*] षष्टिम्व (ष्टिं व) र्ष - सहस्रां (स्रा)णि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः [।*] आच्छेत्ता चानुमन्ता च ताने (न्ये) व नरके वसे-

२७. त् [।।*] गामेक [T*]ञ्र् = च सुवर्ण्णञ्र् = च भूमेरप्येकम् = अङ्गुलं। हता(त्वा) नरकम् = आयाति यावद् = आहूति (भूत) सम्प्लवं । [।*] यान् = इह दता(त्ता) नि पुरा नरेन्द्रे (न्द्रै)र् = दानानि धर्म्मार्थि - यस (श) स्कर [T*]णि [।*] निर्म्माल्य - वान्त - प्रतिमानि तानि को नाम साधु [:*]

२८. पुनराददीत। [।*] अ...म .ल (अस्मत् - कुल) - क्रममिदं (मं) समुदाहरद्भिर् = अन्यैश् = च दानमिदम् = अभ्यनुमोदनीयं [।*] लक्ष्म्यास् = तडित् - सलिल - वूद्वुद (बुद्बुद) - चञ्चलायः(या) दान(नं) फलं परयशः परिपालनञ्र् = च । [।*] [11]आदित्यो वरुणो-

२९. विष्णुर् - व्र(ब्रं)ह्मा - सोमो - हुताष(श)नः। शूलपाणिश् = च भगवा(न्)अभिनन्द-प्रत्ति(न्ति)स्(भू)मिदं(म्)॥[।*] तटहानांयहसूण अस्वमेध शत न चा गवां कटि पदानेन भूमि - हर्त्ता न शुद्ध्यति । व(ब)हुभिर्व्वसुधा भुक्ता यत्नारक्ष-

३०. महीपती मही महीमन्तां श्रेपेदानाश्रेयानुपालनं। [।*] इति कमलदलाम्वु(बु) - वि[न्*]दु - लोलं (लां) श्रियम् = अनुचिन्त्य मनुष्य - जीवितञ्र् = च [।*] सकलम् = इदम् = उदाहृतञ्र् = च वु ध्वा (बुद्ध्वा) न हि पुरुषै [:*] पर की -

३१. त्त(र्त्त) [यो*] विलोप (प्याः)।।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संदर्भ

१. ललितशूरदेव के २१ वें वर्ष के ताम्रपत्र में वर्णित राजपदाधिकारीवर्ग की सूची के सम्बन्ध में प्रो. कीलहॉर्न का कथन है, ' इस दृष्टि से यह अभिलेख निःसंदेह पाल - नरेशों के ताम्रपत्राभिलेखों से समता रखता है, परन्तु द्वि० जीवितगुप्त के देव-बरणार्क लेख (गुप्त इन्स्०, पृ. २१६) से अधिकाधिक निकट (almost closer) है' (इंडि.ऐं., जुलाई १८६६, पृ.१७७, टि.८)। ज्ञातव्य है कि ललितशूरदेव के तीनों ताम्रशासनों में राजपदाधिकारीवर्ग की सूची समान है।

२. फ्यूरर, **Monu. Anti. and Insc. in the N.W.P.**, १८६१, पृ.४६।

३. प्रो. कीलहॉर्न (पूर्वोक्त, पृ. १७८) ज्योतिष - गणना के आधार पर ललितशूरदेव के २१ वें वर्ष के ताम्रपत्र को २२ दिसम्बर, ८५३ ई. में रखते हैं, क्योंकि इसी तिथि को उत्तरायण - सङ्क्रान्ति पड़ती है। परन्तु राहुल के अनुसार उसका काल ६४५-६० ई. है और वह प्रतीहार राजा द्वि० महेन्द्रपाल तथा द्वि० देवपाल का समकालीन था (गढ़वाल, पृ.७२-७३)। हमें प्रथम मत ग्राह्य है।

४. **'गढ़वाल का ऐतिहासिक वृतान्त'** शीर्षक अंग्रेजी लेख (राजकीय अभिलेखागार इलाहाबाद में टिहरी राज्य अभिलेखागार की पंजिका संख्या ४)।

५. मूल ताम्रपत्र से लिप्यन्तर।

६. प्रतीक रूप में ।

७. ललितशूरदेव के २१वें तथा २२वें वर्ष के ताम्रपत्र में 'कमला'।

८. पूर्वोक्त दोनों ताम्रपत्रों में 'अतुण्ड' पाठ पढ़ा गया है।

९. कीलहॉर्न के मत से , 'अस्मत्' के स्थान पर पढ़िए '..तान् = स्वपाद' (पं. १५)।

१०. 'सम्वत्' के पश्चात्, दो पड़े अल्प विराम - से २ की संख्या के लिए प्रयुक्त हैं, तदन्तर ल्क ४ की संख्या के लिए । इस प्रकार, यहाँ प्राचीन शैली के अङ्क - संकेतों का प्रयोग हुआ है। शब्दों तथा अंकों दोनों में संवत् देने की प्राचीन परिपाटी यहाँ भी द्रष्टव्य है।

११. **महाभारत** - अनुशासनपर्व (६२.४८ गीताप्रेस सं.) से उद्धृत।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नवम अध्याय

कार्त्तिकेयपुर का राजवंश

(इस राजवंश के अभिलेखों का ऐतिहासिक पुनरीक्षण)

१.

पृष्ठभूमि

सम्राट् हर्षवर्द्धन की मृत्यु (६४७-४८ ई०) के पश्चात् कान्यकुब्ज साम्राज्य शीघ्र ही समाप्त हो गया । इसके साथ उत्तरी भारत में एक राजनीतिक शून्यता-जन्य अराजकता व्याप्त हो गयी। उस साम्राज्य के खण्डहरों पर अनेक नये राजवंशों का उदय हुआ और अनेक राज्य पूर्ववत् स्वतंत्र हो गये जिन्हें श्रीहर्ष ने अपने अधिकार में कर लिया था। मध्य-हिंमालय में 'ब्रह्मपुर' का राज्य भी, जो इस प्रदेश में सबसे विस्तृत था और अल्पकाल के लिए उसकी अधिसत्ता में आ गया था, पुनः स्वतंत्र हो गया। परन्तु राजनीतिक शून्यता के इस काल में, ब्रह्मपुर राज्य को तत्कालीन उत्तरी सीमान्त की एक प्रमुख शक्ति का सामना करना पड़ा। यह शक्ति भोटों की थी। ६४८ ई० के पश्चात् भोटों की सहायता से ही वैङ्-ह्वान्-शे ने उत्तर से घुसकर ब्रह्मपुर पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि यह संघर्ष अपने परिणामों में किंचित् भी महत्वपूर्ण नहीं था, तथापि इसके पश्चात् मध्य-हिमालय के गिरिद्वारों से अविरल जो प्रवल् भोट-अभियान होते रहे उनसे ब्रह्मपुर के पौरवों की सत्ता, उनके स्वतंत्र होने के लगभग तीन दशकों के पश्चात् ही, लड़खड़ा गयी। इस अस्तव्यस्तता से लाभ उठाकर, उनके किसी महत्वाकांक्षी सामन्त ने अलकनन्दा-घाटी में 'कार्त्तिकेयपुर' में एक नये राजवंश की स्थापना कर दी।

आठवीं शती ई० के आरम्भ से लेकर आगे प्रायः चार शतियों तक इस राजवंश ने

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मध्य-हिमालय में राजनीतिक एकता स्थापित ही नहीं रखी, अपितु सांस्कृतिक क्षेत्र में मूल्यवान् दाय भी छोड़ी हैं। (द्र0, मानचित्र संख्या - ३)

२.
राजवंश का नाम

ब्रह्मपुर के पौरवों के पश्चात्, हिमालय में गढ़वाल-कुमाऊँ और उसके पड़ोसी क्षेत्र पर शासन करनेवाले कार्त्तिकेयपुर के प्रसिद्ध राजवंश का नाम उसके किसी अभिलेख में नहीं मिलता है। प्राचीन साहित्य में भी इस वंश का नाम अब तक उपलब्ध न होने के कारण विद्वानों में इसके सम्बन्ध में वैमत्य रहा है।

सर्वप्रथम एडविन टी0 एट्किन्सन ने अनुश्रुतियों के आधार पर अपने गजेटियर हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स (१८८४ ई0) में यह मत प्रतिपादित किया कि कार्त्तिकेयपुर के राजा 'कत्यूरी' राजवंश के थे। अपनी प्रस्थापना के लिए उसने अनुश्रुतियों पर अत्यधिक विश्वास किया और, नाम-साम्य की खोज में कत्यूरियों को काबुल के कटोरों से मिलाया। कनिंघम के अनुसार, अबू-रिहान द्वारा वर्णित ये कटोरमान गांधार (चित्राल) के लघु-यूची थे। लघु-यूचियों की राजधानी पर्शावर थी।[१] इस मत का अन्ध समर्थन ई0 एच0 इलियट (१८६७ ई0), पातीराम (१९१६ ई0), बदरीदत्त पाण्डे (१६३७ ई0) और राहुल (१६५३ ई0) ने किया । डॉ0 शिवप्रसाद डबराल (१६६८ ई0) ने, यह मानते हुए भी कि इसके लिए ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं, एट्किन्सन ही के मत को अस्थायी रूप से मान लिया।

परन्तु अद्यतन अनुसंधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि 'कत्यूरी राजवंश' मध्यकालीन था।[२] उसका अभ्युदय कुमाऊँ की कत्यूर- घाटी में हुआ था। इस राजवंश की राजधानी लखनपुर अथवा बैजनाथ के रणचूलाकोट में थी। उसकी सत्ता के अन्य केन्द्र वैराट, अस्कोट, डोटी, बागेश्वर, आदि स्थानों पर थे। उसके प्रसिद्ध नरेश आसन्तिदेव, प्रीतमदेव, पिथौराशाही, धामदेव, ब्रह्मदेव और मालूशाही हुए। कान्यकुब्ज के प्रतीहार, चम्पावती के चन्द, श्रीनगर (गढ़वाल) के पँवार और दिल्ली के तुर्क इसके समकालीन थे। कत्यूरी राजवंश के इतिहास के प्रमुख स्रोत उसकी मौखिक गाथाएँ (जिन्हें यहाँ 'जागर' कहते हैं) और वंशावलियाँ ही हैं। उनके जो अभिलेख मिले हैं वे परवर्ती नागरी लिपि में हैं। कुमाऊँ से प्राप्त कत्यूरी वंशावलियों के राजा कार्त्तिकेयपुर के राजाओं से नहीं मिलते । कत्यूरी गाथाओं में यदि कहीं प्राचीन 'कार्त्तिकेयपुर' नाम का प्रयोग नहीं मिलता, तो 'कत्यूरी' नाम का उल्लेख भी किसी प्राचीन अभिलेख, मुद्रालेख और साहित्य में उपलब्ध नहीं है। ये तथ्य प्रमाणित करते हैं कि दोनों राजवंश पृथक् हैं। अस्तु, मध्यकालीन कत्यूरी राजवंश को प्राचीनतर कार्त्तिकेयपुर के राजवंश से नहीं जोड़ा जा सकता।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मध्य-हिमालय के इतिहासकारों[३] ने कुछ समय पूर्व यह मत प्रतिपादित किया है कि कार्त्तिकेयपुर के राजवंश का सम्बन्ध 'खश'[४] जाति से है। उनके मत का आधार समकालीन अन्य राजवंशों और स्वयं कार्त्तिकेयपुरीय राजाओं के अभिलेख हैं। उनके अनुसार, धंगदेव के खजुराहो- अभिलेख में उल्लिखित है कि दिग्विजय के समय चंदेल वंश के सम्राट् यशोवर्मन् (लग० ६३०-६५० ई०) ने 'खसों के बल को कुचला था' (तुलितखसबलः), और 'विज़य करते हुए उसके सैनिकों ने उस प्रालेयाचल पर चढ़ाई की जहाँ गङ्गा की प्रबल धाराएँ भयंकर ध्वनि से प्रवाहित होती थीं।' क्योंकि यह वर्णन हरिद्वार के उत्तरी क्षेत्रों पर यशोवर्मन् के अभियान का द्योतक है। अतएव वह खश-नरेश कोई कत्यूरी नरेश ही रहा होगा। इसी प्रकार, समकालीन पालवंशीय अभिलेखों में 'ओड्र-मालव-खश-कुलिक-कर्णाट-हूण' इत्यादि का उल्लेख है जिन पर पाल-नरेशों की अधिसत्ता का अनुमान किया जाता है। भाण्डागारिक श्रीसहणपाल के बोधगया-लेख (१२७८ ई०) में भी 'सपादलक्ष - शिखरि - खसदेश - राजाधिराज - श्रीमदशोकचल्लदेव' उल्लिखित है। इन अभिलेखीय साक्ष्यों के अतिरिक्त, राजशेखर की साहित्यशास्त्रीय कृति काव्यमीमांसा में किसी 'खशाधिपति' का उल्लेख है जिसका चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने वध कर दिया था और, जिसके कारण गुप्त सम्राट् की कीर्ति का गान हिमालय में कार्त्तिकेयनगर की स्त्रियाँ करती हैं। इस मत के प्रतिपादकों का कथन है कि इन समस्त उल्लेखों में 'खश' शब्द से मन्तव्य गङ्गा के किनारे गढ़वाल-कुमाऊँ के पर्वतों में 'खशों की राजनीतिक सत्ता' से है।

इसके अतिरिक्त, उनके अनुसार, स्वयं कार्त्तिकेयपुर नरेशों के अभिलेखों के आधार पर भी ये शासक खशवंशीय सिद्ध होते हैं। क्योंकि उनके प्रशंसात्मक अभिलेखों में कहीं वंश, गोत्र एवं जाति का नामोल्लेख नहीं है। इन शासकों के इस मौन का कारण इस बात का द्योतक है कि वे हीन जाति के रहे होंगे। उनके अभिलेखों में शासकों एवं उनके अधीनस्थ व्यक्तियों के नाम भी क्षत्रिय प्रतीत नहीं होते और, उनमें भूमिदान की सूचना सर्वप्रथम 'खशों' को ही दी गयी है।[५]

परन्तु कार्त्तिकेयपुर के शासकों को 'खशवंशीय' मानने में भी अनेक शंकाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं :

१- उक्त समकालीन राजवंशों के अभिलेखों में 'खश', 'खसबल', 'खसदेश' और 'खशाधिपति' से तात्पर्य खश जातीय लोग, खसों का बल, खसों का देश और खशों के राजा से है, 'खश-सत्ता' अथवा 'खशवंशीय अधिपति' से नहीं। हमें ज्ञात है कि इसी हिमालय में, खशों के ही प्रदेश में, कार्त्तिकेयपुर-शासकों से पूर्व 'सोमवंशोद्भवराजा' शासन करते थे। पाण्डुकेश्वर, कण्डारा आदि स्थानों से प्राप्त कार्त्तिकेयपुर-शासकों के अभिलेखों में सर्वसंवासों और समस्त जानपदों के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

साथ साधारण 'खष' '(श) - किरात - द्रविड - कलिङ्ग - गौड - हूण - ओड्र - मेद - आन्ध्र - चाण्डाल' तक को दी गयी भूमिदान की सूचना, पालवंशीय अभिलेखों के समान, गतानुगतिक वर्णन लगते हैं जिनका ऐतिहासिक मूल्य अधिक नहीं है। बहुवचन में प्रयुक्त वा बहुवचन में अभिप्रेत इन जातियों के लोगों की राजनीतिक सत्ता इन परम्परागत सूचियों से सिद्ध नहीं होती है। यदि ये गतानुगतिक वर्णन नहीं होते तो कार्त्तिकेयपुर से निर्गत ताम्रपत्रों में खशों के साथ-साथ 'तंङ्गणों' का उल्लेख भी आवश्यक था, क्योंकि इन्हीं ताम्रपत्रों में 'टंगणापुर- विषय'[६] के उल्लेख से खशों के साथ गंङ्गा की उपरली द्रोणी में तंगणों का अस्तित्व भी ज्ञात होता है।[७]

२. जिस प्रकार बंगाल के पालवंशीय अभिलेखों में कहीं उस वंश का नामोल्लेख नहीं है और, तत्कालीन प्रचलित प्रवृत्तियों के विपरीत, वे उनमें सूर्यवंशी वा चन्द्रवंशी में से किसी प्राचीन वंश से सम्बद्ध नहीं हैं, उसी प्रकार, अनेक राजवंशों की भाँति कार्त्तिकेयपुरीय शासकों का स्ववंश के सम्बन्ध में मौन रहने का कारण उनका हीन वर्ण का होना नहीं माना जा सकता। पाल शासकों का बौद्ध धर्मी बनने का कारण यदि उनका हीन कुल का होना है, जैसी कुछ लोगों की कल्पना है, तो कार्त्तिकेयपुर के शासकों को बौद्ध धर्मोन्मुख होने की आवश्यकता नहीं हुई। इसके विपरीत, इस राजवंश के बागेश्वर- शिलालेख में प०म०प० भूदेवदेव को 'परम-बुद्ध-श्रमण-रिपु' कहा गया है। स्वअभिलेखों में अपने को सदैव 'परमब्रह्मण्य' कहनेवाले ; आदित्य, नारायण, दुर्गा, ब्रह्मेश्वर, व्याघ्रेश्वर आदि के देवमन्दिरों को ब्राह्मण-शास्त्रोक्त विधि से पुण्य तिथियों पर अजस्र दान देनेवाले और अपने को 'परममाहेश्वर' तथा 'परमवैष्णव' माननेवाले खश-कुलोत्पन्न कैसे हो सकते हैं? महापण्डित राहुल ने भी इस राजवंश का सम्बन्ध हिमालय में फैले प्राचीनतर खशों से नहीं माना है।[८]

स्पष्ट है कि कार्त्तिकेयपुर का राजवंश कत्यूरी नहीं था। उसे खशवंशीय मानना भी अतार्किक कल्पना है। नवीन पुरातत्त्वीय खोजों से अनुमान होता है कि मध्य-हिमालय के इस प्रसिद्ध राजवंश का नामकरण, उसके इस उत्थान काल में, उसकी राजधानी 'कार्त्तिकेयपुर' के ही नाम से हुआ होगा। आठवींशती ईसवी का कार्त्तिकेयपुरीय राजवंश ही कालान्तर में ग्यारहवीं शती के आसपास 'कातियुर' राजवंश के नाम से अभिहित हुआ। महापण्डित राहुलजी ने 'कार्त्तिकेयपुर' नाम के परवर्ती विकसित रूपों को अपने ग्रन्थ **गढ़वाल** (पृ० १०१) और **कुमाऊँ** (पृ० ५४) में इस प्रकार दिया है: 'कार्त्तिकेयपुर वा कार्तिकपुर> कत्तियउर> कत्तिउर> कत्यूर'। परन्तु इन सम्भावित रूपों को देते समय राहुल जी का पूर्वाग्रह एट्किन्सन द्वारा प्रचलित 'कत्यूरी' नाम से मिलाने का था। उन्हें विकास की स्वाभाविक धारा में तैरता हुआ

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्तिम 'कातियुर' शब्द भी तब नहीं मिला था। नयी खोजों के कारण उनके मत में अब संशोधन की आवश्यकता है। कुछ समय पूर्व गढ़वाल की पिण्डर-घाटी में अवस्थित कुलसारी ग्राम में **विष्णुमूर्तिपीठ-अभिलेख**[९] की प्राप्ति से कार्त्तिकेयपुरीय शासकों के वंश-नाम पर नया प्रकाश पड़ा है। जैसा कि मैं अन्यत्र भी बता चुका हूँ, इस अभिलेख में आया 'कातियुर' शब्द वंश-सूचक है। इसकी लिपि से ज्ञात होता है कि कातियुरवंशीय जतवालदेव प्रायः-ग्यारहवीं शती ई० के अन्त में यहाँ शासन करता था। वह सुभिक्षराजदेव का ही निकट वंशज था, अथवा इस राजवंश के चतुर्थ परिवार से सम्बन्धित था। अतएव 'कार्त्तिकेयपुर' नाम के परवर्ती विकसित रूप अग्रलिखित होने चाहिए - कार्त्तिकेयपुर वा कार्त्तिकपुर> कात्तियउर> कात्तिउर> कातियुर। भाषाशास्त्रीय दृष्टि से यह क्रम अधिक संगत लगता है। अभिलेखीय प्रमाण के उपलब्ध हो जाने से, अब विश्वासपूर्वक कार्त्तिकेयपुर-राजवंश को **कातियुर** कहा जा सकता है। इसलिए इस राजवंश के तत्कालीन इतिहास पर लिखते हुए हम आगे **कातियुर** नाम का ही प्रयोग करेंगे।[१०]

परन्तु, मूल की दृष्टि से कार्त्तिकेयपुर-राजवंश हमें एक **कुणिन्द-शाखा** ज्ञात होती है "शकों की कुषाण शाखा" नहीं। किन परिस्थितियों में उसके इस उत्थान-काल में कुणिन्द 'कार्त्तिकेयपुरीय' और तदन्तर 'कातियुर' के नाम से पुकारे गये, यह हमें ज्ञात नहीं है। परन्तु दसवीं-ग्यारहवीं शती ईसवी के आसपास वे निश्चिततः 'कातियुर' नाम से मिलते हैं।

३.

कार्त्तिकेयपुर का अभिज्ञान

कार्त्तिकेयपुर की स्थिति के विषय में विद्वान् एकमत नहीं हैं। यह नगर वंश-संस्थापक बसन्तनदेव (?) से लेकर सुभिक्षराजदेव तक कातियुर शासकों की गौरवशाली राजधानी रहा। इसका नाम कार्त्तिकेयपुरीय नरेश ललितशूरदेव, देसटदेव तथा पद्मटदेव के पाँच ताम्रशासनों में आया है। ललितशूरदेव के २१ वें और २२वें राज्यवर्ष के ताम्रशासनों से ज्ञात होता है कि यह नगर 'कार्त्तिकेयपुर-विषय' में अवस्थित था।

पाणिनि (४.२.६५) का 'कत्रि' और प्रयाग-प्रशस्ति का 'कर्तृपुर' इसके ही प्राचीन नाम प्रतीत होते हैं जैसा कि वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी स्वीकार किया है।[११] राजशेखर-कृत **काव्यमीमांसा** (अ०६) में उद्धृत एक प्राचीन श्लोक में आया 'कार्त्तिकेयनगर' भी यही है। पाठान्तर से, साहित्य में 'कार्त्तिकपुर' नाम भी मिलता है। दशवीं शती ईसवी के आसपास रचित प्रसिद्ध शिल्पग्रन्थ अपराजितपृच्छा के लेखक भट्टभुवनदेव को 'कार्त्तिकपुर' का ज्ञान था। वह इसे तत्कालीन इक्कीस राज्यों में से नौ लाख भूमिकर वाला एक राज्य बताता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अलमोड़ा जनपद के तालेश्वर स्थान से प्राप्त लगभग छठी शती ई० के पौरववंशीय दो ताम्रशासनों (एपि० इं०, १३, सं० ७) में तीन स्थलों पर 'कार्त्तिकेयपुर' नाम मिलता है। **द्युतिवर्मन् के ताम्रशासन** में एक स्थल (पं० २३) पर कार्त्तिकेयपुर के अन्तर्गत *अतिवलाक-पल्लिका, विशाखिल-पल्लिका, अरिष्टाश्रम* और *अवलीनक* स्थानों का, और इसी में दूसरे स्थल (पं० २०) पर ब्रह्मपुर के अन्तर्गत *कार्त्तिकेयपुर-ग्रामक* और *समज्जाव्यस्ता* का उल्लेख है। **विष्णुवर्मन् के ताम्रशासन** (पं० २३) में कार्त्तिकेयपुर के अन्तर्गत *निम्बसारी* और *श्वेतक्षेत्र* का वर्णन है। परन्तु इन ताम्रपत्रों में निर्दिष्ट 'कार्त्तिकेयपुर' स्पष्टतः राजधानी के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है।

एडविन टी० एट्किन्सन ने कातियुरों की आदि राजधानी पहले जोशीमठ में मानते हुए,[१२] कातियुर- ताम्रशासनों में वर्णित राजधानी कार्त्तिकेयपुर की स्थिति पश्चात् अलमोडा जनपद की कत्यूर-घाटी में अवस्थित बैजनाथ ग्राम के समीप मानकर[१३] भ्रांति उत्पन्न कर दी। कत्यूर-घाटी से यह समीकरण इससे पूर्व रा. ला. मित्र (१८७७)[१४] आदि कुछ विद्वान् भी कर चुके थे। 'कार्त्तिकेयपुर' और 'कत्यूर' शब्दों में नामसाम्य का आकर्षण उन सबको वास्तविक इतिहास से दूर ले गया। एट्किन्सन के 'गजेटियर' का अनुसरण करनेवाले परवर्ती विद्वानों द्वारा इस त्रुटि की आवृत्तियाँ होती रहीं।[१५]

दूसरी ओर, इस नगर की एकता 'जोशीमठ' से अनेक लेखकों ने अनुमानित की है।[१६] इस दूसरे समीकरण को भी अस्वीकार करते हुए, मैंने पहले (१९८१) कार्त्तिकेयपुर की स्थिति 'जोशीमठ के निकट' बतायी थी। परन्तु, ताम्रपत्रों की साक्षी तथा इन शासकों के कुलदेवता कार्त्तिकस्वामी देवस्थल के सामीप्य के आधार पर अब मेरा विश्वास है कि यह राजनगर जोशीमठ के दक्षिण में अलकनन्दा-घाटी में कहीं स्थित था। इस मान्यता के पक्ष में हमारे निम्नांकित तर्क हैं:-

१. पौरववंशीय ताम्रशासनों में दो बार आया 'कार्त्तिकेयपुर' नाम निश्चय ही उनके पर्वताकर राज्य की एक पश्चिमी प्रशासनिक इकाई ज्ञात होती है। इसके अन्तर्गत अग्रहार ग्रामों की गणना की गयी है। स्वाभाविक रूप से इस प्रशासनिक इकाई का मुख्यालय भी इसी नाम से अभिहित रहा होगा। परन्तु वह मुख्यालय *'कार्त्तिकेयपुर- ग्रामक'* नहीं हो सकता। कार्त्तिकेयपुर- ग्रामक तो कातियुरों की राजधानी कार्त्तिकेयपुर से भिन्न छठी शती ई० के आसपास ब्रह्मपुर क्षेत्रान्तर्गत कोई साधारण अग्रहार ग्राम-मात्र था। इस प्रकार, पौरवों के पर्वताकर-राज्य में कार्त्तिकेयपुर की स्थिति एक प्रशासनिक इकाई के ही रूप में वर्णित है। यही प्रशासनिक इकाई आगे लगभग चार शती पश्चात् कातियुर-काल में 'कार्त्तिकेयपुर-विषय' के नाम

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से मिलती है। इस 'विषय' में नागपुर-मण्डल का पूर्वी भाग निश्चिततः सम्मिलित था। पूर्व में इसका विस्तार सम्भवतः कुमाऊँ की कत्यूर-घाटी के कुछ भागों तक भी था। इस प्रशासनिक इकाई में ही कार्त्तिकेयपुर नामक नगर अवस्थित रहा होगा।

२. द्युतिवर्मन् के तालेश्वर-ताम्रपत्र में अप्रत्यक्षतः वर्णित कार्त्तिकेयपुर (इसी नाम की इकाई का मुख्यालय) और प्रत्यक्षतः वर्णित करवीरगर्त्ता (=करवीरपुर) नाम समकालीन होने से, निश्चित है कि आदि कार्त्तिकेयपुर की नहीं, 'वैद्यनाथ-कार्त्तिकेयपुर' की स्थापना गोमती- घाटी में अवस्थित प्राचीन करवीरपुर के स्थान पर हुई थी। क्योंकि ए०टी० एट्किन्सन द्वारा संग्रहीत अनुश्रुतियों में यह प्रसिद्ध है कि करवीरपुर के ध्वंसावशेषों पर ही कालान्तर में कार्त्तिकेयपुर के नये राजनगर की स्थापना की गयी थी।

३. अलकनन्दा-क्षेत्र से ही गोमती-घाटी में उत्तरकालीन कातियुर शासकों का संक्रमण एट्किन्सन, राहुल आदि विद्वान् स्वीकार करते हैं। इसके विपरीत, अलकनन्दा-क्षेत्र की ओर संक्रमण की पुष्टि किसी अनुश्रुति से नहीं होती। अतएव आदि कार्त्तिकेयपुर वहीं स्थित था जहाँ इस वंश के आरम्भिक नरेश शासन करते थे।

४. यह अनुश्रुति भी प्रसिद्ध है कि जोशीमठ का वासुदेव मन्दिर इस राजवंश के आरम्भिक शासकों द्वारा निर्मित प्राचीनतम मन्दिर है। परन्तु इस अनुश्रुति से जोशीमठ में राजधानी सिद्ध नहीं होतीं। इससे मात्र इतना आभास होता है कि राजधानी के समीप इस महत्वपूर्ण स्थल पर भी इन शासकों ने एक विष्णु-देवालय निर्मित किया था।

५. कातियुर राजवंश के अधिकांश ताम्रशासनों की प्राप्ति अलकनन्दा-क्षेत्र से हुई है।

६. कातियुर नरेशों के कुलदेवता कार्त्तिकेय थे। समस्त मध्य-हिमालय में कार्त्तिकस्वामी का एक-मात्र प्राचीनतम देवस्थल अलकनन्दा की दायीं ओर इसी क्षेत्र में है। अवश्य इसी देवस्थल के समीप कहीं उनकी राजधानी रही होगी। कत्यूर-घाटी में 'कार्त्तिकेयपुर' नाम तो क्या उससें मिलता-जुलता स्थल- नाम भी नहीं मिलता।

७. प्राकृतिक एवं मानवीय शक्तियों ने इस नगर को बार-बार आतंकित किया था। परन्तु कभी इनके विनाशकारी वेग ने अंततः इसको पूर्णतः मिटा दिया। यद्यपि ये शक्तियाँ राजधानी के समीप अवस्थित कार्त्तिकेयपुरीय शासकों के कुलदेवता 'कार्त्तिकस्वामी' के नाम को न मिटा सकीं। जोशीमठ से लेकर गोपश्वर क्षेत्र में भी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्राकृतिक शक्तियों की विनाशक उथल-पुथल आज भी देखी जा सकती है। इस समस्त क्षेत्र में मिल रहे पुरातत्त्व-अवशेष इस स्थल को स्वतः ऐतिहासिक गरिमा प्रदान करते हैं। इन पुरावशेषों का काल बैजनाथ के पुरावशेषों से अधिक प्राचीन है।

८. अलकनन्दा-घाटी में कार्त्तिकेयपुर की स्थिति प्रमाणित करने के लिए कातियुर-ताम्रशासनों में वर्णित स्थान-नामों का अभिज्ञान अधिक सहायक सिद्ध हुआ। इनमें से कुछ स्थान-नाम द्रष्टव्य हैं :

	पुरा स्थान- नाम	वर्तमान स्थान से एकता
१.	तलसारिका (ल २४)*	'दुर्म्मोर्गविषये' (पं. १६)। तलसारी (तल्ला कालीफाट)।
२.	नगर-पर्व्वत (ल २४)	'दुर्म्मोर्गविषये' (पं. १६)। नगरकोट = कुमड़ी (सिलगढ़, टिहरी गढ़वाल)।
३.	अर्क्कस्थल (ल २४)	यहाँ आदित्यमंदिर (पं. २०)। पट्टी बण्ड में अगथल (?), परन्तु अधिक सम्भावना मन्दाकिनी-लस्तर संगम पर 'सूर्यप्रयाग' से है जो तलसारिका और नगर-पर्व्वत के निकट है।
४.	गोरुन्नासा (ल २१)** = गोरुन्नसारी (कीलहॉर्न का पाठ)	कार्त्तिकेयपुर विषये में (पं. १६)। गोरणा (त०, ऊषीमठ)।
५.	थप्पलसारि (ल २२)	'कार्त्तिकेयपुर-विषये' (पं. १७)। फरसारी (मल्ला, दशौली, त. चमोली) अथवा परसारी (जोशीमठ से कुछ आगे धौली-घाटी में)। "एक प्रशासनिक इकाई" (दि. चं. सरकार)।
६.	गरुडाग्राम (ल २२)	पाखी, गरुडगङ्गा तटीय (तल्ला पैनखण्डा, त. जोशीमठ)। यहाँ के नारायण मन्दिर को भूमिदान।
७.	बदरिकाश्रम (ल २२, पद्मट)	बदरीनाथ तीर्थ (मल्ला पैनखण्डा)।
८.	बदरिकाश्रमीय-तपोवन (ल २२)	तपोवन = ढाक - तपोवन (धौली तटवर्ती, भविष्यबदरी के समीप)।
९.	टङ्गणापुर-विषय (पद्मट, सुभिक्ष)	टंगणी-ग्राम और योशि (जोशीमठ) इसमें सम्मिलित थे। यह विषय 'कार्त्तिकेयपुर-विषय' के उत्तर में स्थित था।
१०.	द्रुमती (पद्मट)	दरमी और उसका पडोसी क्षेत्र (तल्ला पैनखण्डा, त. जोशीमठ)। 'टङ्गणपुर-विषय-प्रतिबद्ध', टंगणपुर-विषय का एक उप-विभाग (पं. १७)। द्रुमती नदी का नाम पाणिनि-महाभाष्य में मिलता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पुरा स्थान- नाम	वर्तमान स्थान से एकता
११. योशि (पद्मट)योषि-कर्म्मान्त (सुभिक्ष)	जोशीमठ (मल्ला पैनखण्डा)। यह भी टंगणपुर-विषय का ही उप-विभाग था (दि. चं. सरकार)।
१२. गङ्गा (पद्मट, सुभिक्ष)	अलकनन्दा । 'योशि-प्रतिबद्धा-गङ्गा' (पद्मट, पं. १८)।
१३. काकस्थलिका- ग्राम (पद्मट)	कागा-जुमा, तपोवन के समीप (मल्ला पैनखण्डा, त. जोशीमठ)। द्रुमती उप-विभाग में (पं. १६) ।
१४. रंधवक-ग्राम (पद्मट)	'योशि-प्रतिबद्ध' (पं. १६)।
१५. सुभिक्षपुर (सुभिक्ष)	सुभाईग्राम (?), ढाक-तपोवन के समीप (मल्ला पैनखण्डा,त. जोशीमठ)।
१६. विष्णुगङ्गा (सुभिक्ष)	विष्णुगङ्गा = अलकनन्दा के उपरले भाग का नाम, जिसमें धौली मिलती है।
१७. वनोलक (सुभिक्ष)	बनला (मल्ला दशौली, त. चमोली)।
१८. रव्व-पल्लिका (सुभिक्ष)	रवि-ग्राम (मल्ला पैनखण्डा, त. जोशीमठ)।
१६. चडवक/रडवक (सुभिक्ष)	रडवा। नागनाथ-पोखरी के समीप।
२०. मठिका (सुभिक्ष)	मठ,अलकनन्दा = गङ्गा के दक्षिण तटस्थ (मल्ला दशौली, त. चमोली)।

* ल २४ = ललितशूरदेव का २४ वें राज्यवर्ष का ताम्रपत्र। तदनुरूप अन्य संकेत हैं। त.= तहसील।

** 'गोरुन्नासा' और उससे अगले नाम दि. चं. सरकार के पाठ पर आधृत है (एपि. इं., ख़ण्ड ३१)।

देसटदेव के बालेश्वर- ताम्रपत्र को छोड़कर, कार्त्तिकेयपुर से निर्गत ताम्रशासनों के जितने स्थल-नामों का अभिज्ञान हो सका है, वे जोशीमठ के सन्निकट हैं अथवा अलकनन्दा-मन्दाकिनी उपत्यकाओं में। इनमें से तलसारी, अंगथल, गोरणा, फरसारी, दरमी, जोशीमठ, सुभाईं, रवि- ग्राम, बनला, इत्यादि अधिकांश स्थल शतियों से अब तक श्रीबदरीनाथ मन्दिर से सम्बद्ध अग्रहार-ग्राम (=गूँठ) के रूप में चले आ रहे हैं।[१७] अतएव अभिलेखों में वर्णित स्थान- नामों का अध्ययन भी अलकनन्दा-घाटी में आदि कार्त्तिकेयपुर सिद्ध करता है।

६. कातियुरवंशीय पद्मटदेव के पाण्डुकेश्वर-ताम्रपत्र (एपि० इं०, ३१, पृ० २८४-२६०) में 'कार्त्तिकेयपुर' तथा 'योशि' नाम पृथक्तः आये हैं। राजधानी कार्त्तिकेयपुर से यह ताम्रपत्र निर्गत हुआ है (पं० १) तथा योशि को टंगणपुर-विषय के अन्तर्गत बताया गया हैं (पं

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१८)। यतः कार्त्तिकेयपुर-विषय टङ्कणपुर-विषय का दक्षिणवर्ती पड़ोसी था। अतः राजधानी कार्त्तिकेयपुर अवश्य ही योशि= जोशीमठ नहीं हो सक्ती, प्रत्युत उसके दक्षिण में गोपेश्वर से लेकर कार्त्तिकस्वामी देवस्थल तक कहीं अवस्थित थी।

४.
वैद्यनाथ-कार्त्तिकेयपुर

उत्तरकालीन कातियुरों द्वारा कार्त्तिकेयपुर को त्यागने का कारण या तो अनेकमल्ल अथवा क्राचल्लदेव जैसे प्रबल शत्रुओं के प्रहार थे, जैसा कि राहुलजी की कल्पना है (कुमाऊँ, पृ. ६५), अथवा इन आक्रमणों से पूर्व ही भूस्खलन से इस राजधानी का विनाश है। कार्त्तिकेयपुर के विनष्ट हो जाने पर, कातियुर नरेशों को जब पूर्व की ओर गोमती-घाटी में संक्रमित होना पड़ा, अनुश्रुतियों के अनुसार, तब उन्होंने प्राचीन नगर करवीरपुर के अवशेषों पर वैद्यनाथ में नयी राजधानी का निर्माण किया और, अनुरागवश अपनी पूर्व राजधानी के नाम पर ही नयी राजधानी का नामकरण किया। पृथक्ता हेतु उसे 'वैद्यनाथ-कार्त्तिकेयपुर' भी कहते रहे। उत्तरकालीन कातियुर नरेश लखनपालदेव (१०६७ई०) एवं त्रिभुवनपालदेव के बैजनाथ-शिलालेखों में *'वैद्यनाथ- कार्त्तिकेयपुर'* नाम अंकित है।[१८] इसके अवशेष आज अलमोड़ा जनपद में तैलीहाट, बैजनाथ और कोट में पाये जाते हैं। अतएव डॉ० दि. चं. सरकार[१९] की यह सम्भावना कि "कार्त्तिकेयपुर का नाम कत्यूर का संस्कृतीकृत रूप है," संगत नहीं है।

पीछे पश्चिमी नेपाल का अधिपति प. म. प. क्राचल्लदेव अपने बालेश्वर-ताम्रपत्राभिलेख (शाके ११४५ = १२२३ ई०) में 'कीर्तिपुर' पर अधिकार की घोषणा करता है। यह कीर्तिपुर वैद्यनाथ-कार्तिकेयपुर ही है।

संदर्भ

१. कनिंघम आ० स० रि०, खण्ड २, शिमला, १८७१, पृ० ७३-८०।

२. प्रयाग जोशी, 'कत्यूरी गाथायें' (पर्वतीय इतिहास परिषद् की शोध-पत्रिका, प्रथम अंक, नैनीताल, १६७२ ई०, पृ० ७६); डॉ० मदन चन्द्र भट्ट, "कार्त्तिकेयपुर का खस राज्य" (स्टडीज, अंक ३, नैनीताल, १६६६) तथा हिमालय का इतिहास, भाग १, गोपेश्वर, वि० सं० २०३८, पृ० १६, ६७-६८ और ८३; कठोच, मध्य हिमालय का पुरातत्त्व, वि० सं० २०३८, पृ० १५०।

३. गैरोला, ता.द., हिमा० फॉकलोर, १६३५, पृ० १२; डबराल, शि० प्र०, उत्तराखण्ड का राज० तथा सांस्कृ० इति०, भाग ३, वि० सं० २०२६, पृ० ४४२ और भट्ट, म० चं०, स्टडीज, तत्रैव, तथा हिमा० का इति०, भाग १, पृ० ५३-५४।

४. 'खश' शब्द शुद्ध है। यद्यपि 'खस' तथा 'खष' रूप भी मिलते हैं। गढ़वाल-कुमाऊँ में स्थानीय उच्चारण 'खश' ही है। परन्तु कार्त्तिकेयपुर से निर्गत ताम्रपत्रों में 'खश' के स्थान पर 'खष' का प्रयोग

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वर्ण-विन्यासीय त्रुटि है। प्रयाग-प्रशस्ति जैसे शुद्ध संस्कृत लेख में भी 'षाहि' शब्द में 'ष' का प्रयोग द्रष्टव्य है।

५. **पर्वतीय इति० परिषद्** की शोध पत्रिका, प्रथम अंक, पृ० ३२-३५।

६. 'टङ्गणापुर-विषय' के लिए देखिए, पद्मटदेव एवं सुभिक्षराजदेव के **पाण्डुकेश्वर ताम्रपत्राभिलेख** (एपि० इं०, ३१)।

७. प्राचीन भारतीय साहित्य में खशों के साथ तङ्गणों का उल्लेख देखिए : 'खसा कुलिन्दाश्च तङ्गणा' (**महाभा०**, सभा०, ५२.३); 'कुपथास्तङ्गणाः खशाः' (वामनपु०, ब्रह्माण्डपु०); पारदांस्तङ्गणान् खसान् (वायुपु०)।

८. राहुल, **गढ़वाल**,, पृ० ६५-६६ तथा १०१-१०६।

९. लेखक ने जनवरी १९७६ में इस शिलालेख की खोज की थी। मूल पाठ के महत्वपूर्ण अंश द्रष्टव्य हैं:
१. [स्व] स्ती स्री [।।]* कातियुर' - स्री- महाराज [.......] स्रीज-
२. तवालदेव-स्री-कसाणी-राणि.........।।

१०. राजधानी कार्त्तिकेयपुर के नाम पर इस राजवंश के नामकरण की सम्भावना पादरी ई० एस० ओकली ने भी स्वीकार की थी (**होली हिमालया**, १९०५ ई०, पृ० ९८)। द्र०, जे० सी० पावेल-प्राइस (ज०यू०पी०हि०सो०, ४(२), पृ० ११) भी।

११. अग्रवाल, वा०, **पाणिनिकालीन भारतवर्ष**, वाराणसी, द्वि० सं०, १९६९ ई०, पृ० ८५।

१२. एट्किन्सन, **हिमालयन गजेटियर** (पुनर्मुद्रित सं०), २(१), पृ० ४४९, ४५५, ४५७, ४६७।

१३. पूर्वोक्त पृ० ४६८।

१४. **प्रोसी० ए० सो० बं०**, मार्च १८७७, पृ० ७२।

१५. प्रो० कीलहॉर्न (इं० ऐंटि०, २५, १८९६); सी० एफ० ओल्डहैम (ज० रा० ए० सो०, १८९८); ओकली, (**होली हिमालया**), पृ० ९८); गुप्ते (एपि० इं०, खण्ड १३, १९१५-१६); ब०द० पाण्डे (**कु०इ०**, १९३७ पृ० ९०); दि०चं० सरकार (एपि० इं०, ३१(६), १९५५-५६, और **दि एज ऑव् इम्पिरिअल कन्नौज**, पृ० १२३-२४); जे०सी० पॉवेल- प्राइस (**ए हिस्टॅरि ऑव् इंडिया**, १९५५, पृ० ७२); कां० प्र० नौटियाल (आर्किअॅलॅजि ऑव् कुमाऊँ, १९६९); मदन चन्द्र भट्ट (राजेन्द्र.लाल मित्र के आधार पर, प० इति० परि० की शोध पत्रिका, १९७२, पृ० ३०, **हिमा० इति०** १९८१, पृ० ३५); ताराचन्द्र त्रिपाठी (पहाड़ - १, १९८३, पृ० १८)।

१६. कार्त्तिकेयपुर की एकता जोशीमठ से माननेवाले विद्वानों में प्रमुख हैं: राहुल सांकृत्यायन (**गढ़वाल**,पृ० ५६, १०४ और कुमाऊँ, पृ० ५६)। इस मत का समर्थन डॉ० शि० प्र० डबराल ने किया है (**उत्तराखण्ड का इतिहास**, भाग ३ पृ० ४४८, ४६२)।

१७. अभिलेखीय स्थान-नामों के अभिज्ञान के लिए मात्र नाम-साम्य खोजना ही पर्याप्त नहीं है। अग्रहार-ग्रामों की पुरानी सूचियों का अवलोकन करना भी अपेक्षित है। जुलाई १९६५ ई. से देवमन्दिरों को जीवित रखनेवाली गूँठ- व्यवस्था का उन्मूलन हो चुका है।

१८. सांकृत्यायन, राहुल, कुमाऊँ, संवत् २०१५, पृ० ६५ तथा ६७।

१९. **दि एज ऑव् इम्पिरिअल** कन्नौज, पृ० १२४; **भारतीय विद्या**, १२. १९५१ **ई०**, पृ० १५०; **एपि० इं०**,३१. पृ० २७९।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दशम अध्याय

बावन गढ़- गाथा

१.

ऐतिहासिक महत्व

मध्य-हिमालय में कार्त्तिकेयपुर - नरेशों[१] की शक्ति का ह्रास जब लगभग ग्यारहवीं शती ईसवी के अन्तिम दशकों में द्रुत गति से प्रारम्भ हो गया तब गढ़वाल हिमालय में ठकुरी शासन के लम्बे युग का उदय हुआ। एक केन्द्रीय सत्ता के अभाव के कारण इसे 'बहुअराजकता' का युग भी कहा जा सकता है। परन्तु कार्त्तिकेयपुर - शक्ति का विच्छेद, ठकुराइयों का उदय, क्रमशः पँवार राजवंश का उत्थान, इत्यादि महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाएँ होने पर भी वे तमाच्छन्न होने से यह काल गढ़वाल के इतिहास का 'अन्धकार युग' बन गया है। हमें ज्ञात है कि इन बहु छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों (ठकुराइयों) में से पँवार भी एक थे। उनकी शक्ति के केन्द्र तथा उनके राज्य-प्रसार की प्रारम्भिक घटनाओं को बतलानें के लिए गढ़ों का अध्ययन आवश्यक है। कनकपाल की ही नहीं, कनकपाल से अजयपाल तक के पँवार-नरेशों की ऐतिहासिकता भी गढ़-शोध से ही स्पष्ट हो सकती है।

इसके अतिरिक्त, गढ़ों का अध्ययन इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि लगभग तीन शतक से अधिक दीर्घकाल के इसी 'अन्धकार युग' में गढ़वाल की उस भाषा तथा संस्कृति, उन संस्थाओं तथा परम्पराओं एवं मैदान से आश्रय के लिए नये आये राजपूत राजवंशों से उस सम्पर्क तथा समन्वय का विकास हुआ, जिसका अविच्छन्न प्रभाव यहाँ आज तक दिखायी देता है।

गढ़ों पर ठकुरी शासन, यह बात नहीं कि बारहवीं शती के प्रारम्भिक दशकों के आसपास

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ही स्थापित हुआ हो। कुणिन्द तथा कुषाणों के काल में भी, मध्य हिमालय में जो छोटे - छोटे राजवंश शासन करते थे वे भी अपने सामन्तों सहित इन्हीं गढ़ों के आश्रय में रहते थे। यही नहीं, मध्य-हिमालय को आर्यों का आदिस्थान माननेवाले विद्वान्[2] तो इन गढ़ों की प्राचीनता को वैदिक युग तक ले जाते हैं। उनके अनुसार, शम्बर असुर के निन्नानबे दुर्ग-नगर यही गढ़ थे। ऋग्वेद(१.५४.६) में उल्लेख है कि 'इन्द्र ! तुमने शम्बर के निन्नानबे नगरों का विनाश किया' (त्वं पुरोनवतिं दम्भयो नव)। उसमें यही घटना अन्यत्र (२.१६.६; ७.१६.५, आदि) भी बारंबार कही गयी है। अतएव मध्य-हिमालय के 'आद्य इतिहास' के लिए भी इनके अध्ययन का महत्व है।

२.
परम्परागत प्रधान गढ़

एडविन टी. एट्किन्सन के 'हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स' (१८८४), आलम सिंह राणा के 'गढ़वाल - भूगोल', हरिकृष्ण रतूड़ी के 'गढ़वाल वर्णन' (१६१०) तथा शालिग्राम वैष्णव के 'भूगोल जिला गढ़वाल' (१६२७) में प्रसंगवशात् कुछ गढ़ों का उल्लेख - मात्र तो हुआ था, परन्तु बावन गढ़ों की सूची सर्वप्रथम हरिकृष्ण रतूड़ी ने अपने गढ़वाल के इतिहास (१६२८) में प्रकाशित की। आगे, लेखक उन्हीं गढ़ों को प्रधान बावन गढ़ मानते रहे। जबकि रतूड़ी स्वीकार करते थे कि इन बावन गढ़ों के अतिरिक्त और भी छोटे-बड़े गढ़ अधिक संख्या में थे[3]।

अपनी अनुसंन्धान-यात्राओं में मुझे उक्त सूची से प्राचीनतर दो नयी गढ़-सूचियाँ मिल गयीं। प्रथम, कँसवा (चाँदपुर) से तथा द्वितीय, जाख (ग्यारहगाँव) से। प्राचीनता तथा अधिक नामों के कारण ही नहीं, सबसे बढ़कर, 'एक निश्चित वर्णनक्रम' के कारण ये अधिक महत्वपूर्ण सूचियाँ हैं। इनमें से 'चाँदपुर-सूची' (छाया-अनुकृति सं० ७) को सम्पादित कर नीचे दिया जा रहा है, ताकि गढ़ों के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा नये निष्कर्षों पर पहुँचने में सहायता मिल सके।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(१) चाँदपुर - सूची

(वि0 संवत् १८३२ का हस्तलेख)

क्रम सं0	गढ़ का नाम	स्थिति परगना, पट्टी	ठकुरी जाति	गढ़ सम्बन्धी विवरण
१.	चाँदपुरगढ	चाँदपुर, तैली चाँदपुर	?, पँवार	खश गढपति सूर्यवंशीय भानुप्रतापपाल की राजधानी । पुनः पँवार राजवंश के संस्थापक कनकपाल की राज. । वंशावलियों के अनुसार, अजयपाल तक यहाँ ३७ पँवार - नरेशों ने शासन किया ।
२.	चौंडागढ	चाँदपुर, शीली चाँदपुर	चौंडाल	ऐतिहासिक लोकोक्ति : "तोपालों की तोप-ताप चौण्ड्यालूँ को राज" ।
३.	तोपगढ	चाँदपुर,	तोपाल	प्रतापी गढ़पति तुलसिंह जिसने तोप ढलवायी थी ।
४.	राणिगढ	चाँदपुर, राणीगढ़	खाती	
५.	कोलपुरगढ (कौलापुरगढ़*)	चाँदपुर, लोहबा	?	वर्णनक्रम से यह कोब ग्राम से ऊपर का "कौनपुरगढ़" ज्ञात होता है,जहाँ प्राचीन ध्वंसावशेष फैले हैं। कहते हैं, यही कनकपाल का गढ़ था ।
६.	बधाणगढ	बधाण,	बधाणी	पिण्डार नदी के किनारे स्थित ।
७.	लहुबागढ (लोहबागढ)	चाँदपुर, लोहबा	लौहबाल नेगी (चाहमान)	रामगंगा की बायीं ओर । नदी से लम्बी सुरंग के चिह्न । दिलेवर सिंह तथा प्रमोद सिंह यहाँ के प्रतापी गढ़पति ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१	२	३	४	५
८.	जोन्यगढ	अजमीर पल्ला	?	सेनापति माधोसिंह भण्डारी ने प्रथम युद्ध में जोन्यागढ़ जीता (जाख ग्राम में उसके वंशजों के एक लेख के अनुसार)। अपर पाठ - जूनागढ़, जून्यागढ़, जुनियागढ़।
९.	ईडियागढ	रवाईं, बड़कोट ?	इडिया	रतूड़ी के अनुसार, रवाईं का यह गढ़ किसी रूपचन्द नामक ठाकुर द्वारा विनष्ट। परन्तु वर्णनक्रमानुसार इसकी स्थित चाँदपुर में होनी चाहिए। कर्णप्रयाग से नौटी मोटर-मार्ग पर मजियाड़ा गाँव है। गाँव के पास ही के टीले पर जहाँ प्राचीन ईड़ा-बधाणी गाँव था, वहीं ईड़ागढ़ स्थित था।
१०.	धन्यागढ [र., धौनागढ]*	इडवालस्यूँ	धौन्याल	...
११.	साबलीगढ	(मल्ला सलाण)**, साबली	?	..
१२.	गुजडगढ (गुजड़ूगढ)	(मल्ला सलाण), गुजड़ू	?	तलहटी पर स्थित सीली ग्राम से गढ़ तक सोपानयुक्त सुरंग। गढ पर छः-सात घेरे में गहरी खाइयाँ तथा दुर्ग के ध्वंस विद्यमान हैं।
१३.	बदलपुरगढ	(तल्ला सलाण), बदलपुर	?	...
१४.	दसोलीगढ	दशौली	?	प्रतापी राजा मानवर का गढ़।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१	२	३	४	५
१५.	देवलगढ	देवलगढ,	?, पँवार	पूर्व नाम जगत वित्वाल के नाम से जगतगढ़। १२ वीं शती में काँगड़ा-नरेश देवल के नाम से देवलगढ जिसे अजयपाल ने अधीनस्थ कर लिया था(*कनकवंशकाव्य* दो, १३.६०)। परन्तु देवल सम्बन्धी इस अनुश्रुति को मैं काल्पनिक मानता हूँ। फतेहशाह के ताम्रपत्र (सं. १७५७) में " देवलगढमण्डल " नाम । मुहम्मद तुगलग के समय इसका "वारंगल" वा "गढवारनगर" नाम (*बिजनौर गजेटियर*)। प्राचीर तथा सुरंग के अवशेष वर्तमान हैं, राजमहल इनसे परवर्ती है। गढ़ पर राजराजेश्वरी प्रतिष्ठित।
१६.	नयालगढ	देवलगड़ कठूलस्यूँ	नयाल	अन्तिम ठाकुर भग्गु। कठलीगढ़ के समीप। फतेपतिशाह के ताम्रपत्र (सं. १७५७) में वर्णित।
१७.	अजेमिरगढ	गंगासलाण, अजमेर	चौहान (पयाल)	इस चौहान गढ़ को हुस्सैनखाँ टुकड़िया ने लूटा था।
१८.	कोलिगढ (कौलीगढ)	देवलगढ,बछणस्यूँ	बछवाण बिष्ट	[र., कोल्लीगढ़]
१९.	लोइगढ	देवलगढ, बछणस्यूँ	?	वर्तमान ल्वैगढ़।
२०.	नवासुगढ	देवलगढ़, बछणस्यूँ	?	यह नवासू ग्राम-सीमा में 'अकालगढ़' ही तो नहीं है?

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१	२	३	४	५
२१.	भूवनागढ (भुमनागढ़) [र.,(५१) भुवनागढ]	देवलगढ,	?	बछणस्यूँगाड के मुख पर वर्तमान 'भुमरागढ़' होगा जिसके ध्वंसावशेष विद्यमान हैं। [र., भुवनागढ़ के पश्चात् (५२) लोदनगढ]
२२.	लोधान्यागढ [र., लोदनगढ़]	?	?	
२३.	हियणीगढ	?	?	...
२४.	डौणीघआनगढ (डोरीगआलगढ़)	?	?	...
२५.	नागपूरगढ	नागपुर,	नागवंशीय	अन्तिम ठकुरी राजा भजन सिंह। गढ पर नाग-देवता का मन्दिर।
२६.	कोटागढ	जौनपर, इडवालस्यूँ	बिष्ट	क्या 'कोटगढ़'? (ह. रतूड़ी, *गढ़वाल वर्णन* पृ० १६०)। 'ग्यारगाँव-सूची' में इस क्रम पर 'कांडागढ़' का उल्लेख है।
२७.	कण्डारागढ(कंडारगढ़)	नागपुर, तल्ली कालीफाट	कण्डारी	दुमागदेश- नरेश मंगलसेन यहाँ का शूर तथा प्रजाप्रिय शासक हुआ जिसे अजयपाल ने जीत लिया था (*रामायणप्रदीप,* १.१६-२०)। रतूड़ी के अनुसार, अन्तिम राजा नरवीर सिंह (*कनकवंशकाव्य* के अनुसार चन्द्रवंशीय हेमचन्द्र) ने किसी पँवार-राजा से विजित होकर मन्दाकिनी में आत्महत्या कर ली थी। गढ-प्राचीर के अंश-मात्र शेष हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१	२	३	४	५
२८	लंगुरगढ	गंगासलाण, लंगूर	असवाल	गढ़ में भैरव-मन्दिर होने के कारण अपर नाम 'भैरवगढ़' भी। गढ़ में मात्र सुरक्षा प्राचीर के अंश विद्यमान हैं।
२६.	पावगढ (मावगढ़)	गंगासलाण, अजमीर	असवाल	पाठान्तर - मआब, महाबगढ़। गढ़वाल के प्रधान ७ गढ़ों में से एक बताया जाता है। = मवागढ़ (शा. वैष्णव)। भानद्या वा भानदेव असवाल का गढ़। यहाँ 'माव्देक्ता' (महादेव?) के मन्दिर के कारण अब महादेवगढ़ नाम भी।
30.	इडवालगढ	बारहस्यूँ, इडवालस्यूँ	?	...
३१.	बागडीडगढ (बागगढ) [र., बागगढ़]	गंगासलाण,	बागडी/ बागूडी नेगी	...
३२.	गडकोटगढ (गड़कोटगढ)	गंगासलाण, मल्लाढाँगू	बगड्वाल बिष्ट	...
३३.	खत्रि=रवत्रिगढ़ (रवाईंगढ़)	रवाईं	?	पावर नदी के दायें तट पर। = राईगढ़ वा रावीगढ़। 'खत्रि' लिपिकार की त्रुटि है।
३४.	जौनपुरगढ़ (जौंल्यागढ़)	जौनपुर	?	"जौंलपुरगढ़" (४८) - रतूड़ी।
३५.	फल्याणगढ	बारहस्यूँ, बनेलस्यूँ	?	गढ़पति शमशेर सिंह। उसने इसे फल्याण ब्राह्मणों को दान दिया था। यह जाति अब खोला ग्राम में रहती है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१	२	३	४	५
				गढ़ फल्दाकोट ग्राम के समीप। [र0, "फल्दाकोट परगना में"]
३६.	नैलचामिगढ [र., संगेलागढ़]	(भिल्लंग), नैलचामी	संगेला बिष्ट	स्वाती ग्राम-क्षेत्र में।
३७.	बांगरगढ	(भरदार), बांगर	नागवंशी राणा	मन्दाकिनी की दायीं ओर,लस्तूर तथा डिमार की उपरली घाटी में। राणाओं को कभी खश जाति घिरवाण ने अधीन किया था।
३८.	कटूड़गढ (कठूड़गढ)	चिल्ला, थाती-कटूड़	?	बालगंगा के सबसे उपरले अञ्चल का गढ़।
३९.	भरदरगढ (भरदारगढ़)	(भरदार), भरदार	?	अलकनन्दा की दायीं ओर। तीन ओर से चट्टान, उत्तर से प्रवेश का दुर्गम मार्ग। प्राणदण्ड के बन्दी यहाँ छोड़ें जाते थे।
४०.	चोंदाकोटगढ (चौंदकोटगढ़)	चौंदकोट,	चौंदकोटी	प्राचीरों, खाइयों आदि सहित गढ़ावशेष।
४१.	बनगढ	बनगढ़	?	अलकनन्दा की दायीं ओर अब उजाड़। सम्भवतः इसी गढ़पति के अधीन कभी बाहरस्यूँ की बनगढ़ पट्टी भी थी।
४२.	चीलागढ (चिलागढ़)	चिल्ला,	?	बालगंगा की बायीं ओर। अनुश्रुति के अनुसार सोनपाल का एक गढ़। गढ़ पर राजराजेश्वरीदेवी का प्राचीन मन्दिर। यहाँ खुदाई में राजभवन का ३३x२७ हस्त अधिष्ठान मिला है।
४३.	भिलंगढ(भिल्लंगगढ़)	भिल्लंग, भिल्लंग-सांकरी	पँवार	अनुश्रुति के अनुसार, २४वाँ राजा सोनपाल (मृत्यु संवत् १२१६) यहाँ का शासक था जिसके अधीन बहुल खश राजा थे (एट्., *हि.डि.*, खण्ड २, पृ. ४४६)। अतएव पट्टी का नाम 'सोनी-भिल्लंग' है। गढ़, खाल ग्राम में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१	२	३	४	५
				गँवाणागाड तथा भिल्लांगणा के संगम पर स्थित था।
४४.	हिंदाउगढ़	भिल्लंग, हिंदाव	रावत	चाँजी ग्राम के समीप। कोठे के अवशेष विद्यमान। जल-व्यवस्था जोलागाड से थी।
४५.	कुईलीगढ	(नरेन्द्रनगर), कुइली	सजवाण	भागीरथी की दायीं ओर, कोटग्राम के समीप। अब उजाड़। गढ़ में घण्टाकर्ण का मन्दिर। =जौरासीगढ़ (रतूड़ी, *गढ़वाल वर्णन*, पृ. १८८)।
४६.	सिलगढ	भरदार, सिलगढ़	सजवाण	मन्दाकिनी की दायीं ओर, लस्तूर की निचली घाटी में। अन्तिम गढ़पति सब्ल सिंह सजवाण।
४७.	चम्वागढ (चमवागढ़)	उदयपुर, मन्यार	?	[र., चम्पागढ़ (४६)] भ्रष्ट पाठ।
४८.	भरपूरगढ	(नरेन्द्रनगर), भरपूर	सजवाण	गंगा की दायीं ओर। तैड़ीगढ़ के पश्चिम में ठीक सामने। इसके गढ़पति अमरदेव तथा तैड़ीगढ के गढ़पति की तनया तिलोमा की प्रणय-गाथा प्रसिद्ध है। अन्तिम गढपति गोविन्द सिंह सजवाण।
४९.	मुंजणीगढ़ (कुजिण्यागढ़) [र., कुजणीगढ़]	(नरेन्द्रनगर), कुंजणी	सजवाण	अन्तिम गढ़पति सुल्तान सिंह सजवाण । गढ़ गंगा की दायीं ओर।
५०.	उपुगढ	उदयपुर,	चौहान	गाथा-गीत (पँवाड़ा) के अनुसार, कफ्फु चौहान का गढ़ जिसे महाराजा अजयपाल ने विजित किया । रेणुकागढ़ पृथक् गढ़ था।
५१.	मुँगरागढ	रवाईं, मुंगरसंती	रावत	तीन ओर से यमुना का प्रवाह, तथा दक्षिण से चट्टान काटकर चढ़ने हेतु सोपान बने हैं। गढ़ पर अब उन्हीं रौतेला ठाकुरों के घर हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१	२	३	४	५
५२.	रैकागढ	(प्रतापनगर**), रैका	रमोला (चौहान)	भागीरथी के वाम पार्श्व में, सिरईं के सामने। अब उजाड़ दशा में है। उप्ली रमोली में एक ग्राम का नाम "रैका"।
५३.	चोलागढ [र., मोल्यागढ]	(प्रतापनगर), रमोली	रमोला (चौहान)	मोल्या ग्राम के समीप, अब उजाड़। गढ़पति घाँगू रमोला का गढ़। ग्यारहगाँव-सूची में रैकागढ के पश्चात् इस क्रम पर " नालागढ़ " का नाम हैं जो अशुद्ध है।
५४.	पेनखंडागढ	पैनखण्डा	बुठेर ?	टिहरी गढवाल राज्य अभिलेखागार के एक हस्तलेख के अनुसार, पैनखण्डा क्षेत्र में ४२ जुम्ला गढ़पतियों ने संवत् १३२७ से १३७८ तक शासन किया। दुर्ग-प्रासाद की चौड़ाई २३ हस्त, तथा भित्तियाँ तीन हस्त मोटी हैं। पश्चिम में अलकनन्दा। गढ़ में राजराजेश्वरी स्थापित।

* द्वितीय स्तंभ में, कोष्ठक में लिखित गढ़ों के अधिकांश पाठ "ग्यारहगाँव -सूची" से हैं, परन्तु कुछ [र. से निर्दिष्ट] 'रतूड़ी की सूची' से दिये गये हैं।

** तृतीय स्तंभ में, कोष्ठकांकित स्थान-नाम आधुनिक परगनों के हैं। उससे आगे अंकित पट्टियाँ पूर्वकाल में किसी परगनें में नहीं थीं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जवाव: ——— छोटि२ ठकुरी ५२ वावनथे

१६ सवाल ——— ५२ राजाके गढ़ कौन स्थान कहां२ था

जवाव ——— चांदपुरगढ़[१] चौंडागढ़[२] नोपगढ़[३]
रारिगढ़[४] कोलपुरगढ़[५] दधारागढ़[६]
लंगूरगढ़[७] जोन्यगढ़[८] ईडियागढ़[९]
धन्यागढ़[१०] सावलीगढ़[११] गुजड़गढ़[१२]
वदलपुरगढ़[१३] दसोलीगढ़[१४] देवलगढ़[१५]
नयालगढ़[१६] अजेमिरगढ़[१७] कोलिगढ़[१८]
लोदगढ़[१९] नवासुगढ़[२०] भूवनागढ़[२१]
लोधान्यागढ़[२२] द्वियरागिगढ़[२३] डोरी
घआनगढ़[२४] नागपूरगढ़[२५] कोटागढ़[२६]
कंडारागढ़[२७] लैशुरगढ़[२८] पावगढ़[२९]
इडवालगढ़[३०] वागढीडगढ़[३१] गडकोट[३२]
गढ़ खत्रिगढ़[३३] जौनपुरगढ़[३४] फल्या
णगढ़[३५] नैलचामिगढ़[३६] वांगरगढ़[३७] कड्
डगढ़[३८] भरदरगढ़[३९] चौंदाकोटगढ़[४०]
वनगढ़[४१] चीलागढ़[४२] भिलंगगढ़[४३] हिं
दाउगढ़[४४] कुईलीगढ़[४५] सिलगढ़[४६]
चम्पागढ़[४७] भरपूरगढ़[४८] मुंगरागिगढ़[४९]
उपुगढ़[५०] सुंगरागढ़[५१] रैकागढ़[५२] चोला
गढ़[५३] पैनखंडागढ़[५४] ———

चित्र - ७. परम्परागत गढ़-सूची, वि०सं० १९३२.

चाँदपुर-सूची. आकार : २६.५ X १७.८ सेंटी_ मी०. छायानुकृति.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(२) ग्यारहगाँव - सूची

(जो गढ़ 'चाँदपुर-सूची' में नही है)

क्रम सं0	गढ़ का नाम	स्थिति परगना, पट्टी	ठकुरी जाति	गढ़ सम्बन्धी विवरण
५.	सिरगुरगढ़	चाँदपुर, सिरगुर	?	ह. रतूड़ी ने 'श्रीगुरुगढ़' को सलाण में, पडियार वा परिहार जाति का बताया है जिसका अन्तिम गढपति विनोद सिंह था (पृ. ३२६)। परन्तु इस सूची में यह जिस क्रम पर है उससे चाँदपुर में होना सिद्ध होता है । नेगी के अनुसार भी, पुराना गढ़ भगोटी ग्राम के ऊपर था (*हिमालयन ट्रेवेल्स,* पृ.५०)।
२१.	काण्डागढ़	बारहस्यूँ, रावतस्यूँ	रावत	'चाँदपुर-सूची' में यहाँ पर 'कोटागढ' का नाम है। रतूड़ी की सूची में अजमीरगढ़ के पश्चात् कांडागढ़(४०)।
३०.	ढाँगूगढ़	(गंगासलाण), ढाँगू	?	इसका गढ़पति ढाँगू की वर्तमान तीनों पट्टियों का ठकुर रहा होगा।
५४.	नालागढ़	देहरादून	?	वर्तमान नालागढ़ी। अपर नाम -"खलंगढ़ी"। 'चाँदपुर-सूची' में यहाँ पर 'चोलागढ' नाम है तथा रतूड़ी की सूची में मुंगरा, रैका के पश्चात् मोल्यागढ़। अस्तु 'नालागढ़' अशुद्ध पाठ प्रतीत होता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अब परम्परागत प्रधान गढ़ों की अन्वेषित उक्त सूचियों तथा रतूड़ी की सूची की तुलना करें। 'चाँदपुर सूची' में ५४ तथा 'ग्यारहगाँव सूची' में ५५ गढ़ों का उल्लेख है। पहली में उल्लिखित (२६) कोटागढ़, (५३) चोला/मोल्या-गढ़ तथा (५४) पेनखण्डागढ़ दूसरी में नहीं हैं। इसी प्रकार, दूसरी के (५) सिरगुरगढ़, (२७) काण्डागढ़, (३०) ढाँगूगढ़ और (५४) नालागढ़ पहली में नहीं आये हैं। परन्तु, दोनों सूचियों में गढ़ों का 'क्रम' समान है (मात्र नैलचामीगढ़ द्वितीय सूची में ५५ वें क्रम पर है) तथा दोनों चाँदपुरगढ से प्रारम्भ होती हैं। ज्ञात होता है कि दोनों सूचियों का आधार कोई प्रचलित प्राचीन 'पँवाड़ा' (वीरगीत) था। निश्चय ही, ऐसा 'पँवाड़ा' होना भी चाहिए था। कहीं जो न्यूनाधिकता तथा पाठान्तर मिलते हैं, वे कालान्तर में पँवाड़ा- गायकों अथवा प्रतिलिपिकारों के द्वारा हुए होंगे। नयी खोजी गयी दोनों सूचियों में ५८ (अट्ठावन) गढ़ों का वर्णन है।

'रतूड़ी की सूची' के ग्यारह गढ़ _ (३) बदरीनाथ-मार्ग पर **रवाड़गढ,** (१५) रवाईं की अढोर पट्टी में राणाओं का **साँकरीगढ़,** (१६) शिमला-पर्वतों में राणाओं का **रामीगढ,** (१७) जौनपुर में रावतों का **बिराल्टागढ़,** (२८) कुजणी में ब्रहापुरी के ऊपर धमादा जाति (चाहमान-शाखा) का **रतनगढ,** (२६) श्रीनगर के समीप ऊँचाई पर (?) **एरासूगढ़,** (३४) पट्टी टक्नोर में कोपाड़. से आगे जाडगंगा तटीय **गड़ताड़. गढ़,** (४५) जौनपुर में **जौंटगढ़,** (४७, ५२) अज्ञात स्थिति वाले **लोदगढ़** तथा **लोदनगढ़,** और (५०) रूपिन के उपरले अञ्चल में पट्टी क्वार (अब बिशहर में) में राणाओं का **डोडराक्वाँरगढ़** - यद्यपि उक्त दोनों नयी सूचियों में नहीं हैं, तथापि 'रतूड़ी की सूची ' पँवाड़ों में बँधी 'वर्णनक्रम की परम्परा' से दूर है। इस प्रकार, परम्परागत प्रधान गढ़ों की संख्या ६९ (उनहत्तर) हमें पहले से प्राप्त है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३.
अवशिष्ट गढ़-सूची

क्रम सं०	गढ़ का नाम	स्थिति परगना, पट्टी	ठकुरी जाति	गढ़ सम्बन्धी विवरण
१.	कनारागढ़	पैनखण्डा	?	एक 'भड़्याला' में गढ़पति शान्तनदेव की शौर्य-गाथा का वर्णन।
२.	जाखीगढ़	बधाण	?	एक 'पँवाड़े' में महीपतिशाह के काल में वर्णित।
३.	नागणीगढ़	नागपुर	?	शा. वैष्णव द्वारा वर्णित (*भू. गढ़.*, पृ. २६)।
४.	बोगागढ़	नागपुर, मल्ला कालीफाट	?	ग्राम जाल मल्ला में अवस्थित । दुर्ग-प्रासाद के ध्वंस ४२x४२ मीटर विस्तार में हैं जिसमें लगभग ४० कक्ष हैं। वास्तविक नाम 'बुंगा' अथवा 'बोंगागढ़' प्रतीत होता है।
५.	अकालगढ़	देवलगढ़, बछणस्यूँ	?	नवासू ग्राम-क्षेत्र में। क्या चाँदपुर-सूची का 'नवासुगढ़' ?
६.	कठलीगढ़	देवलगढ़, कठूलस्यूँ	कठेला रावत या कठोच	कठली ग्राम के समीप राजप्रासाद के ध्वंसावशेष हैं। = रानीगढ़। अंतिम सामन्त हरकसिंह कटोच, जो मेदनीपतिशाह के श्वसुर काँगड़ा- नरेश का वंशज था (*कर्मभूमि,* २७ अप्रैल तथा ४ मई, १९५४)।
७.	उल्खागढ़ी	" , कठूलस्यूँ	?	के सामने वनावृत पहाड़ी पर। खाइयाँ शेष हैं। गढ़ पर उल्कादेवी स्थापित।
८.	रानीगढ	बारहस्यूँ,	?	अदवाणी पर्वत पर (वाल्टन, *गजे० गढ़०* पृ. १४०)।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१	२	३	४	५
९.	तैड़ीगढ़	,बणेलस्यूँ	तड़ियाल	व्यास चट्टी के ठीक ऊपर तिगन्या-का-डाँडा पर। तैड़ीगढ़ के गढ़पति की कन्या तिलोगा और भरपूर गढ़पति- अमरदेव सजवाण की प्रणयकथा प्रसिद्ध है।
१०.	गोविणगढ	चौंदकोट,	गोविणा रावत	इस गढ़ में बसने के कारण गोविणा रावत (बा. भट्ट, *जातिप्रकाश*, पृ. १४०) गबिनी-का-डाँडा पर स्थित।
११.	क्षेत्रगढ़	,कोलागाड	?	एक दुर्गम गढ़। मोटी प्राचीर जिस पर शताधिक कक्षों की पंक्तियाँ बनी हैं। कक्ष अब ध्वंस रूप में हैं।
१२.	नौगढ़	गंगासलाण,	?	"नौगढ़-का-डाण्डा" (शा. वैष्णव, *भू. गढ़.*)।
१३.	मवाकोट	"	?	कोटद्वार के पश्चिम में ५ मील पर।
१४.	घुघतीगढ़	गंगासलाण, उदयपुर मल्ला	?	डाण्डामण्डल में। शा. वैष्णव का 'डाण्डामण्डल'।
१५.	ज्यूँदाल्यूँगढ़	?	?	...
१६.	उमटागढ़	,बूँगी	?	तीलू रौतेली द्वारा विजित।
१७.	खैरागढ़	रामगंगा के किनारे	?	कालागढ़ के समीप गढ़वाल की सीमा पर। तीलू रौतेली द्वारा विजित।
१८.	मडवालगढ़	-	?	महाराजा मानशाह का देवप्रयाग शिवमं. द्वार-लेख (संवत् १६६७)।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१	२	३	४	५
१९.	मलुवाकोट	–	पँवार	१७ वें पँवार राजा अनन्तपाल प्र.(मृत्यु सं. ११२६) की राज. (*एट्0, २,* पृ. ४४६)।
२०.	अम्बुवाकोट	–	पँवार	२१ वें पँवार राजा विक्रमपाल (मृत्यु सं0 ११८८) की राज0 (*एट्0, पूर्वोक्त*)।
२१.	बुटौलगढ़	हरिद्वार के समीप	बुटोला रावत (पँवार)	नैनसिंह पण्डित सी.आई.ई. की हस्तलिखित आत्मकथा के अनुसार, पँवारवंशीय कुछ लोग धारा से यहाँ आये और बुटौला रावत कहलाये (पाण्डे, *कु. इति,* पृ0 ७४)।
२२.	मोरध्वजगढ़	तराई	?	हिमालय के पाद-प्रदेश में। कोटद्वार के द. में। मुसलमान लेखकों का 'मुनावर तूर'।
२३.	साँकरीगढ़/थातीगढ़	(भिल्लंग), साँकरी	संकरियाल	थाती-साँकरी का अपर नाम रगड़ी। साँकरी ग्राम में सम्प्रति संकरियाल जाति के लोग हैं। सामंतीगढ़।
२४.	गोनगढ़	चिल्ला, गोनगढ़	गोनाल	गोना ग्राम के पास गढ़-अवशेष विद्यमान। गढ़ में दुध्याड़ीदेवी का मन्दिर।
२५.	कोटलीगढ़	चिल्ला, बासर	कोटला रावत	कोटला रावत अब वहीं खिरमल (खवाड़ा) में हैं। बालगंगा के वामतटीय।
२६.	ऊँचरागढ़	बनगढ़	रावत	चन्द्रवदनी से नीचे नैखरी ग्राम के समीप। सम्भवतः बनगढ़ के गढ़पति के अधीन सामन्ती गढ़ी थी।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१	२	३	४	५
२७.	बड्यारगढ़	(कीर्तिनगर)बड्यारगढ़	बड्यारी रावत	अलकनन्दा की दायीं ओर बड्यार-थात में स्थित।
२८.	जयाड़गढ़		जयाड़ा रावत	टिहरी गढ़वाल में। यहाँ बसने से जयाड़ा रावत (*जाति प्र.*, पृ. १४३)।
२९.	एराँसूगढ़	पट्टी बाड़ागड़ी	राणा	जनपद उत्तरकाशी। गढ़ पर कोटेटीदेवी का मन्दिर।
३०.	रेणुकागढ़	पट्टी बड़साली	?	ज0 उत्तरकाशी। नाकुरी के ठीक ऊपर। गढ़पर रेणुकादेवी।
३१.	सौलागढ़	रवाल्टी	?	मुँगरागढ़ से २-३ मील दूरी पर, कमल नदी के ऊपर। गढ़ के ध्वंस विद्यमान।
३२.	कंद्रालागढ़ (कन्दरेड़ागढ़)	रवाल्टी	जैंस्याड़ी रावत	शिकारु से नीचे की पहाड़ी पर। वागा जसवाणी गढ़पति।
३३.	श्रीकोटगढ़		श्रीकोटी रावत	ज. उत्तरकाशी। रामा-सिराईं उपत्यका के उत्तर में। पुरोला से मोरी को जानेवाले मोटर मार्ग पर। गढ़ की तीन दिशाओं में गहरी खाइयाँ तथा पश्चिम दिशा में विकट चट्टान। पूर्व की ओर से प्रवेश हेतु चट्टान पर सोपान बने हैं।
३४.	रावतगढ़	जौनसार,खाटल	रावत	यमुना के वाम तटीय।
३५.	राईगढ़	[अब शिमला में]	राणा	१८0३ ई. से पूर्व गढ़वाल की सीमा में (*गढ़वाल वर्णन*, पृ. ३)।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh
Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१	२	३	४	५
३६.	शेरगढ़	[सिरमौर; हि. प्र.]	?	यमुना तटीय, काल्सी के समीप गढ़वाल् की सीमा में (*सिरमौर गजेटियर* पृ. १२)। महिपतिशाह के सामन्त लोदी रिखोला द्वारा शेरगढ़, काल्सीगढ़, बैराटगढ़, कानीगढ़, आदि विजित (*पूर्वोक्त,* पृ. ११-१२)। मआसिरुल-उमरा (भाग ३, पृ. ४६३) के अनुसार, शेरगढ़ तथा कानीगढ़ पर शाहजहाँ के समय नजावतखाँ मिर्जा शुजअ द्वारा अधिकार।
३७.	कानीगढ़	[सिरमौर, हि. प्र.]	?	कालसी के समीप।
३८.	ननोरगढ़	हरिद्वार के समीप	?	इस गढ़ पर अधिकार करने के पश्चात् नजाबतखाँ ने गंगा पार की *(मआसिर-उल्-उमरा, तत्रैव)*।
३६.	सुन्तोरगढ़	देहरादून	?	दे., *आइन-इ-अकबरी* (ब्लॉचमैन, पृ. ५३४)
४०.	कौलागढ़	देहरादून	?	डेरा साहापुर तथा बसन्तपुर के मध्य (एट्0, *हि0 डि0* २,५६३ ; हौडीवाला, स्ट0 इण्डो-मुस्लिम हिस्टॅरि, पृ0 ६३८)।
४१.	चण्डीगढ़		?	गंगा के पूर्व तटीय (*हौडीवाला,* तत्रैव, ३६३)। चण्डीघाट के समीप ही ध्वंसावशेष।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१	२	३	४	५
४२.	बूँगाखालगढ़	,कण्डारस्यूँ	कण्डारी	चोपड़ा ग्राम के कण्डारी गढ़पति। गढ़ में इष्टदेवी कालिका= उफराईं। गढ़ के अवशेष अब नहीं मिलते।
४३.	मनियारगढ़	,मनियारस्यूँ	मनियारी रावत	गढ़पतियों के वंशज अब धारी ग्राम में। इनकी इष्टदेवी भुवनेश्वरी। =लुकून्दरगढ़।
४४.	थंदरगढ़	,घुड़दौड़स्यूँ	,घुड़दौड़ा-गुसाईं (?)	प० नयार के वाम तट पर ग्राम मरखोला में। सोपान्युक्त सुरंग तथा खाइयों के अवशेष।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

४.
गढ़-संख्या

'अवशिष्ट गढ़-सूची' में, जिसे अधिक बढ़ाया जा सकता है, वे गढ़ हैं जो 'पँवाड़ों' (वीरगीतों) में आते हैं, जिनका वर्णन प्रसंगवशात् विभिन्न लेखकों ने किया तथा जो मैंने अपनी यात्राओं में देखें हैं। इस प्रकार, उक्त तीन सूचियों में ११३ गढ़ों का वर्णन यहाँ किया गया है। भावी शोधों के परिणामस्वरूप अधिक गढ़ प्रकाश में आ सकेंगे। चौसठ परगनों की परम्परा के आधार पर हरिकृष्ण रतूड़ी ने पहले चौसठ गढ़ों का अनुमान किया था, तदन्तर बावन की सूची दी। परन्तु हमारे विचार से गढ़वाल के प्रधान गढ़ों को बावन या चौसठ की संख्या में नहीं बाँधा जा सकता। 'पँवाड़ों' में और भी गढ़ों की गाथाएँ हैं। राणीकोट, धारकोट, बुंगा, राजबुंगा, गढ़ जैसे नाम वाले अनेक स्थल आज विद्यमान हैं जहाँ गढ़ों के ध्वंस भी मिलते हैं। सम्भवतः जहाँ कभी विख्यात गढ़ भी रहे होंगे।

वस्तुतः 'बावन गढ़ों' की गाथा गढ़वाली वीर-गीतों ('पँवाड़ों') के परम्परागत गायकों की थी जो 'शिवा-बावनी' के समान 'गढ़-बावनी' ही गाना पसन्द करते थे। 'बावन वीर' जैसे पदों का बहुवार प्रयोग साबरी ग्रन्थों में आया है। बावन की संख्या वीरगीतों के गायकों के लिए शौर्य का प्रतीक बन गयी थी।[५] यदि ऋग्वैदिक युग को छोड़ दें, तो भी प्रायः तीन सौ वर्षों से अधिक के ठकुरी युग में ही गढ़-संख्या उनके प्रयोग और महत्व के अनुसार, घटती-बढ़ती रही। गढ़पतियों की सीमाओं में विस्तार और संकुचन के साथ-साथ कुछ गढ़ नये बने तथा कुछ छोड़ दिये गये। इसके अतिरिक्त, पर्वत-पात तथा अपरदन की शक्तियाँ इस पर्वतीय-अञ्चल में इतनी बलवती रहीं कि अनेक गढ़ों का स्वरूप परिवर्तित हो गया तथा कुछ विनष्ट ही हो गये।

५.
गढ़-वास्तुकला

'पर्वत-दुर्ग' प्रकार के सम्पूर्ण शास्त्रीय लक्षण इन गढ़ों में मिलते हैं। सूचियों का प्रथम गढ़ चाँदपुरगढ़ को ही लें। कुमाऊँ से लोहबा होकर कर्णप्रयाग को आनेवाले प्राचीन पथ पर, प्रहरी-सा स्थित यह गढ़ इतना महत्वपूर्ण था कि आदि पँवार राजा कनकपाल ने इसे राजधानी बनाया। इससे पूर्व भी खश गढ़पति भानुप्रतापपाल की राजधानी यहीं थी। चाँदपुरगढ़ के नाम से समस्त ठकुरी राज्य का नाम चाँदपुर था। यह गढ़ एक ऐसे टीले पर बना है जो अटागाड की लगभग पाँच सौ फुट गहराई में बहती धारा के मोड़ द्वारा तीन ओर से सुरक्षित है। आपातकाल में, टीले के पश्चिम में बनायी गयी एक 'सुरंग' द्वारा अटागाड का जल गढ़ में पहुँचाया जाता था। आज भी सोपानयुक्त सुरंग के चिह्न विद्यमान हैं। शान्तिकाल में जल आदिबदरी की ओर से मिट्टी के भूमिगत 'पाइपों' द्वारा गढ़ के पाद तक आता था। प्रायः एक हाथ लम्बे पकायी गयी

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मिट्टी के ये 'पाइप' कुछ दिन पूर्व मिले हैं। दक्षिण-पूर्व में चौंडगढ़ तथा पश्चिम में तोपगढ़, इस गढ़ के सामन्ती गढ़ थे। पूर्व में स्थित खालगाँव गढ़ के 'कार' में नियुक्त था।

चाँदपुरगढ़ पँवारों के सुदृढ़ दुर्ग-प्रासाद के रूप में अवस्थित था। इसकी बाह्य भित्ति पाँच से नौ फुट ऊँची अभी शेष है। उसके बाहर बिखरे हैं : प्रस्तर के दो विशाल सोपान-मार्ग, गवाक्ष एवं जल-प्रणाल के प्रस्तर और चित्रित शिलाएँ। दुर्ग-प्रासाद का विस्तार ५१x६६ फुट, और उसकी भित्तियों की मोटाई ४३ से ४५ इंच तक है। बाह्य भित्ति पर प्रयुक्त ६'३",६'११",८' तथा १०'६" तक लम्बे विशाल प्रस्तर-खण्ड लेखक ने देखे जो लौह-कीलों द्वारा जोड़ें गये हैं। इन प्रस्तर-खण्डों के तल (bed) इतने सम बनाये गये हैं कि संधियों का पता नहीं लगता। कर्णों को नीचे ऊपर लतामाला से, और भित्ति को क्षैतिज रूप से बनायी गयी ५ इंच मोटी पुष्पमाला (फ्रीज) से अलंकृत किया गया था। इस बाह्य भित्ति पर चतुर्दिक संकीर्ण छिद्र बने हैं जिनका उद्देश्य मुख्यतः सामरिक था। प्रासाद सम्भवतः द्वितल अथवा त्रितल का था जिसमें अनेक लघु कक्ष बने थे। एक अन्तर्कक्ष में पँवार राजाओं की इष्टदेवी राजराजेश्वरीनन्दा प्रतिष्ठित थी जो आज भी उनके वंशज कुँवरों द्वारा अर्चित अवस्था में है। दुर्ग-प्रासाद के निम्न तल पर दो भीमकाय प्रस्तर-सोपानों से ही चढ़ा तथा उतरा जा सकता था जिनकी लम्बाई १२'७" और १३'२" है और प्रत्येक १५ इंच मोटा है। जनश्रुति है कि इन्हें दूधातोली के खानों से लाया गया था। इस सुदृढ़ एवं भव्य दुर्ग-प्रासाद का निर्माण, सुना है, समीपवर्ती बैनोली के शिल्पकारों ने किया था। प्रासाद से कुछ नीचे हाट थी, राजपदाधिकारीवर्ग एवं रक्षकों के आवास थे, तथा इन सबको घेरती एक सुरक्षा-प्राचीर थी जिसके अवशेष दुर्ग पर चढ़ते समय देखे जा सकते हैं।

जोशीमठ से कुछ पहले, हेलङ् चट्टी के जैसे सिर के ऊपर, **पैनखण्डागढ़** भी पर्वत-दुर्ग का दूसरा अनुपम उदाहरण है जिसके नाम से उस विस्तृत ठकुरी राज्य का नाम 'पैनख़ण्डा' पड़ा था। दक्षिण-पूर्व में खड़ी-लटकती चट्टान से, और पश्चिम में अलकनन्दा की तीव्र धारा द्वारा यह सुरक्षित है। दुर्ग-प्रासाद का आज मात्र-पीठ शेष है जिसकी चौड़ाई की भुजा २३ हस्त मापी गयी है। भित्तियाँ तीन हस्त मोटी हैं। पीठ ('प्लिन्थ') पर उभरी सज्जापट्टियों ('मूल्डिंगों') तथा ज्यामितिक चित्रवल्लरियों ('फ्रीजों') का सादा अलंकरण है। इस दुर्ग पर जल को सुरंग द्वारा पहुँचाना सम्भवतः कठिन था। अतएव उत्तर में स्थित एक जलस्रोत से जल लाया गया था। इसके लिए यहाँ भी पकायी गयी मिट्टी के 'पाईपों' का प्रयोग किया गया था। इन्हें भूमि के नीचे बिछाकर, जल को उत्तर दिशा में एक खाई वाले गुप्त स्थान में छोड़ा गया था। गढ़ पर राजराजेश्वरीदेवी की प्रतिष्ठा थी जिसकी पाषाण-प्रतिमा आज तक अर्चित होती है।

पैनखण्डा में ही, अलकनन्दा की दायीं ओर अवस्थित इस अञ्चल का सर्वोच्च गढ़ है

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गढ़क्नारा। उर्गम से विकट चढ़ाई पर निर्मित यह गढ़ फ्ल्ला किमाणा जानेवाले मार्ग से गम्य है। पहाड़ काटकर बनी तीन खाइयाँ, सुरक्षा-प्राचीर के अन्दर अट्ठाईस ध्वस्त कक्ष, सम्भवतः जल-संग्रह के लिए बनी १४x६ फुट विस्तार वाली एक खाई इस गढ़ के कुछ ध्वंसावशेष हैं। एक पँवाड़ा के अनुसार, इसका गढ़पति प्रतापी शान्तन्देव था। चाँदपुरगढ़ के गढ़ाधिपति पर जब चौखुटिया की ओर से 'सात-भाई-हीतों' ने आक्रमण कर दिया था तब शान्तनदेव ने उसकी सहायता की थी। गैरसैण के निकट दश दिन तक सात-भाई- हीतों से घमासान युद्ध हुआ। शान्तनदेव के हाथों छः भाई हीतों का बध हुआ, तथा अन्त में वह स्वयं वीरगति को प्राप्त हुआ। रानी कफोला सती हुई। शान्तनदेव की वीरता के कारण इस युद्ध में चाँदपुर-गढ़ाधिपति की विजय हुई थी।

समरांगणसूत्रधार आदि ग्रन्थों में छः प्रकार के दुर्गों में 'पर्वत-दुर्ग' श्रेष्ठतम माने गये हैं। पर्वतदुर्ग का मौलिक नाम 'गढ़' ही था।[६] नरदुर्ग, वन्दुर्ग तथा जल्दुर्ग की विशेषताएँ भी इनमें थीं। क्योंकि ये अपने चतुर्दिक निजी एवं सामन्ती सेनाओं, सघन वनों तथा खड़ी कगारयुक्त तीव्र जलधाराओं से भी आवृत होते थे। ऐसे गढ़ में रहकर गढ़पति स्वपरिवार और विश्वासपात्रों के साथ आसपास की उपत्यका वा अधित्यका पर शासन करता था। गढ़ ही उसका 'पुर' था जहाँ हाट-देवमन्दिर सभी थे। 'दुर्ग सम्पति' का ठीक यही वर्णन अग्निपुराण (२२२.१-६) में वर्णित है।

वास्तुकला की दृष्टि से, गढ-निवेश एक व्यापक विषय है। परन्तु हम यहाँ इन गिरि-दुर्गों के उप-भेदों की ओर अवश्य संकेत कर देना चाहते हैं। अपनी स्थिति के अनुरूप ये गढ़ मुख्यतः दो प्रकार के हैं। इन उप-भेदों की शब्दावली मानसार से ली गयी है-

(१) प्रान्तर (पर्वत-शिखर पर स्थित)-यथा ; लंगूरगढ़, चौन्दकोटगढ़।
(२) गिरिपार्श्वक (पर्वत की समीपस्थ ढालू भूमि पर स्थित)-यथा ; लोइगढ़, देवलगढ़।

६.
मूल्यांकन

गढ़ों के इस अध्ययन से गढ़देश की पूर्वकालीन विस्तृत सीमाएँ हमें ज्ञात होती हैं। पश्चिम में ही रानीगढ़, डोडराक्वाँरा तथा मैली के राणा ठाकुर गोरखा शासन से पूर्व गढ़देश की सीमान्तर्गत थे। रवाईं के कुछ अन्य भाग भी इसी में थे जो अब हिमाचल प्रदेश के अंग हैं।[७]

इस अध्ययन से यह प्रकट होता है कि कालान्तर में परगनों तथा पट्टियों का संगठन

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इन्हीं पूर्वकालीन ठकुराइयों के आधार पर किया गया। बनगढ़, दशौली, आदि की ठकुराइयाँ ही आगे यथावत् परगने बन गये। लंगूर, अजमेर, ढाँगू तथा उदयपुर की ठकुराइयाँ पहले पट्टियों में और पुनः गंगासलाण परगने में संगठित की गयीं। भिल्लंग, सांकरी, हिंवदाव, नैलचामी तथा ग्यारगाँव की पुरानी छोटी ठकुराइयाँ ही आगे स्वतन्त्र पट्टियाँ बनीं और बीसवी शती ई. के तृतीय दशक तक किसी परगने में संगठित नहीं हुई थीं।

हम कह चुके हैं कि कार्त्तिकेयपुरीय नरेशों के शक्तिशाली शासन के विच्छेद होने पर पुराने-नये माण्डलिकों तथा ठकुराइयों का यहाँ भी उसी प्रकार उदय हुआ, जैसे नेपाल और सिरमोर-शिमला के पड़ोसी राज्यों में। माण्डलिकों तथा ठकुराइयों के काल में प्रशासन की इकाइयाँ किस नाम से पुकारी जाती थीं, यह हमें ज्ञात नहीं। अशोकचल्ल के सामन्त राज्य तो प्रशासन की दृष्टि से 'चक्र' कहलाते थे। ऐसा ज्ञात होता है कि 'मण्डल' भी यहाँ प्रशासन की एक इकाई थी। देहरादून जनपद में लाखामण्डल, टिहरी-गढ़वाल में धारमण्डल तथा पौड़ी-गढ़वाल में डाँडामण्डल तीन मण्डलों के नाम वर्तमान काल में भी प्रचलित हैं। देवलगढ़-मण्डल[८], नागपुर-मण्डल, बनगढ़-मण्डल, भरदार-मण्डल, आदि के नाम पँवार-अभिलेखों में मिलते हैं। 'मण्डल' इकाई का उल्लेख बंगाल के पाल-शासकों के तामपत्रों में मिलता है।[९] निश्चततः वह विवेच्य ठकुरी-युग में भी प्रचलित थी। उत्तर-पँवारकाल में 'मण्डल' बाह्य प्रभाव के कारण, 'परगना' नाम से पुकारा जाने लगा।

तान्त्रिक शाक्त-पूजा ठकुरी-युग की देन है। विक्रम एवं विजय की कामना के लिए गढ़पति गढ़ में ही, अथवा कभी निकटवर्ती पर्वत-शिखर पर, अपने इष्टदेवता की प्रतिष्ठापना करते थे। प्रधानतः राजराजेश्वरी, नन्दाभगवती, भुवनेश्वरी, झालीमाली, दुध्याड़ी आदि उनकी इष्टदेवियाँ थीं। परन्तु इनमें कुछ महादेव तथा भैरव के भी उपासक थे। लंगूरगढ़ तथा लोहबागढ़ के गढ़पतियों के इष्टदेव भैरव थे। उनके धार्मिक विश्वास आज भी जन-मानस में जड़ जमाये हैं।

अन्त में, गढ़ों के इस संक्षिप्त विवेचन को हम इस काल की एक अन्यतम देन की ओर संकेत कर समाप्त करते है। ठकुरी-युग की पारिस्थितिकी ने ही उन गढ़-वीरों को जन्म दिया जिन्हें गढ़वाली में 'भड़' तथा 'माल' कहा जाता है। गढ़ सुम्याल, लोदी रिखोला, माधोसिंह भण्डारी, तीलू रौतेली, आदि ज्ञात और अनेक अज्ञात ऐसे ही विख्यात 'माल' हुए जिनकी शौर्य्य-गाथाओं से गढ़वाल का भाल आज भी उन्नत है। जिनमें देश भक्ति तथा कर्तव्यनिष्ठा की उत्कट भावना थी। और, जिनके गीत आज भी ग्राम-ग्राम में गाये जाते हैं। उन वीर-गाथाओं से सम्बन्धित गढ़वाली बोली के वे 'पँवाड़े' भी उसी युग की देन हैं जिनमें शब्द, छन्द तथा रस की अभिव्यक्ति इतनी मार्मिक है कि गढ़वाली साहित्य में इनका मूर्धन्य स्थान है। परन्तु जिन वीर-गाथाओं को सशक्त रूप में संसार के सम्मुख रखने के लिए अभी कोई 'वाल्टर स्कॉट' पैदा नहीं हुआ।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सन्दर्भ

१. कार्त्तिकेयपुर के इस प्राचीन राजवंश का नाम 'कत्यूरी' नहीं था। इस उत्थानकाल में हमने इस राजवंश का नाम 'कातियुर' प्रस्तावित किया है जो ११वीं शती ईसवी में प्रचलित था (द्र०, पूर्व)।
२. द्र०, भजन सिंह 'सिंह' एवं हरिराम धस्माणा की पुस्तकें, तथा ठा. शूरवीर सिंह पँवार के लेख।
३. रतूड़ी, हरिकृष्ण, **गढ़वाल का इतिहास**, १६२८ ई० पृ० १३३।
४. रतूड़ी, हरिकृष्ण, **नरेन्द्र हिन्दू लॉ**, १६१८,पृ१०।
५. **शिवा-बावनी** में जिस प्रकार बावन छन्दों में शिवा-शौर्य्य का वर्णन किया गया है उसकी प्रकार वीरकाव्य **आल्हखण्ड** में बावन युद्धों का वर्णन है।
६. 'गिरि दुर्गं गढ़ : स्मृतः।' (रघुनाथ पण्डित-कृत **राजव्यवहारकोश**, दुर्गवर्ग, ११०)।
७. रतूड़ी, ह., **गढ़वाल वर्णन**, पृ० ३; **गढ़वाल का इतिहास**, पृ० ३२०।
८. महाराजा फतेपतिशाह का संवत् १७५७ का ताम्रपत्र। उन्हीं के संवत् १७६३ तथा १७६७ के ताम्रपत्रों में क्रमशः 'बनगढ़मण्डल' एवं 'नागपुरमण्डल' नाम मिलते हैं। तु०, अलमोड़ा जनपद के 'बारामण्डल' का नाम बाजबहादुरचन्द के साके १५८२ माघ के ताम्रपत्र में मिलता है।
९. पाल-नरेश धर्मपाल के नवीं शती ईसवीं के **खालिमपुर-तामपत्र** (पं०, ३०-३१) तथा महीपाल के **दीनाजपुर-तामपत्र** (पं०, ३०) में क्रमशः *भुक्ति, विषय और मण्डल* का उल्लेख हैं। अस्तु, मण्डल ग्रामों से ऊपर विषय का उप-विभाग था।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एकादश अध्याय

प्रमार-राजधानी
देवलगढ़ का पुरातत्त्व

१.

भूमिका

'उत्तराखण्ड' की प्राचीन नगरी श्रीनगर के समीप ही, प्रायः १० किलोमीटर उत्तर- पूर्व में, देवलगढ़ का ऐतिहासिक स्थल अवस्थित है। मध्य-हिमालयीय इतिहास एवं धर्म के अनुरागी को इसकी यात्रा अवश्य करनी चाहिए। पता नहीं कब इसके विद्यमान अवशेष भी विलुप्त हो जायँ। कार्त्तिकेयपुर का विनाश तो अधिकांशतः प्रकृति के हाथों से हुआ, परन्तु देवलगढ़ का विनाश, अनेकानेक देवस्थलों के समान ही, परिवर्तित परिस्थितियों से विवश उसकी निष्ठा से जुड़े मानव द्वारा हो रहा है।

देवलगढ़ के पुरावशेषों को, पुरातत्त्व की दृष्टि से, तीन प्रधान कालों में विभाजितकर, हम इस लेख में विवेचन करने का प्रयास करेंगे।

२.

प्रथम काल (६ वीं शती वि० से पूर्व)

बावन-गढ़ों में एक गढ़

चन्द्रवंशीय महाराजा अजयपाल से पूर्व, गढ़वाल के राजनीतिक इतिहास में 'बावन-गढ़ों'

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ये गढ़ विभिन्न स्वाभिमानी जातियों के गढ़पतियों के शासन-केन्द्र होते थे। अपने 'गढ़-शोध'[1] नामक निबन्ध में लेखक ने गढ़वाल के बावन-गढ़ों पर सर्वप्रथम एक विवेचन प्रस्तुत किया था जिसे आवश्यक परिमार्जन के साथ इस ग्रन्थ के पूर्व पृष्ठों में दे दिया है। उसमें बताया गया है कि हरिकृष्ण रतूड़ी के इतिहास में दी गयी गढ़-सूची से प्राचीनतर अन्य दो सूचियों में भी 'देवलगढ़' की गणना बावन-गढ़ों में हैं। इस गढ़ के गढ़पति के अधीन सम्पूर्ण 'देवलगढ़ मण्डल'[2] था।

इस गढ़ का मूल नाम क्या था, और यह किस जाति के अधीन था, यह भावी शोध का विषय है। एक अनुश्रुति के अनुसार, पहले इस गढ़ का नाम 'जगतगढ़' था। अनुश्रुति को ही आधार मानकर हरिकृष्ण रतूड़ी ने अपने इतिहास (पृ० ३६६) में लिखा है कि देवलगढ़ त्रिगर्त (काँगड़ा) के राजा देवल ने बसाया था और उसी के नाम से 'देवलगढ़' प्रसिद्ध हुआ। परन्तु, त्रिगर्तराज देवल द्वारा इसे बसाये जाने की अनुश्रुति की पुष्टि में कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिले हैं। ज्ञात होता है कि 'देवल' शब्द की व्याख्या करने की यह काल्पनिक कहानी गढ़ी गयी हैं। वास्तविकता यह प्रतीत होती है कि आदि गढ़ में कालान्तर में अनेक सुन्दर द्यूल अर्थात् 'देवल' निर्मित हो जाने के कारण ही इसका नाम 'देवलगढ' पड़ा होगा। परन्तु इतना निश्चित है कि 'देवलगढ़' नाम से पूर्व इस गढ़ का कोई अन्य नाम था। भव्य देवलों के कारण गढ़ का मूल नाम प्रचलित न रहा, वह केवल अनुश्रुति की वस्तु बन गया। यह कहना कठिन है कि गढ़ की सुरंग इसी काल की है, अथवा द्वितीय काल की। प्राचीनतम गढ़ के ऊपर पहले तो देवलों के निर्माताओं द्वारा, और पुनः महाराजा अजयपाल द्वारा इतने पुनर्संस्कार हुए कि मूल गढ़ के अवशेष आज अप्राप्य बन गये हैं।

३.

द्वितीय काल (९ वीं शती वि० से अजयपाल तक)

देवलों-का-गढ़

द्वितीय काल के पूर्वार्द्ध में, अर्थात् नवीं शती विक्रमी के अन्त में, जब कार्त्तिकेयपुर के शासकों का प्रताप इन पर्वतों में प्रबल था, देवलगढ़ के शाक्त केन्द्र की बहुत प्रसिद्धि थी। यहाँ देवी के उग्र रूप की उपासना होती थी। इस काल के देवलों का निर्माता यहाँ का कोई गढ़पति ही था जिसने कार्त्तिकेयपुर नरेशों की समृद्ध कला-शैली को ग्रहण किया, और जो अन्यान्य गढ़पतियों की भाँति, राजलक्ष्मी के वर्द्धन की कामना करता हुआ स्वभावतः शक्तिरूपा दुर्गा का उपासक था।

इस काल में यहाँ पर कम-से-कम दो भव्य देवालय बने : गौरादेवी का और

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कंसमर्दिनीदेवी का। ह० रतूड़ी द्वारा उल्लिखित अनुश्रुति के अनुसार, इनका निर्माण परम शाक्त राजा देवल ने किया था, परन्तु देवल सम्बन्धी अनुश्रुति हम पहले ही अस्वीकार कर चुके हैं। अन्य देवताओं के देवालय भी यहाँ बने। परन्तु किन्हीं कारणवश देवलगढ़ के तत्कालीन समस्त देवल कालान्तर में ध्वस्त होते गये। आज उनमें से किसी देवल की संरचना हमें प्राप्त नहीं हैं। तथापि इस काल के वे देवालय 'मध्य-हिमाद्रि कला' की सुन्दर कृतियाँ रहे होंगे। सौभाग्य से, इन आरम्भिक मन्दिरों की कुछ सुन्दर मूर्तियाँ ही यहाँ सुरक्षित हैं जिनका सार विवरण निम्नवत् है :-

(१) **ब्रह्मा** - यह मूर्ति अब गौरादेवी मन्दिर के मण्डप की अग्रभित्ति पर स्थिर की गयी है। हरित प्रस्तर (ऊँ० ४४ सेंटीमी०) पर उकेरे गये इस उच्चित्र में चतुर्मुख ब्रह्मा के मात्र तीन मुख दृष्ट हैं। चतुर्हस्त देवता के दायें-बायें अग्र हस्तों में क्रमशः अक्षमाला और कमण्डलु तथा पृष्ठ हस्तों में क्रम से सुक और सुव प्रदर्शित हैं। पद्मपीठ पर आसीन योगासनमुद्रा में यज्ञसूत्र एवं उदरबन्ध से विभूषित ब्रह्मन् की यह एक भव्य प्रतिमा है। उच्चित्र के उपरिभाग में दो मालाधर, और पीठिका पर विपरीत दिशाओं में मुख किये हंसयुग्म अंकित हैं।

(२) **गरुड**- यह मूर्ति भी अब गौरादेवी मन्दिर के मण्डप की अग्रभित्ति पर स्थिर है। हरित प्रस्तर पर ३४ सेंटीमीटर ऊँची द्विभुज गरुडमूर्ति अपनी उत्कृष्ट कला में प्रदर्शित है। वैनतेय वाम धुटना भूमि पर टेके अंजलिमुद्रा में ध्यानस्थ चित्रित हैं। उनके दोनों पक्ष पृष्ठभाग में शीर्ष की ऊँचाई तक उठे हैं। सर्वाभरणभूषित सुपर्ण की नागबन्ध से मण्डित केशसज्जा तो अनुपम कलापूर्ण है।

(३) **गङ्गादेवी**- ग्रीवा से नीचे खण्डित गङ्गादेवी वाम हस्त में घट धारण किये है। अत्यन्त कलात्मक यह शिल्प-अवशेष अवश्यमेव प्राचीनतर मन्दिर के द्वारपक्ष का अंश है।

(४) **ब्रह्माणी**- पद्मासनमुद्रा में (ऊँ० ३६ सें०)।

(५) **वैष्णवी**-ललितासनमुद्रा में (ऊँ० ३६ सें०)।

ब्रह्माणी और वैष्णवी की ये पाषाण मूर्तियाँ अब गौरा मन्दिर के अन्तराल में हैं।

(६) **गणेश**- वामावर्त शुण्डयुक्त यह द्विभुज प्रतिमा (ऊँ० ५० सें०) अब गौरा मन्दिर के गर्भगृह-द्वार पर प्रतिष्ठित है।

द्वितीय काल के उत्तरार्द्ध में भी, देवलगढ़ में मन्दिर-निर्माण की सक्रियता पूर्ववत् दिखायी देती है जो आगे अजयपाल के यहाँ आगमन तक बनी रही । इस काल के निम्नांकित पुरावशेष भी देवलगढ़ में विद्यमान हैं :-

(१) **नारायण मन्दिर**- अब लक्ष्मीनारायण मन्दिर के नाम से ज्ञात यह मन्दिर १३ वीं १४वीं

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शती विक्रमी की रचना है। गर्भगृह, अन्तराल और द्विस्तम्भीय मण्डपवाला, त्रिरथ योजना में निर्मित, 'रुचक वर्ग' का यह सुन्दर स्वतंत्र मन्दिर है। इस मन्दिर की सादी शुकनास गजसिंह से , गर्भगृह एवं मण्डप के वितान फुल्ल अष्टदलपद्म से, कटि मध्य में एक सज्जापट्टी से और शीर्ष ग्रीवा, आमलक और चन्द्रिका से अलङ्कृत है।

गर्भगृह में विष्णु की श्रीमूर्ति, परिकर-शीर्ष तक ११० सेंटीमीटर ऊँची समपादस्थानकमुद्रा में प्रतिष्ठित है। क्रम से वरद, गदा, चक्र और शंख आयुधों को धारण किये पद्मासनस्थ विष्णुमूर्ति सर्वाभरण, श्रीवत्स और फुल्ल पद्मप्रभामण्डल से भूषित है। देव-समवेत परिकरमण्डल में मध्यकालीन प्रवृत्ति स्पष्ट है, परन्तु यह मूर्ति मन्दिर के काल से निश्चय ही पूर्ववर्ती है।

(२) **ध्वस्त एवं मूर्तिशून्य दो परिवार-मन्दिर-** वर्तमान गौरा मन्दिर के परिवेश में दो लघु त्रिरथ मन्दिर लगभग नारायण मन्दिर के काल के हैं। सम्भवतः ये प्राचीन गौरा मन्दिर के परिवार-मन्दिर थे। इन्हीं के समरूप अन्य लघु मन्दिर भी पटांगण में कुछ काल पूर्व तक विद्यमान थे।

(३) **एक वैष्णव मन्दिर-**इसके द्वारपक्ष सत्यनाथ मन्दिर के आगे पड़े हैं, जिन पर श्रीकृष्ण सम्बन्धी चित्र उत्कीर्ण हैं। यह सम्भवतः 'मुरलीमनोहर मन्दिर' ही था, जिसके ध्वस्त हो जाने पर तृतीय काल के उत्तरार्द्ध में पुनः मुरलीमनोहर मन्दिर बनाया गया।

(४) **दत्तात्रेय मन्दिर-** पुरी गोसाईं पुजारियों के 'अखाड़ा' नामक क्षेत्र में, कभी दत्तात्रेय का भव्य मन्दिर निर्मित था। आज उसका पाषाण शीर्ष-कलश, गजसिंह और एक फुल्ल-पद्मचक्र अभिप्राय ही यहाँ शेष हैं। वर्तमान दत्तात्रेय मन्दिर के गर्भगृह में एक चतुरस्र शिलापट्ट पर चरणपादुकाएँ बनी हैं। इसी प्रकार के तीन शिलापट्ट एक पंक्ति में प्रांगण में हैं जो पुजारियों की समाधियाँ मानी जाती हैं। विष्णु- अवतार दत्तात्रेय का मन्दिर सम्भवतः देवलगढ़ में पल्लवित नाथ सम्प्रदाय की प्रेरणा से बना था। **'प्राचीन चरित्रकोश'** में भी उल्लिखित है कि 'तान्त्रिक, नाथ एवं महानुभाव सम्प्रदायों में दत्त को उपास्य देवता माना जाता है।'

(५) **सत्यनाथ का गुहा-मन्दिर-** इसकी अजयपाल के आगमन के समय पर्याप्त प्रतिष्ठा थी। क्योंकि देवलगढ़ गोरखपंथियों का गढ़वाल में सबसे बड़ा केन्द्र था।

(६) **द्वितीय काल के उत्तरार्द्ध, की कुछ मूर्तियाँ** भी यहाँ पर प्राप्त हुई हैं जिनमें पार्वती की

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गोधिकासीन स्थानक मूर्ति (२४ सेंटीमी० ऊँची), खण्डित उमा-महेश्वरमूर्ति और श्वेत संगमरमर की खण्डित-शीर्ष जैन तीर्थंकर मूर्ति (२२ सेंटीमी० ऊँची) उल्लेखनीय हैं। अधुना गौरामंदिर के अन्तराल में सुरक्षित, तीर्थंकर की यह योगासन-मूर्ति गढ़वाल हिमालय के पर्वतों से प्राप्त प्रथम जैन प्रतिमा है।

भव्य मूर्तियों से प्राणवान् इतने चित्ताकर्षक देवल थे यहाँ कि, यह गढ़ 'देवलों-का-गढ़' कहा जाने लगा। आगे चलकर 'देवलगढ़' उसी का संक्षिप्त नाम हो गया। परन्तु था यह अब भी 'गढ़' के रूप में ही विख्यात। एक ऐसा गढ़ जो देवलों से मण्डित था, जिसका अधिक विस्तार उस गढ़पति ने किया। सुरक्षा के लिए, पहाड़ी को चतुर्दिक सीधा काटा गया है, प्राचीर के बाहर प्राचीर निर्मित हैं, प्राचीर के भीतर गुप्त कक्ष बने हैं और जलस्रोत तक पहुँचने के लिए अन्दर से सुरंग खोदी गयी है।

४.

तृतीय काल (अजयपाल के पश्चात्)

देवलों का जीर्णोद्धार, राजराजेश्वरी की प्रतिष्ठा

गढ़वाल राजवंश का प्रारम्भिक इतिहास अभी नये शोधों की प्रतीक्षा में है। सुदर्शनशाह-कृत सभासार (वि० सं० १८८५), बैकेट की सूची और कुछ वंशावलियाँ कनकपाल को गढवाल राजवंश का संस्थापक होने का श्रेय देती हैं। दूसरी ओर, हार्डविक, जी० विलियम्स, रामायणप्रदीप (बालकाण्ड, पूर्व०) की सूचियाँ महाराजा अजयपाल वा अजेयपाल को इस राजवंश का संस्थापक मानती हैं। इस प्रश्न के विवेचन का यहाँ पर अवसर नहीं है, परन्तु हम हैमिल्टन (डिस्क्रिप्शन् ऑव् इंडिया, खण्ड २, पृ० ६३६) के इस कथन से सहमत हैं कि अजयपाल 'प्रथम स्वतन्त्र राजा' था। उसी ने गढ़ों में विभक्त गढ़वाल का एकीकरण किया। हरिकृष्ण रतूड़ी के इतिहास (पृ० ३६३-३६६) को प्रमाणित मानते हुए, महाराजा अजयपाल १५00 ई0 में चाँदपुरगढ़ में सिंहासनारूढ हुआ। १५१२ ई0 में वह अपनी राजधानी चाँदपुरगढ़ से देवलगढ़ ले आया। परम्परा से राजराजेश्वरी उसकी कुलदेवी थी, और सत्यनाथ भैरव ही की कृपा से वह चम्पावत पर विजय प्राप्त कर सका था। अतएव, रतूड़ी के अनुसार, अजयपाल ने देवलगढ़ में गुरु सत्यनाथ भैरव का मठ और राजराजेश्वरी के मन्दिर की स्थापना की। 'रामायणप्रदीप' और 'गढवाल राज्ञा वंशावलि': (वि0 सं0 १६३३) में अजयपाल द्वारा सीधे श्रीनगर में राजधानी स्थापित करने का वर्णन है, देवलगढ़ का नामोल्लेख उनमें नहीं मिलता। इन दो संदर्भों से ज्ञात होता है कि देवलगढ़ के गढ़पति को विजितकर अपने शासनकाल के अन्तिम वर्षों में अजयपाल श्रीनगर में ही रहने लगा था। तथापि देवलगढ़ उसकी तथा उसके पुत्र-पौत्रों की ग्रीष्मकालीन राजधानी बनी रही।[3] देवलगढ़ से उसकी स्वाभाविक श्रद्धा थी, और यहाँ उसने अपना राजभवन बनवाया था। राजभवन की सुरक्षा के लिए, गढ़ को उसने अधिक सुदृढ़

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किया, और उसमें नयी रचनाएँ जोड़ीं जो आज दिखायी देती हैं।

महाराजा अजयपाल के काल में अथवा उसके पश्चात्, देवलगढ़ में जिन मन्दिरों का निर्माण हुआ, उनमें से निम्नलिखित के पुरावशेष यहाँ प्राप्त होते हैं:-

(१) **राजराजेश्वरी मन्दिर-** देवलगढ़ के सर्वोच्च स्थान पर निर्मित राजभवन के परिसर में अथवा उसके अन्तर्भाग में, अजयपाल ने कुलदेवी राजराजेश्वरी का मन्दिर निर्मित किया था। इस राजभवन के ध्वंस होने के पश्चात्, उसके किसी उत्त्राधिकारी ने उसी स्थान पर जो राजभवन बनाया, वही आज विद्यमान है। अलंकृत गवाक्षों से युक्त यह त्रितल राजभवन ही परम्परा से राजराजेश्वरी का मन्दिर माना जाता है, जिसमें अजयपाल द्वारा स्थापित राजराजेश्वरी के यन्त्र एवं स्वर्णप्रतिमा की नियम्ति पूजा होती है।

राजराजेश्वरीदेवी भारत के अनेक राजवंशों की कुलदेवी रही है। सुदूर तमिलनाडु में भी रामनाड के राजा सेतुपति की कुलदेवी श्रीराजराजीश्वरी थीं। मार्कण्डेयपुराण में वर्णित है कि महिषासुरमर्दिनीदेवी ही राजराजेश्वरी है। परन्तु शाक्त सम्प्रदाय के तन्त्र तथा आगमों में दश महाविद्याओं का एक महत्वपूर्ण वर्ग है। इनमें तृतीय षोडशी ही अपनी सुन्दरता एवं महिमा के कारण त्रिपुर-सुन्दरी अथवा मात्र सुन्दरी वा राजराजेश्वरी भी कही जाती है।[४]

(२) **गौरादेवी मन्दिर-** गौरादेवी के प्राचीन देवस्थान पर ही, वर्तमान मन्दिर निर्मित है। राजराजेश्वरी-मन्दिर राणीहाट के समरूप, यह छत्र-शैली का त्रिरथ मन्दिर है जिसके तलविन्यास में गर्भगृह, अन्तराल और मण्डप तीन भाग हैं। इसका गर्भगृह वर्गाकार (बाह्यतः पिष्ट पर ३.४१ मीटर), सादे द्वारवाला और पूर्वाभिमुखः अन्तराल-शीर्ष गजसिंह से मण्डित तथा मण्डप चार चौकोर स्तंभों पर आधृत है। कटि, मध्य में एक सादी सज्जापट्टी से विभक्त की गयी है। गौरा मन्दिर का निर्माण अजयपाल अथवा उसके किसी आसन्न वंशज ने किया होगा। मण्डप की अग्रभित्ति पर दशवीं शती विक्रमी के आसपास निर्मित ब्रह्मन् और गरुड की प्राचीन मूर्तियाँ स्थिर की गयी हैं। तृतीय काल के मन्दिरों में, सम्प्रति गौरा मन्दिर ही त्रिरथ विन्यास का है।

गौरा मन्दिर के गर्भगृह में सम्प्रति दो पाषाण प्रतिमाएँ हैं : प्रथम, महिषासुरमर्दिनीदेवी की अष्टभुजा मूर्ति जो सम्भवतः प्राचीन गौरा मन्दिर की ही प्रधान मूर्ति हो। दूसरी, गौरादेवी (?) की अर्चाधीन प्रधान मूर्ति जो आवरण से प्रच्छन्न रहती हैं। पहली विशाल होकर भी उपेक्षित अपनी पीठिका से च्युत है, दूसरी आज प्रधान होकर भी आवरण से

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रच्छन्न रखी जाती है। ऐसा क्यों ? इसका उत्तर, विना उनके पूर्ण दर्शन के देना कठिन है।

मन्दिर-प्रांगण में स्थापित एक पाषाण-स्तंभ भी उल्लेखनीय है। इसके चौकोर शीर्ष-भाग पर आगे-पीछे अश्वारोही एवं धनुर्धर का अङ्कन किया गया है। हमने इसे 'वीर-स्तम्भ' माना है।

(३) **सत्यनाथ भैरव का मठ-** सुसंचालित मठ के रूप में इसकी स्थापना महाराजा अजयपाल ने की थी, जिसने गुरु गोरखनाथ के पन्थ को स्वीकार कर लिया था। पुराणा दरबार संग्रह टिहरी में उपलब्ध एक 'साबरी ग्रन्थ'(वि0सं0 १८६0) में अजयपाल को 'आदिनाथ' कहा गया है। अन्यत्र वह 'बाबा सत्यनाथ' नाम से भी प्रसिद्ध है। देवलगढ़ की मूर्ति में भी वह ध्यानस्थ और कानों में विशाल मुद्राएँ धारण किये प्रदर्शित है। सिद्ध सत्यनाथ का यह मन्दिर पहले गुहा-रूप में था। शाके १५४८ के सत्यनाथ मन्दिर भित्ति-लेख से ज्ञात होता है कि पीर हंसनाथ ने यहाँ मन्दिर का निर्माण करवाया था, और शाके १५४८ (= संवत् १६८३) में किसी प्रभातनाथ ने यहाँ मन्दिर का जीर्णोद्धार और एक बृहत् भण्डारा किया।

गर्भगृह में, सिद्ध सत्यनाथ की 'गादी' और एक अर्वाधीन पाषाण की नाथ मूर्ति ही महत्वपूर्ण हैं। मन्दिर के बाहर भी एक नाथ मूर्ति पड़ी है जिसका दक्षिण हस्त खण्डित है और कण्ठ में सूत्र से बँधी नादी चित्रित है। सत्यनाथ की गादी के समीप 'कालभैरव' का स्थान है, और मन्दिर के बाहर 'आकाश-भैरव' का।

देवलगढ़ में गोरखनाथ सम्प्रदाय की प्रधान 'गादी' थी। उसका मठपाल 'पीर' कहलाता था जिसकी नियुक्ति पंचजोगी करते थे। सम्प्रति नाथ सम्प्रदाय के कनफटा जोगी ही इसके मठपति हैं। मन्दिर से अल्प अन्तर पर निर्मित इनके पूर्ववर्ती नाथ जोगियों की अनेक समाधियाँ स्वयं पुरातत्वीय महत्व की हैं।

(४) **अजयपाल की प्रतिमायुक्त अभिलिखित शिला-** गौरा मन्दिर के 'पटांगण' की भित्ति पर स्थिर यह शिला (५८x२१ इंच) पहले तृतीय काल के किसी मन्दिर के समुचित स्थान पर रही होगी। इसमें जो पीठासीन एवं दीर्घ कुण्डलधारी मूर्ति है, वह अजयपाल की ही हो सकती है। मूर्ति के दक्षिण पार्श्व में एक नागरी लेख इस प्रकार है: 'अजैपाल को धर्मपाथो [५] भंडारी करौं इक'। गढ़वाल में लोकविख्यात 'अजयपाल की स्थापना' की अनुश्रुति इस लेख से प्रमाणित होती है कि 'धूलीपाथा' का प्रचलन अजयपाल ने देवलगढ़

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ही से किया था।

(५) **ठिंगार-भैरव मन्दिर-** यह मन्दिर नितान्त नवीन है। गर्भगृह में, दक्षिण हस्त में त्रिशूलधारी 'ठिंगार-भैरव' की स्थानक पाषाण प्रतिमा स्थापित है।

(६) **मुरलीमनोहर मन्दिर**-सोमा-की-माण्डा के समीप १८वीं शती वि० के लगभग निर्मित यह मन्दिर अब ध्वस्तप्रायः दशा में हैं। इसके गर्भगृह में मुरलीमनोहर की सुन्दर पाषाण प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

(७) **सोमा-की माण्डा-** गौरा मन्दिर की प्रायः दक्षिण दिशा में, सोमा (म)- की-माण्डा नाम से प्रसिद्ध १६ फुट वर्गाकार एक द्वितलीय मण्डप है। इसके निम्नतल पर एक द्वार और तीन ओर लघु गवाक्ष बने हैं। ५ फुट की ऊंचाई के उपरान्त प्रारम्भ उपरितल का ढालू छाद्य, चतुर्दिक आठ और मध्यवर्ती एक सुन्दर स्तम्भ पर आधृत है। छाद्य में पाषाण-पट्टों और भरणों को लोह का आश्रय दिया गया है। शीर्ष, आमलकशिला से सुशोभित है। मण्डप के पृष्ठभागीय एक कोण पर नीचे से ऊपर चित्रित लता का चाँदपुरगढ़ की लता के समरूप होना आकस्मिक संयोग नहीं हो सकता।

संरचना में यह मण्डप इस प्रदेश में अपने प्रकार का एकमात्र उदाहरण है। परन्तु अधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसका आभ्यन्तर और बाह्य समस्त शरीर अस्पष्ट लेखों से परिपूर्ण है। प्रयुक्त वर्ण नागरी लिपि के हैं, एक के ऊपर दूसरा दीर्घाकार में अभिलिखित हैं और उनके मध्य यदा-कदा चित्राकृतियाँ भी उत्कीर्ण हैं।

सम्भवतः इस मण्डप का निर्माण महाराजा अजयपाल ने ही किया था। इसमें बैठकर वे या तो राजकार्य करते थे,अथवा अपने गुरु सत्यनाथ की ओर मुखकर ध्यानस्थ होते थे।

५.
निष्कर्ष

प्रस्तुत विवेचन का सार यह है कि : (१) 'देवलों - का-गढ़' का ही संक्षिप्त नाम 'देवलगढ़' हो गया है। नवीं शती विक्रमी से पूर्व इसका कोई अन्य नाम रहा होगा। (२) मूलतः यह स्थल एक प्रसिद्ध शक्तिपीठ था। (३) इस ऐतिहासिक गढ़ पर, नवीं शती से सत्रहवीं शती विक्रमी के अन्त तक अजस्र रूपसे सुन्दर 'देवलों' का निर्माण होता रहा जिन्हें पुरातत्त्वीय दृष्टि से तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है।[६]

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सन्दर्भ

१. पहाड़, अंक १, नैनीताल, १६८३ ई०, पृ० १६-३०।

२. 'देवलगढ़ - मण्डल' का उल्लेख पँवारवंशीय महाराजा फतेपतिशाह के शाके १६२२ एवं १६२८ के ताम्रपत्राभिलेखों में मिलता है। कालान्तर में, देवलगढ़ परगने की धनपुर पट्टी को छोड़कर, कठूलस्यूँ आदि छः पट्टियाँ 'देवलगढ़ पट्टी' कहलायी। ई० के० पौ (१८६६ ई०) के विवरणानुसार, इन छः पट्टियों से मिलकर ही बैकेट से पूर्व 'देवलगढ़-पट्टी' बनी थी।

३. ह० कृ० रतूड़ी (गढ़वाल का इतिहास) तथा वि० रा०रतूड़ी (गढ़वाल राज्य का इतिहास, पृ० ३६) दोनों देवलगढ़ में राजधानी होना मानते हैं। वि० रा० रतूड़ी के अनुसार, देवलगढ़ में राजधानी संवत् १४३४ तक रही। वि० सं० १४४६ में श्रीनगर बसाया गया (पूर्वोक्त)।

४. दि कॅल्चॅरल हेरिटिज ऑव् इंडिया, खण्ड ५, कलकत्ता, १६७८, पृ० १३६।

५. संयुक्तनिकाय (३.२.३) में 'नालि' एवं 'द्रोण' शब्द मिलते हैं। १२वीं शती ई० के पालि-कोश अभिधानप्पदीपिका (४८४) में नालि एवं पत्थ (सं०, प्रस्थ) समानार्थी माने गये हैं। गढ़वाल हिमालय में आज भी 'पाथा' तथा 'नालि' समानार्थी हैं, और यह द्रोण का सोलहवाँ भाग होता है।

६. देवलगढ़ के पुरावशेषों में स्वयं इस 'गढ़ की वास्तुकला', जो भले ही अंशतः सुरक्षित है, एक रोचक प्रकरण है, परन्तु स्थानाभाव के कारण उसका हम यहाँ वर्णन नहीं दे सके हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्वादश अध्याय

पँवारकालीन देवालय - प्रबन्ध

१.

स्रोत - सामग्री

मध्य हिमालय में 'गढ़वाल राज्य' की सीमाएँ पश्चिम में टोंस-घाटी से लेकर पूर्व में नन्दादेवी-अंचल में स्थित बधाण क्षेत्र तक विस्तृत रही हैं। यह पर्वतीय राज्य सहस्राधिक वर्षों तक प्रसिद्ध पँवार राजवंश के अधीन रहा। सामग्री के अभाव में इस वंश का पूर्ववर्ती इतिहास तमाच्छन्न है। परन्तु सैंतीसवें राजा अजयपाल के पश्चात् राजाओं के इतिहास पर पड़ा परदा क्रमशः उठने लगता है। शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा बहुसंख्यक हस्तलेखों की प्रभूत सामग्री उत्तर - पँवारकाल का एक परिपूर्ण चित्र सामने लाती है। धार्मिक पक्षों के अध्ययन के लिए तो इसमें महत्वपूर्ण निर्देश मिलते हैं जिनका अभी विधिवत् विवेचन नहीं हुआ है। सोलहवीं शती विक्रमी से आगे के पँवारकालीन कुछ धार्मिक प्रलेखों (हस्तलेखों) का अध्ययन करते हुए मुझे इनमें तत्कालीन देवालय-व्यवस्था की एक सुनियोजित पद्धति के दर्शन हुए। मंदिरों से सम्बद्ध परम्परागत एवं सुसंगठित संस्थाओं के लिए निर्गत इन शासकीय प्रलेखों की अधिक खोज वांछनीय है।

उत्तर - पँवारकालीन देवालय-व्यवस्था के इस रोचक विवरण के लिए चन्द्रवदनी मन्दिर (बनगढ़ मण्डल), केदारेश्वर मन्दिर ग्यूल (भिल्लंगणा - घाटी), नन्दादेवी मन्दिर कुरूड़ (दशौली), गोपेश्वर और रुद्रनाथमन्दिर (नागपुर मण्डल), इत्यादि मन्दिरों में कतिपय हस्तलेख सुरक्षित हैं जिनकी भाषा 'गढ़वाली' है। गोरखाकालीन कुछ प्रलेख नेपाली भाषा में भी हैं। इनमें तिथ्यंकन प्रायः विक्रम संवत् में हैं, परन्तु प्राचीनतर लेख शक-विक्रम दोनों संवतों में मिलते हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस मौलिक एवं ऐतिहासिक सामग्री का प्रस्तुत पृष्ठों में प्रथम बार भरपूर उपदोग किया गया है।

२.
देवालय-वर्ग

व्यवस्था की दृष्टि से देवालयों के दो मुख्य वर्ग बनाये गये थे - प्रधान मन्दिर और अधीन मन्दिर । उदाहरणार्थ, केदारनाथ प्रधान मन्दिर है जिसके समूह में अनेक अधीन मन्दिर हैं : ऊखीमठ, गुप्तकाशी, मद्‌महेश्वर तथा गोपेश्वर तो सीधे नियंत्रण में थे ; परन्तु गौरीमाईमन्दिर गौरीकुण्ड, त्रियुगीनारायणमन्दिर, तुङ्गनाथमन्दिर, कालीमठ, आदि सामान्य निरीक्षण एवं नियन्त्रण में आते थे। रुद्रनाथ मन्दिर गोपेश्वर के रावल के अधीन रखा गया। इसी प्रकार, श्रीबदरीनाथ प्रधान मन्दिर है जिसके बहुसंख्यक अधीन मन्दिर हैं : पाण्डुकेश्वर, सुभाईं, उरगम, आदि स्थलों के पंचबदरी मन्दिर, जोशीमठ के नृसिंह, वासुदेव आदि मन्दिर, दरमी तथा पाखी के नृसिंह मन्दिर, डिमर, नारायणबगड़, कुलसारी, गडसिर, द्वारहाट आदि के लक्ष्मीनारायण मन्दिर, सीतामन्दिर चाईं, चण्डिकामन्दिर लंगासू, मातामूर्ति माणा, आदि। रवेश्वर मठ रैगाँव तथा महादेवमन्दिर बैरासकुण्ड अपने प्रबन्ध के लिए स्वतंत्र थे, यद्यपि बदरीनाथमन्दिर से ही सहायता प्राप्त करते थे[१] ।

एक अन्य रीति से भी देवमन्दिरों के दो प्रकार थे : अग्रहार (गूँठ) तथा सदावर्त पानेवाले मन्दिर, और, गूँठ तथा सदावर्त न पानेवाले मन्दिर। सदावर्त ग्राम वे थे जिनके भूमिकर को तीर्थयात्रियों को निःशुल्क भोजन देने के लिए प्रयुक्त किया जाता था। इन ग्रामों का प्रबन्ध पहले मन्दिरों के ही अधिकार में था। राजकीय अभिलेखों के अनुसार, १९६५ ई० में गूँठ-व्यवस्था की समाप्ति के समय, चमोली-गढ़वाल जनपद में ही प्रथम प्रकार के पच्चीस देवमन्दिर थे[२] । निश्चिततः प्रथम वर्ग में प्रधान देवमन्दिर थे जिनका उत्तरदायित्व इतर मन्दिरों से अधिक था। प्रधान मन्दिरों को विस्तृत अग्रहार-भूमि (गूँठ) स्वीकार कर और अधीन लघु मन्दिरों को प्रधान मन्दिरों के नियन्त्रण में रखकर पँवार शासकों ने कुशल एवं स्थायी व्यवस्था की स्थापना की। एक गढ़वाली लोकोक्ति है - "केदार ना कमायो मद्यू न समायो" अर्थात्, केदारनाथमन्दिर की आय से ही मध्यमेश्वर का व्यय चलता है। यह उक्त व्यवस्था का ही सुफल है कि महा-हिमालय की दुर्गमता में स्थापित मध्यमेश्वर का प्राचीन देवमन्दिर जीवित रह सका।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३.
देवालय - प्रबन्ध से सम्बद्ध संस्थाएँ

(१) पुजारी

परम्परानुसार और देवानुसार पुजारियों की विभिन्न संज्ञाएँ थीं। उदाहरणार्थ, बदरीनाथ-केदारनाथ मन्दिरों के पुजारी 'महन्त' कहलाते थे। केदारेश्वरमन्दिर ग्यूल (भिल्लांगणा - घाटी) तथा रघुनाथमन्दिर देवप्रयाग के भी 'महन्त' कहे गये हैं। महाराजा प्रदीपशाह ने बदरीनाथ, केदारनाथ, मध्यमेश्वर, आदि में प्रधान पुजारी के रूप में 'रावल' पद पर पहली नियुक्तियाँ कीं। रावल दक्षिणी नम्बूदरी ब्राह्मण होते हैं। वे जंगम सम्प्रदाय के हैं और आजन्म ब्रह्मचारी रहते हैं। 'महन्त' पुजारी संस्था की सामान्य संज्ञा भी थी। केदारेश्वरमन्दिर ग्यूल के महन्त गिरि गुसाईं सम्प्रदाय के हैं। विश्वनाथमन्दिर बाड़ाहाट तथा कमलेश्वरमन्दिर श्रीनगर के पुरी गुसाईं सम्प्रदाय के हैं। सत्यनाथ मन्दिर देवलगढ़, वृद्धकेदारमन्दिर थाती तथा गोरखनाथ गुहा-मन्दिर श्रीनगर के नाथ जोगी हैं। इनमें से प्रथम दो मन्दिरों में प्रधान नाथ पुजारी की नियुक्ति थी जिसे 'पीर' कहते थे। पौ *(सेटल० रिपोर्ट,* पृ० ४५) के अनुसार, "गिरि, पुरी, नाथ, वैरागी, आदि जोगियों की विभिन्न जातियाँ थीं जिनमें उत्तराधिकार के लिए शिष्य (चेला) परम्परा थी।" परन्तु आगे चेला बनाने की प्राचीन प्रथा विलुप्त होती गयी। नन्दादेवीमन्दिर कुरूड़, चन्द्रवदनीमन्दिर बनगढ़, नागराजामन्दिर सेम-मुखीम, आदि के 'पुजारी' कहे गये हैं जो गृहस्थ होते हैं। 'गुसाईं सन्यासी' शिव-शक्ति के पुजारी थे तथा 'वैरागी' विष्णु-मन्दिरों के। इनसे निम्न स्तर पर शिव-मन्दिरों के पुजारियों की एक जाति 'भल्डा' (भैड़ा) थी जो गृहस्थ होते थे और यज्ञोपवीत धारण नहीं करते थे[३]। कालीमठ में कविल्ठा के भट्ट, तुङ्गनाथ में मक्कू के मैठाणी तथा त्रियुगीनारायण में रविगाँव के जमलोकी अब वंशानुगत पुजारी हैं। परन्तु 'पुजारी' संस्था मौलिक्त : तथा सिद्धान्ततः राज-नियुक्त होती थी।

पुजारी देवालयों के पूजा-प्रबन्ध की महत्वपूर्ण संस्था थी। उसके कृत्यों को तीन भागों में बाँट सकते हैं : (१) उसका राजा से सम्बन्ध, (२) पूजा- पद्धति से सम्बन्ध, तथा (३) देवता के 'कार' से सम्बद्ध अन्य पदाधिकारियों (functionaries) तथा लोगों से सम्बन्ध।

पूजा-प्रबन्ध के सम्बन्ध में राजा पुजारियों को आदेश देता था कि वे देवता को सपूज्य रखें, अपनी पालियों पर नियमिततः उपस्थित रहें, देवता में जो भेंट आवे उसे 'मन्दिर-कारबारियों' के माध्यम से भण्डार में सौंप दें, आय-व्यय का लेखा शुद्ध रखें, इत्यादि। महाराजा सुदर्शनशाह के एक प्रलेख में उन्हें गूँठ भूमि पर अधिकार रखने का आदेश है: "गाऊँ जमीन पर अपणो अमल रखणों" (चन्द्रवदनीमन्दिर-लेख, संवत् १८७३)। अन्य आदेशों में

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भण्डार-लेखा शुद्ध रखने की चेतावनी दुहरायी गयी हैं: "तपसील ब-मूजिब की जमीन की पैदावार 0000 का मन्दिर माँ रखीक देवता सपुज्य रखणो [।] साल भर माँ जो देवता का भोग-पूजा माँ लगलो लगाईक बाकी जो रव सो हिसाब सर्कार बुझाइक देवता को असबाब सर्कार ते जो बणाउन से बणाईक भण्डार माँ रखणो [।] कागज हिसाब को पैदा-खर्च को दुरस्त बुझाणो" (चन्द्र0 मं0-लेख, १८७७ का फागुन २२)। "...देवता सपुज्य रखण, और देवता को असबाब भण्डार दुरस्त रखण [।] साल-दर-साल को कागज जमा-खर्च को हाजिर करिया करणो ... तुमन बी मन्दीर का कार माँ गड़बड़ नी रखणी [।] जो यात्री माफक तुमन गड़बड़ रखी त फेर सर्कार ते कुछ तजबीज करिया जाली.... जगा ठिकाणो दुरस्त र व स्या बात करणी [।] जमीदारों ते कार मन्दीर को लेणो ... आपस माँ बी तुमन मिलीक काम करणो" (चन्द्र0 मं0 - लेख, १८६७ माह ४ गते)।

एक परवर्ती प्रलेख पुजारियों के कृत्यों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। पुजारियों ने राजा से प्रार्थना की कि वे मन्दिर-पूजा आदि का प्रबन्ध पक्का कर दें क्योंकि उनके प्रबन्ध का कोई नहीं मानता। इस पर राजा ने आदेश दिया - "इष्ट अपणो जाणीक तब सर्कार ते बन्दोबस्त करी दीने [।] सो ज्याँ माफक कदीम ते देवता की पूजा-पाँती वगैरा जो कदीमी बन्दोबस्त छन मन्दिर की मरमत ज्यान दुरस्त रव स्या बात करणी ... जख तक सरोला पूजा करण माँ उजर नी करन पूजा करियूँ जावन तख तक गंगाड़ी पूजा माँ नी बैठोणा" (चन्द्र0, १६१0 फागुण ८ गते)। इस हस्तलेख का महत्व इस बात में है कि पुजारी प्रबन्ध के लिए राजा के प्रतिनिधि-मात्र थे, अन्तिम उत्तरदायित्व राजा ही का था। राजा का यह आदेश कि मन्दिर का 'कार' सुव्यवस्थित रहे, देवता सपूज्य रहे तथा देवस्थान सुसज्जित रहे ("मन्दिर का कार दुरस्त रव, देवता सपुज्य रव जगा आबाद रव") पुजारियों के कृत्यों का सार है। इसके बदले विभिन्न प्रकार के देय - "सारो-भारो-भेंट-बेगार-बिसाह"- भूमिदान के साथ पुजारियों से मुक्त कर दिये जाते थे (चन्द्र0, १६६६ कातिक ४ गते)। प्रलेखों से ज्ञात होता है कि पुजारी संस्था अधिक विश्वसनीय थी (चन्द्र0, १८५३ असुज १६ गते)। परन्तु परिहारों तथा उन्मुक्तियों के उपभोग के कारण इसमें दोष आने स्वाभाविक थे। चढ़ावा की चोरी और दैनिक पूजा में अनियमितता पर चन्द्रवदनीदेवी मन्दिर के पुजारियों को बहुबार चिट्ठियाँ लिखी गयी थीं : "तुम कौ लेख्या जाँद की जो अब देवता मॅग चढ़ाउ आव बकरा की रान वगैरा स्या मन्दीर का कारबायूँ का मार्फत भण्डार माँ बुझाइ देणी [।] जो आ माफक चोरी रखीला त जरीवानों पड़लो [।] लगायत की सुदकारी तुम लोगु ते लीया जाली ..... फेर कारबायूं की इतला सर्कार माँ आइली त तुमरा हक माँ बेहतर नी होनू" (चन्द्र0, १८२७ माह ४ गते ; १६१५ वैसाख ६ गते)। मन्दिर-भण्डार की 'सुदकारी' के लिए राजा को जाँच करवानी पड़ती थी।

देवता के 'कार' से संबद्ध अन्य लोग अग्रहार-ग्राम (गूँठ गाँव) के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"सयाणा-पंच-जिमींदार" होते थे। ये सब पुजारियों के आदेश का पालन करते थे (चन्द्र0, १८७३)। पुजारी मन्दिर के लिए जिमींदारों से 'कार' ले सकते थे। जो मन्दिर की "खेवणी" पर उपस्थित नहीं होते अथवा अवज्ञा करते, उसकी सूचना पुजारी राजा को देते थे (चन्द्र0, १६03 असूज)। परन्तु पुजारियों द्वारा उन्मुक्तियों की आड़ में जिमींदारों पर अत्याचार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। अत्याचारों से विवश जिमींदार लोग राजा के सम्मुख उपस्थित होते थे। क्योंकि उन्हें ऐसी अवस्था में सरकार के सम्मुख अवाध उपस्थित होने की आज्ञा थीः "जो तुमारा ऊपर जास्ती - जुल्मी देवता की नीबत करीक पुज्यारा करन त तुमन सर्कार माँ हाजिर होणु" (चन्द्र0, १८६७ का माह ४ गते : सयाणा-पंच-जिमींदारों के प्रति)। देवता के 'कार' से संबद्ध इन लोगों से ऊँची 'कारबारी' नामक संस्था थी जो पुजारी संस्था पर नियंत्रण का कार्य करती थी।

देवता को सपूज्य रखें ("देवता सपुज्य रखणो") बारंबार राजा का यह आदेश पुजारी संस्था के प्रधान कृत्य की ओर संकेत है। अखण्ड दीप तथा भोज-पूजा के निमित्त द्रव्य पुजारियों के पास अग्रहार-भूमि और राज-भण्डार दोनों से आता था। राज-भण्डार से रुद्रनाथ की चातुर्मास पूजा हेतु २५ रुपये, १७ पाथा घी तथा २० गज कपड़ा मिलता था। शक्तिपीठों में नवरात्र (नौरता) की पूजा पशु-बलि द्वारा होती थी। चन्द्रवदनीपीठ में "असुज का नौरता" पर बकरे लाने का आदेश महाराजा फतेहशाह के काल में, तथा "नौ नौ बोका और एक एक राँगा" लाने का आदेश गोरखा - काल में मिलता है। (चन्द्र0-प्रलेख, क्रमशः १७६७ कातिक १२ गते तथा १८६४ फागुन सुदी ५ रोज ४)। तान्त्रिक पूजा का अच्छा प्रचार था। यह तथ्य यहाँ तान्त्रिक तीर्थों[4] तथा तांत्रिक पूजा की हस्तलिखित पोथियों[5] की बहुसंख्या से प्रमाणित होती है। दूसरी ओर, शैवक्षेत्र यथा रुद्रनाथ में नित्य ४२५ ब्रह्मकमलों द्वारा सात्विक अर्चा की परम्परा मिलती है (रुद्रनाथमन्दिर - प्रलेख, संवत् १७७४ का आसाढ़)।

(२) कारबारी

ये मन्दिर - भण्डार के प्रभारी थे। एक प्रलेख में राजा पंच-पुजारियों को आदेश देता है कि वे मन्दिर - कारबारियों के पास चढ़ावा एकत्र करें। जब कदाचित् पुजारी चढ़ावे को हड़प बैठते थे तब 'कारबारी' ही इसकी सूचना राजा को देते थे (चन्द्र0, १८२७ माह ४ गते : १६१५ बैशाख ६ गते)। इसके अतिरिक्त, दैनिक पूजा में पुजारियों द्वारा हुई अनियमितता पर भी वे राजा को सूचित करते थे (चन्द्र0-प्र0, १८२७ माह ४ गते, १८८७)। पुरातन प्रलेखों से ज्ञात नहीं होता कि 'कारबारी' किन लोगों में से होते थे। परन्तु कुछ परवर्ती प्रलेखों में पुजारी भी कभी-कभी कारबारी कहे गये हैं (चन्द्र0-प्र0, १६१0 फागुण ८ गते तथा १६१४ चैत ४ गते)। सम्भवतः पुजारियों में से प्रतिनिधि पुरुष कारबारी नियुक्त होते थे। प्राचीनतर प्रलेखों में कारबारी के लिए 'मठपति' शब्द का प्रयोग है जैसा कि संवत् १६१७ तथा १७२१ के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देवप्रयाग-लेखों में देखते हैं। दोनों नाम साथ-साथ चलते रहे। आज भी अगस्त्यमुनि, त्रियुगीनारायण, आदि देवालयों में मठपति का पद पूर्ववत् है। त्रियुगीनारायण में दो मठपतियों की नियुक्ति केदारनाथमन्दिर-प्रबन्धक द्वारा स्थानीय पंडाओं में से की जाती थी। अस्तु, 'कारबारी' भण्डारी (storekeeper) का पर्याय है।

(३) कामदार

जिमींदार विविध 'रस्मों' को मन्दिर-कारबारियों के पास नियमितत: देते हैं या नहीं, इसकी जाँच के लिए कामदार होते थे। एक प्रलेख में उल्लेख है कि कामदार सोबा गुसाईं एतदर्थ गाँव में गया था (चन्द्र० प्र०, १८६७ का माह ४ गते, सयाणा-पंच-जिमींदारों के प्रति)। कामदारों का अन्य कृत्य मन्दिर-भण्डार की "सुदकारी की जाँच" करना था। संवत् १८६६ में जब चन्द्रवदनी मन्दिर-भण्डार की 'सुदकारी' के लिए जाँच की गयी तब जाँच के कामदार मोती ने देवता के मन्दिर में गड़बड़ पायी। इस पर उसने राजा को सूचना दी (चन्द्र०, १८६७ का ४ गते, पुजारियों के प्रति)। निरीक्षण के इस अधिकारी के नियंत्रण के कारण 'पंच-पुजारियों' को प्रतिवर्ष का लेखा ("सुदकारी को कागज") रखना पड़ता था।

(४) सयाणा

ये पुजारियों की सहायता के लिए गाँवों के जिमीदारों के ऊपर होते थे। महाराजा के एक आदेश के अनुसार ये भी जिमीदारों की भाँति पुजारियों की आज्ञा में 'कार' करते और उनकी मन्दिर "देण-खेण" में सहायता करते थे (ग्यूल ग्राम प्र०, १८५७ का वैसाख २६ गते, छायानुकृति संख्या-८)। इस पद पर उन्हें सम्भवत: जिमीदार निर्वाचित करते थे: "अपण-अपण गाऊँ माँ सयाणों भी बणाई लेणो ज्यान कार मन्दिर को दुरस्त रव" (चन्द्र० प्र०, १८६७ का माह ४ गते)। महीपतिशाह के काल में 'सयाणा' का पद था (चन्द्र० प्र०, महीपतिशाह की छाप-युक्त आठ पंक्तियों का अ-तिथिक प्रलेख)। रघुनाथमन्दिर देवप्रयाग ताम्रपत्रलेख सं० १६६०, ग्यूल-प्रलेख सं० १८५७ तथा कुरुड़-प्रलेख सं० १८६५ में क्रमश: बारकोट, किरगीणी और चरबंग ग्रामों के सयाणों का उल्लेख मिलता है। जब महाराजा प्रदीपशाह द्वारा जिलेश्वरमहादेव मन्दिर को दान दिया गया तब इसकी सूचना नागपुर के कमीण तथा सयाणा दोनों को दी गयी (द्र०, सं० १७८३ आषाढ़ का प्रलेख)।

(५) टलचाकर

ये देवता की "टलचाकरी-खेवणी" करनेवाले जिमींदार थे। इस 'कार' के लिए वे अपनी पाली पर मन्दिर में उपस्थित रहते थे। मन्दिर-भण्डार से उन्हें वार्षिक टलचार के रुपये मिलते थे। बनगढ़ में खतेली ग्राम के कुछ परिवार परम्परा से चन्द्रवदनी मन्दिर के टलचार में थे

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(चन्द्र० प्र०, १८६७ का ४ गते)। इसी प्रकार, गोंदार ग्राम के पँवार मद्महेश्वर मन्दिर में, त्रिजुगीनारायण ग्राम के पण्डे त्रियुगीनारायण मन्दिर में, बामणी तथा पाण्डुकेश्वर ग्रामों के दुरियाल बदरीनाथ मन्दिर में और गोथला ग्राम के भट्ट, तिवाड़ी तथा थ्यूली गोपेश्वर तथा रुद्रनाथ मन्दिरों में कार पर नियुक्त थे[६]। भोग बनाने में सहायता करना, लकड़ी लाना, चन्दन घिसना, बर्तन स्वच्छ करना, जल, बेलपत्री पहुँचाना, इत्यादि उनके 'कार' में सम्मिलित थे। परवर्ती 'धारी', 'काठरी', आदि इन्हीं के उपवर्ग हैं।

(६) जिमींदार

देवालय-प्रबन्ध के निम्नतम सोपान पर जिमींदार संस्था थी जिसके कृत्यों पर चन्द्रवदनी मन्दिर के एक पूर्व-उद्धृत प्रलेख (१८६७ का माह ४ गते) से अच्छा प्रकाश पड़ता है : पुजारी गूँठ गाँव के चलन के अनुसार उनसे काम लेते थे। परम्परानुसार उन्हें "देवता की खेवणी-ठेक-सिरती" देनी पड़ती थी। अन्यान्य 'रश्म' भी उन पर आरोपित थे - "बेटी बेवायाँ, लड़का होयाँ, देवता पुज्याँ" की रश्में - जिन्हें वे 'कारबारी' लोगों के पास एकत्र करते थे। परन्तु बहुधा देवता के निमित्त पुजारी इन पर "जास्ती-जुल्मी" कर देते। परिणामतः जिमींदार सयाणों तथा पुजारियों की अवज्ञा करने को विवश हो जाते थे। पुजारियों तथा जिमींदारों के पारस्परिक आरोप-प्रत्यारोप प्रायः राजा के सम्मुख पहुँचते थे। पुजारियों के प्रति राजादेश था, "जास्ती-जुल्मी तुमन बी नी रखणी और ऊन बी तुमारा सात माँ खेचलो न रखणो" (थ्यूल-प्रलेख, १८६३ कातिक २६ गते)। अत्याचारों की दशा में जिमींदारों के प्रति राजा की सहृदयता के शब्द हम पूर्व उद्धृत कर चुके हैं ("जो तुमारा ऊपर जास्ती-जुल्मी....हाजिर होणु" - चन्द्र० प्र०, १८६७ का माह ४ गते)। पूजा-प्रबन्ध के लिए दोनों संस्थाओं में सौहार्द का महत्व राजा को ज्ञात था। तभी तो दोनों के लिए राजा का स्पष्ट आदेश था - "आपस माँ बी तुमन मिलीक काम करणो।"

(७) पण्डा-पुरोहित

'पण्डा' समुदाय तीर्थयात्रियों के मार्गदर्शक होते हैं, और फलस्वरूप देवस्थलों में उनसे दान प्राप्त करते हैं। देवालय- प्रबन्ध तथा पूजा में उनका कोई भाग नहीं होता। बदरीनाथ-यात्रा से सम्बद्ध देवप्रयाग के पण्डे तथा मन्दाकिनी-घाटी के तीर्थों से सम्बद्ध केदारनाथ के पण्डे इनमें प्रधान हैं। गोपेश्वर में वैतरणी-स्रोत के पण्डे वहीं के भट्ट तथा तिवाड़ी हैं। 'पुरोहित' देवालयों के द्वारा होने वाले यज्ञादि अनुष्ठानों को सम्पन्न करने के लिए नियुक्त थे जो, कालान्तर में, वंशानुगत हो गये। केदारनाथ में रविग्राम के ब्राह्मण पुरोहित हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(८) देवचेलियाँ

प्रधान देवालयों में देवता के सम्मुख नृत्य-गीत के लिए हिमालय के इस अंचल में भी "द्योचेलियाँ" होती थीं जो नृत्यांगनाओं के रूप में देवता को चढ़ाई जाती थीं। यद्यपि मुझे किसी हस्तलेख में देवचेली-प्रथा का उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ, तथापि हमें अन्य स्रोतों से ज्ञात है कि केदारनाथ, तुंगनाथ, कालीमठ, नाग, इत्यादि देवालयों में देवचेलियाँ (dancing girls) होती थीं[७]। उत्तर-पँवारकाल में देवचेली-संस्था का स्वरूप विकृत हो चुका था। क्योंकि देवचेलियाँ अपने पवित्र कार से च्युत होकर वैश्यावृत्ति के लिए भी विवश हो चुकी थीं। फलस्वरूप वे पूर्वकालीन देवालय-नृत्यांगनाएँ ही अब 'पातर' कहलाने लगीं। यद्यपि नन्दादेवी पर्वतशिखर के अंचल में अवस्थित 'पातर नचौण्या' स्थल (जिस स्थल पर 'जात' के समय पातरों ने नृत्य किया) तथा 'छमुना पातर' की गाथाओं से यह संकेत मिलता है कि 'पातरों' में नृत्यांगना-वृत्ति अब भी उतनी ही ज्वलंत थी[८]। अन्तर यह है कि वे जीविका की खोज में, इस काल में, पावन देवालयों से विलासपूर्ण राजसभाओं में भी जा चुकी थीं।

४.
राजा

यद्यपि किसी भी राज्य में समस्त संस्थाओं के ऊपर राजसत्ता का अधिकार होता है, परन्तु गढ़वाल राज्य में राजा की स्थिति इससे भी ऊपर थी। पँवार राजा परम धार्मिक था और धर्म का अवतार भी। श्रीबदरीनाथ उसके आराध्य थे और श्रीबदरीनाथ रूप में वह स्वयं भी अपनी प्रजा का आराध्य था। उसकी राजगद्दी श्रीबदरीनाथ की गद्दी थी, उसकी मुद्रा पर "बदरीनाथो दिग्विजयी जयति सर्व्वदा" अंकित था और प्रजा उसे "बोलंदो बदरीनाथ" मानती थी। अतएव, अधिकार-मात्र से नहीं, अपनी परम धार्मिकता से वह देवमन्दिरों के प्रति अधिक अनुरक्त था। स्वाभाविकतः मन्दिर-व्यवस्था के शीर्ष पर भी राजा ही था। यह सत्य पँवार-लेख स्वयं प्रकट करते हैं।

राजा 'पुजारी' संस्था की सहायता से मन्दिर-व्यवस्था करता था। एक ओर वह गूँठ-गाँव तथा घर-गाँव के सयाणा-पंच-जिमींदारों को समय-समय पर आदेश देता कि वे देवता की "खेवणी-ठेक-सिरती" आदि दस्तूर कारबारियों के पास एकत्र करें। दूसरी ओर, यह आदेश भी कि यदि देवता के निमित्त पुजारी उन पर "जास्ती-जुल्मी" करें तो वे दरबार में उपस्थित हों (चन्द्र० प्र०, १८६७ माह ४ गते)। मन्दिर-भण्डार में पुजारियों द्वारा की गयी अनियमितत्रा पर राजा ने उन्हें जो चेतावनी दी वह हमें ज्ञात है (चन्द्र० प्र०, पूर्वोक्त)।

समय-समय पर उक्त आदेशों का मात्र उद्देश्य यह था कि मन्दिर-प्रबन्ध प्रशस्त रहे।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसी उद्देश्य से मन्दिर-कार की संस्थाएँ नियुक्त की गयी थीं। 'पुजारी' संस्था उनमें सर्वप्रधान थी। राजाज्ञा के रूप में सर्वाधिक 'चिट्ठियाँ' उन्हें ही लिखी गयी मिलती हैं। उन राजाज्ञाओं में बारम्बार सूचित किया गया है कि 'जिससे मन्दिर का कार सुव्यवस्थित रहे वही बात की जाय'' ("ज्यान कार मन्दिर को दुरस्त रव स्या बात करणी"), 'देवता सदैव पूजित रखा जाय' ("देवता तुम्न सपुज्य रखणो"), इत्यादि। ये आदेश एक निष्ठावान हृदय के हैं। ये आदेश देवमन्दिरों के प्रति पँवार राजाओं का घनिष्ठ सम्बन्ध प्रकट करते हैं। चन्द्रवदनी मन्दिर की 'चिट्ठियाँ' राजा द्वारा सदैव 'इष्ट अपना मानकर' ("इष्ट अपणों जाणीक") लिखी गयी हैं। मन्दिर-कार की विभिन्न संस्थाओं की नियुक्ति तथा बारम्बार उन्हें दिये गये इन आदेशों के अतिरिक्त, मन्दिरों के स्थायी तथा प्रशस्त प्रबन्ध के लिए दो अन्य साधन पँवार राजाओं ने ग्रहण किये :-

(१) **सामयिक निरीक्षण** : राजाओं द्वारा सामयिक निरीक्षण के मुख्यतः दो उद्देश्य थे - अग्रहार ("गूँठ") के जिमींदारों और पुजारियों के भूमि सम्बन्धी पारस्परिक संघर्षों का निर्णय करना, तथा मन्दिर-भण्डार लेखा ('सुदकारी') का निरीक्षण। ये मन्दिर-व्यवस्था रूपी रथ के दो चक्र थे जिनके विकार-रहित संगठन पर उसकी सफलता निर्भर करती थी। हमें ज्ञात है, भण्डार की 'सुदकारी' के लिए इस प्रकार का एक व्यापक निरीक्षण राजा द्वारा संवत् १८६६ में करवाया गया था (चन्द्र० प्र०, १८६७ माह ४ गते)। इससे पूर्व भी अनेक बार ऐसे निरीक्षण हुए होंगे। मन्दिर-कार की संस्थाओं पर नियंत्रण रखने के लिए इनकी अपेक्षा थी।

(२) **लेख्यों का सत्यापन** : संबद्ध लेख्यों का सत्यापन देवालय-व्यवस्था का अनिवार्य अंग था। परम्परागत संस्थाएँ और उनके पारस्परिक सम्बन्ध पूर्ववत् बने रहें तथा उनमें शिथिलता न आवे, इसके लिए राजा सदैव लेख्यों का सत्यापन करते थे। अप्रत्यक्षतः इसका महत्व इस बात में भी है कि बीसवीं शती विक्रमी के आरम्भिक दशकों का भी प्रबन्ध सम्बन्धी यदि कोई लेख मिलता है तो उसे अर्वाचीन मानकर अमहत्वपूर्ण नहीं कह सकते। उसमें लिखित निर्देश देवालय-प्रबन्ध की प्राचीनतर परम्परा का अवशेष हो सकता है। इसके अतिरिक्त, लेख्य-सत्यापन की व्यवस्था के कारण यहाँ मन्दिर-प्रबन्ध की संस्थाओं का अस्तित्व अक्षुण्ण रह सका। लेख्य-सत्यापन के दो उदाहरण पर्याप्त होंगे: (१) 'वह कर जैसे राजा मानशाह - श्यामशाह जी ने कर - मुक्त कर दिया था उसी प्रकार हमने (भी) हाट (ग्राम) करमुक्त कर दिया' ("सो कर जनू राजा मानसाही स्यामसाही ज्यूल अकरो करी दिन्या था तहीं भांती हम ले हाट अकरो क्यो" - राजमाता कर्णावती का हाट ग्राम ताम्रपत्रलेख, शककाल १६६७ कार्तिक मासे)। (२) 'भोग-पूजार्थ जो ग्राम पूर्व से गोरखा-काल के चढ़े हैं, उसमें सरकार से भी अन्यथा नहीं की गयीं', ("भोग पूजा पर गाऊँ कदीमी धैं गोरखा की बगत का जो चढ्यों छन सो सर्कार ते बी वाँ माँझ अन्यथा नी करे" - चन्द्र० प्र०, १८७७ का फागुण २२ गते)।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

५.

मन्दिर-आय के साधन

(१) **स्थायी साधनः-** ये छः प्रकार के थे : (क) देवदेय ग्राम तथा भूमि (temple lands) जो भोग-पूजार्थ राजा द्वारा चढ़ायी और उपभोग के लिए पुजारियों वा जिमींदारों को दी जाती थी। यह भूमि प्रायः सम एवं सिंचित होती थी। सामान्यतः देवदेय ग्राम ही कालान्तर में, 'गूँठ' कहलाते थे। मन्दिर- भूमि या गूँठ-भूमि दो प्रकार की थीः (१) राजा द्वारा पुजारियों को मन्दिर में पूजार्थ वेतन स्वरूप दी गयी करमुक्त भूमि, और (२) वह भूमि जिसका मन्दिरों को मात्र भूमिकर ('सोत्र') मिलता था। कमिश्नर गाइल्स (१८७८ ई0) तथा पन्नालाल (१६२० ई0) ने मन्दिर-भूमि के यही दो प्रकार बताये हैं। पन्नालाल ने इन्हें क्रमशः 'माफीगाँव' तथा 'गूँठगाँव' बताया है। 'गूँठ गाँवों' का राजस्व ('सोत्र') मन्दिर की आय का प्रधान साधन था। "देवी को सोत्र", "सेरा को सोत्र", "साल सोत्र" जैसी पदावली चन्द्रवदनी-हस्तलेखों में बहुबार आयी है। दूसरी ओर, प्रलेखों में निर्देश मिलते हैं :- हमने हाट गाँव करमुक्त कर दिया है - "हमले हाट अकरो क्यो" (हाट ग्राम ताम्रपत्रलेख, पूर्व उद्धृत); वह गाँव सर्वकरमुक्त करके चढ़ा दिया है - "सो गाउँ सर्वकर अकरो कैक लगाई दीन्यो" (फतेपतिशाही का विद्याकोटि धर्मशाला तामपत्रलेख, सं0 १७६३ कार्तिक मासे), इत्यादि। (ख) "देवता की सिरती" तथा "खेवणी - ठेक - सिरती"। "सिरती" (भूमिकर) तो "सोत्र" का ही सम्भवतः दूसरा नाम था (चन्द्र0 प्र0, कुँवरजी का लेख, सं0 १८६०)। "खेवणी-ठेक" भी आय का दूसरा साधन था। (ग) देवदेय भूमि से घी, चावल, आदि द्रव्य (चन्द्र0 प्र0, १८५३ का असुज १६ गते तथा अन्यत्र)। (घ) गूँठ-गाँव तथा घर-गाँव दोनों के सयाणा-पंच-जिमींदारों से "दस्तूर" जो कन्या-विवाह, पुत्र-जन्म तथा देव-पूजन के अवसरों पर लिया जाता था। (ड.) नवरात्र में भैंसे और बकरों के रुपये। यह गूँठ-गाँव के सयाणों के माध्यम से पुजारियों के पास एकत्र होता था (चन्द्र0 प्र0, कुँवरजी का लेख, सं0 १८६0)। (च) यात्रियों द्वारा मन्दिर - चढ़ावा तथा गद्दी - भेंट।

(२) **आकस्मिक साधनः-** प्रधानतः दो प्रकार के थे : (क) आकस्मिक भेंट जो गूँठ-गाँव के सयाणा-पंच-जिमींदारों पर आरोपित की जाती थी (चन्द्र0 प्र0, १६0३ को सौण २२ गते)। (ख) गूँठ-गाँव के किसानों ("असामियों") से दण्ड ("डाण्ड") जिसे आगे 'तमसीर' भी कहा गया है।

निश्चिततः मन्दिर-भण्डार समृद्ध थे। कुछ देवमन्दिरों की आय इतनी अधिक थी कि राजा यदा-कदा उनसे ऋण लेता था। महाराजा प्रदीपशाह द्वारा भिल्लांगणा - घाटी में ग्यूल-स्थित केदारेश्वर मन्दिर के महन्त से जन-कल्याण के लिए ऋण लेने का उल्लेख मिलता है - "य तुमारो कर्ज गाडे [।] मुलक का वास्ता गाडणू लाग्या छौं [।] से रुपैत्रा हमन त्री

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फसल पर सब ते पैले रास ब्याज सुदा तुमारा चुकौणा तब और काम करणो" (धूल-प्र० १८१४ भादो २८, दे०, परिशिष्ट तथा छाया- अनुकृति संख्या-६)। उन्हीं के द्वितीय धूल-प्रलेख में भी महन्त को पत्रिका लिखी गयी है कि, वह इस समय भी आकस्मिक आवश्यकता को पूरा कर दें ("अब बी आड-चाड चलाइ देणी" (धूल-प्र०, १८१४ भादो १२)।

६.
निष्कर्ष

धार्मिक लेखों से सिद्ध होता है कि उत्तर-पँवारकाल में भी देवालय-व्यवस्था सुन्दर थी। व्यवस्था के लिए राज-नियुक्त परम्परागत संस्थाएँ विद्यमान थीं जो समय-समय पर दिये गये राजादेशों द्वारा-नियंत्रित एवं संचालित होती थीं। व्यवस्था के शीर्ष पर राजा होता था। इस परम्परागत व्यवस्था की समाप्ति के दो स्पष्ट दुष्परिणाम हुएः व्यवस्था के बिना प्राचीन देवालय ध्वस्त होते जा रहे हैं तथा उनकी अमूल्य पुरातत्त्व निधि द्रुत रूप से विलुप्त हो रही है। इसके अतिरिक्त, हिमालय का धार्मिक वातावरण, जो युग-युगीन से हिन्दुओं के लिए सर्वाधिक आकर्षण का कारण रहा, समाप्ति की ओर है।

परिशिष्ट
१. केदारेश्वर मन्दिर धूल-प्रलेख

श्रीराम १

(राजमुद्रा महाराजा प्रदीपशाह)

१. श्री- बदरीनाथजी [।] दरम्यान दीक गुसा-
२. ञी इछागीरजी सुमेरगीरजी कौ हम-
३. न धर्मपत्र लेखी दीन्यु [।] जो तुमारी गा-
४. ण पाछ की हमारा पास छ सो धै जो
५. तुमारा हातु और संन्यास्यु को कर्ज गा-
६. डा य तुमारो कर्ज गाडे मुलक का वास्ता
७. गाडणू लाग्या छौ, से रुपैञा हमन
८. ञी फसल पर सब ते पैले रास ब्याज
९. सुदा तुमारा चुकौणा तब और का-

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

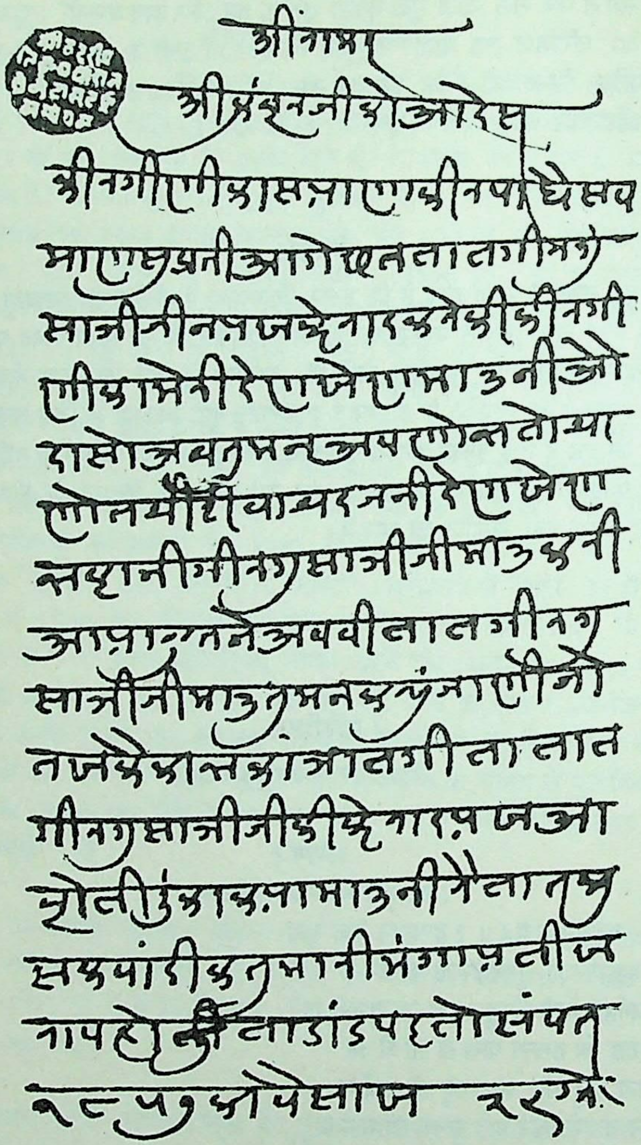

चित्र – ८. ग्यूल-प्रलेख, वि०सं० १८५७.

केदारेश्वरमन्दिर, ग्यूल: ज० टिहरी-गढ़वाल. आकार : २३.२ X १४.५ सेंटी मी०. छायानुकृति.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

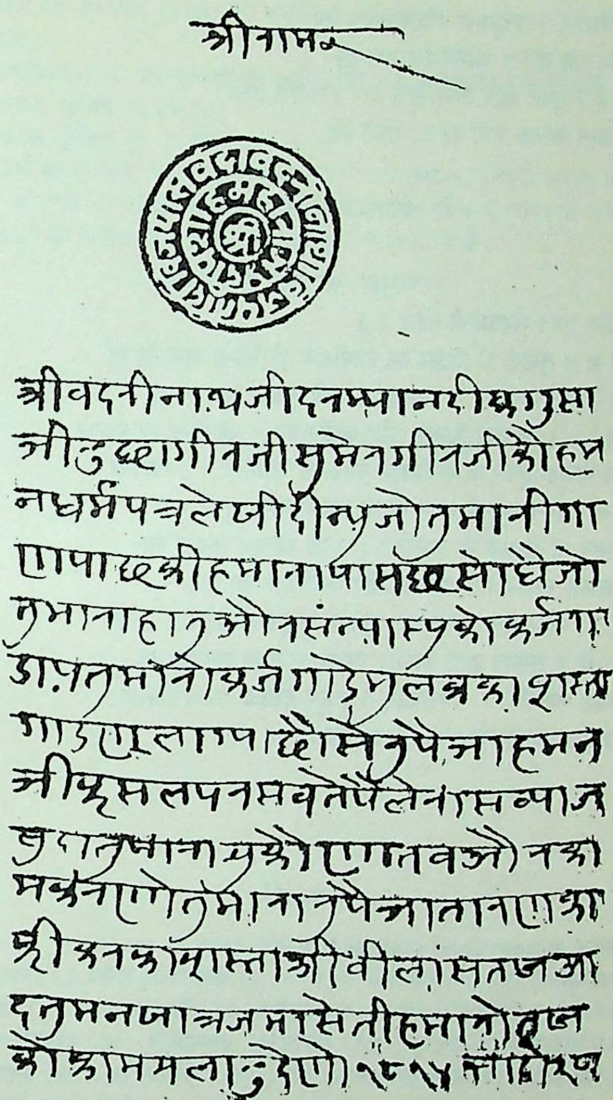

चित्र - ६. प्रदीपशाह का दयूल-प्रलेख, वि०सं० १८१४.

केदारेश्वरमन्दिर, दयूल, ज० टिहरी-गढ़वाल. आकार : २५.५ X १५.८ सेंटी मी०. छायानुकृति.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१०. म करणो [।] तुमारा रुपैआ तारण का
११. फीकर का वास्ता श्रीबीलास तख औ-
१२. द [।] तुमन खात्र जमा सेती [।] हमारो तख
१३. को काम चलाइ देणो १८१४ भादो २८

२. केदारेश्वर मन्दिर द्यूल-प्रलेख

श्रीराम १

(राजमुद्रा महाराजा सुदर्शनशाह)

१. लीखीतं महंत भैरवगीरी कौ [।]
२. आगे छ त तुमारो धै दीउंल का जिमींदारू को कीसा सरर्कार मा
३. आये तो सो सरर्कार ते समझाइक रखी तुमारा पास भेज्या
४. गयेन [।] सो ज्या माफक और जगीरदार... सीरस्ता का रखदा -
५. न ता माफक तुमन बी बन्दोबस्त सीरस्ता रखणो [।] खामखा
६. खेचलो जास्ती जुल्मी तुमन बी नी रखणी अर उंन बी तुमा -
७. रा सात मां खेचलो नी रखणो [।] जो खामखा तुमारा सा-
८. त खेचलो रखला ज्या माफक और जगीरदारु का खेव-
९. ण ..... ण कदान ता माफक ञ्युंन बी कर्‌या करणो [।] जो
१०. ञामा बी य तुमारा सात तकरार रखला त तुमन सरर्कार मा
११. इत्तलाह रखणी [।] सरर्कार ते कसुर देखीक सज्या जरीमा -
१२. नो कर्‌या जालो संवत् १८६३ का कातक २६ गते।

सन्दर्भ

१. पन्ना लाल, Kumaun Local Customs इलाहाबाद, १९२०, पृ० ४७-६०।

२. गूँठ तथा सदावर्त पानेवाले देवालयों के नाम हैं :- (१) श्रीबदरीनाथ मन्दिर, (२) केदारनाथमं०, (३) तुंगनाथमं०, (४) गौरामाई गौरीकुण्ड, (५) कालीमठ, (६) त्रिजुगीनारायण, (७) चण्डिकामं० बीरों, (८) लक्ष्मीनारायण मं० चन्द्रापुरी, (९) महादेव मं० अगस्त्यमुनि, (१०) दुर्गादेवी मं० फैगू, (११) महादेव मं० हाट, (१२) सोनेश्वरदेवता मं० सिला, (१३) गोपेश्वर मं०, (१४) नन्दादेवी मं० कुरूड़, (१५) चण्डिका मं० कोठगी, (१६) नवदुर्गा मं० नागनाथ, (१७) भैरवनाथ मं० थाला-बैड., (१८) उमादेवी मं० कर्णप्रयाग, (१९) सैलेश्वर मं० बैनोली, (२) झन्केश्वरमहादेव मं० लाटू-गैर, (२१) लाटू देवता मं० नौली तली, तल्ला दशौली, (२२) हिंडोंलीदेवी मं० हनदोली तला दशौली, (२३) आदिबदरी मं०, (२४) नन्दादेवी मं० नौटी, (२५) हरियाली देवी मं० जसोली।

३. रतूड़ी, हरिकृष्ण, नरेन्द्र हिन्दू लॉ, नवलकिशोर मुद्रणालय, १९१८ ई०, पृ० ६ तथा ६६।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

४. कुंजकूट पर बालादेवी, चन्द्रकूट पर भुवनेश्वरी, नबालका तट पर ज्वालेश्वरी, श्री-क्षेत्र में श्रीविद्या, इत्यादि।

५. श्रीप्रत्यंगिरामहामन्त्र, त्रिपुरसुन्दरीकवच, ललितासहस्रनाम, दक्षिणकालिकापूजापद्धति, आदि।

६. पन्नालाल, पूर्वोक्त, पृ० ४७-६०।

७. पन्नालाल, पूर्वोक्त, पृ० १३ तथा ५४।

८. देवदासी का ही अन्य नाम 'देवचेली' तथा 'पातर' था। नृत्यांगना वृत्ति के कारण देवदासी का अपर नाम अभिलेखों में 'नाचनी' भी मिलता है। कालिंजर स्तम्भ-लेख में, नीलकण्ठ मन्दिर में महानाचनी पद्मावती का उल्लेख है जो महा-नाचनी अर्थात् प्रधान नृत्यांगना थी।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

त्रयोदश अध्याय

गढ़वाल-चित्रशैली

१.

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

राजपूत चित्रकला के एक वर्ग के रूप में, सोलहवीं से उन्नीसवीं शती ई० तक की कालावधि में, जम्मू से लेकर गढ़वाल तक जो शैली प्रचलित रही, उसे 'पहाड़ी चित्रशैली' कहते हैं जो "भावना, विषय एवं दृष्टिकोण में" मुगल शैली की कला से सर्वथा भिन्न है। इस अभिधान से पूर्व यह शैली 'काँगड़ा कलम' के नाम से विख्यात थी। मुगल-साम्राज्य के विघटन के उपरान्त संरक्षण के अभाव, और विशेषतः औरंगजेब की चित्रादि कलाओं के प्रति अरुचि, का ही यह सीधा प्रभाव था, कि मुगल-दरबार से कलाकार-परिवार हिमालय के शान्त-सुरम्य प्रदेश में आ बसे थे। उन्हें गुलेर के गोवर्द्धनचन्द, काँगड़ा के घमण्डचन्द और जम्मू के बलवन्त सिंह जैसे उदार संरक्षकों का आश्रय मिला। परन्तु पहाड़ी राज्यों में उन्हें जहाँ सर्वाधिक संरक्षण मिला, वह था काँगड़ा राज्य। उन्हें काँगड़ा के महाराजा संसारचन्द (१७७४-१८२४ ई०) का सुव्यवस्थित एवं शान्तिमय शासनकाल मिला, और सबसे बढ़कर उन्हें मिला उन महाराजा का अप्रतिम कला-अनुराग। इससे पहाड़ी-शैली को चरम वेग मिला। विशेषतः १७८६ से १८०५ ई० तक, प्रायः बीस वर्ष, पहाड़ी- चित्रकला का स्वर्णकाल माना जाता है। पहाड़ी चित्रकला की 'काँगड़ा-शैली' के विषय में डॉ० कुमारस्वामी का कथन है कि, "इस शैली की सबसे बड़ी देन एक ऐसी कमनीय नारी-मूर्ति की सृष्टि है, जो उसकी ही अपनी वस्तु है, और जिसके आकर्षण की कोई सीमा नहीं है"। अन्यत्र उन्होंने लिखा है - "जो भूदृश्य-चित्रण में चीनी कला की उपलब्धि रही, वही यहाँ प्रेम के चित्रण में प्राप्त हो सका"।[१] गढ़वाल-चित्रशैली प्रायः काँगड़ा-शैली जैसी ही है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पहाड़ी-चित्रकला अपने विकास में तीन मुख्य धाराओं में दिखायी दी, जो बसोहली, काँगड़ा और गढ़वाल शैलियों के नाम से प्रसिद्ध हैं। गढ़वाल-शैली के चित्रों की खोज बैरिस्टर मुकन्दी लाल ने बीसवीं शती ई० के प्रथम दशक में आरम्भ कर ली थी, परन्तु उसके पृथक् अस्तित्व का ज्ञान संसार को १६१६ ई० में डॉ० कुमारस्वामी के ग्रन्थ **राजपूत पेंटिंग** के प्रकाशन पर हो सका।

इस शैली का उद्‌भव और विकास अधिकांशतः तत्कालीन इतिहास का प्रतिफल है। गढ़वाल-नरेश पृथ्वीपतिशाह के समय, मई १६५८ ई० में, मुगल शाहजादा द्वारा शिकोह के ज्येष्ठ पुत्र सुलेमान शिकोह ने भागकर श्रीनगर (गढ़वाल) में शरण ली। उसके परिवार के साथ शाहजहाँ के दरबार के दो प्रमुख चित्रकार, तुँवर शामदास और तत्पुत्र हरदास[2], भी आये। उन्नीस मास के उपरान्त सुलेमान शिकोह तो औरंगजेब की सेना द्वारा बंदी बना लिया गया, परन्तु चित्रकार द्वय राजधानी श्रीनगर में ही रहे। उन्हें भी दरबार में 'तसवीरदार' का पद मिला।

स्थानीय कला-तत्वों को स्वाभाविक रूप से ग्रहण करते हुए, शामदास के वंशजों द्वारा विकसित गढ़वाल-शैली अब अपने यौवन की ओर चरण बढ़ा रही थी। महाराजा ललितशाह के राज्यकाल (११७२-८० ई०) में उनके पुत्र प्रद्युम्नशाह का विवाह गुलेर-राजकुमारी के साथ हुआ। उस अवसर पर दोनों राज्यों के चित्रकारों का सम्पर्क होना स्वाभाविक था। इससे कुछ कला-समीक्षकों द्वारा गुलेर-कला के गढ़वाल-कला पर प्रभाव, और गुलेर-चित्रकारों द्वारा गढ़वाल-शैली की स्थापना की कल्पना की गयी है। परन्तु, साक्ष्यों के अभाव में, इस सम्भावना को स्वीकार करना कठिन है।[3]

१८२६ ई० में संसारचन्द के पुत्र काँगड़ा-नरेश अनिरुद्धचन्द को अपनी दो बहिनों के साथ सतलज पारकर ब्रिटिश गढ़वाल आना पड़ा। राज्यसत्ता को त्यागकर, कुल-मर्यादा की रक्षार्थ, ऐसा करने की प्रेरणा राजमाता सुकेतड़ ने दी। दोनों राजकुमारियाँ हरिद्वार में गढ़वाल-नरेश सुदर्शनशाह से ब्याही गयीं।[४] सम्भव है, दहेज में बहुत- से चित्र भी दिये गये हों और, काँगड़ा के कुछ चित्रकार भी यहाँ पहुँचे हों। अन्य लेखकों ने भी, ऐसी सम्भावना व्यक्त करते हुए लिखा है कि "इस प्रकार, प्रसिद्ध 'गीतगोविन्द' और 'बिहारीसतसया' की चित्रमालाएँ दहेज में टिहरी दरबार में पहुँच गयीं।"[५] संसारचन्द के पराभव के उपरान्त आश्रय की खोज में चित्रकारों का यह बिखराव स्वाभाविक था। किशोरीलाल वैद्य के अनुसार, "इन्हीं चितेरों ने गढ़वाल-शैली को पुनः निखारा, जो गढ़वाल की स्थानीय कला, गुलेर-कला और काँगड़ा-कला के समन्वय के रूप में सुलभ है। गढ़वाल-कला की यह यात्रा हमें उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक तक दिखायी पड़ती है"।[६]

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परन्तु, जिस प्रकार गुलेर को गढ़वाल-शैली की स्थापना का श्रेय देने की बात स्वीकार नहीं की जा सकती, उसी प्रकार टिहरी में सुदर्शनशाह के समय "गढ़वाल-शैली को पुनः निखारने" की श्री वैद्य की बात भी एक भ्रांत धारणा है। वास्तविकता यह है कि स्थानीय शैली को नये आयाम गुलेर एवं काँगड़ा - कला से ही मिले। परन्तु उस समय जब मोलाराम उसके सम्पर्क में आया था, काँगड़ा-राजकुमारियों के साथ महाराजा सुदर्शनशाह के विवाह के पाँच वा छः दशक पूर्व ही। गढ़वाल-कला के साथ राजधानी श्रीनगर का नाम अविच्छिन्न रूप से जुड़ा है। यहीं उसका शैशव पला, यहीं उसकी तरुणाई महकी, और यहीं वह जरा-जर्जर होकर एक सांस्कृतिक थाती-मात्र रह गयी।

२.

गढ़वाल-चित्रशैली का प्रारम्भ

'गढ़वाल-चित्रशैली' के प्रारम्भ पर विचार करने से पूर्व, यह स्मरणीय है कि चित्रकार शामदास के गढ़वाल में आगमन से पहले गढ़-नरेशों ने, वास्तुकला की भान्ति, चित्रकला को भी उसी अनुराग से प्रश्रय दिया था। महाराजा बलभद्रशाह (१४७३-१४९८ ई०) ने श्रीनगर में जिस राजप्रासाद का निर्माण करवाया था, उसमें एक भव्य चित्रशाला भी थी। उनके पूर्वजों एवं वंशजों के काल में जो स्थानीय चित्रकार हुए होंगे दुर्भाग्य से वे आज हमारे लिए अज्ञात हैं। गढ़वाल की 'चित्रकला' का विकास, इस प्रकार, पन्द्रहवीं शती ई० से पूर्व ही हो चुका था, परन्तु एक परिनिष्ठित 'चित्र-शैली' के रूप में, उसका जन्म मुगल-शैली के चित्रकार श्यामदास के प्रायः दो पीढ़ी पश्चात् हुआ।

गढ़वाल-चित्रशैली के आरम्भ के सम्बन्ध में, कुछ मूलभूत बिन्दु हैं, जो एक कला-अध्येता को स्पष्ट दिखायी देते हैं :

(१) वस्तुतः गढ़वाल - चित्रकला का इतिहास तथा चित्रशैली का इतिहास पारिभाषिक रूप में दो पृथक् सत्य हैं। इस दृष्टि से, शामदास मुगल-चित्रकला के मुसब्बिर थे, गढ़वाल-चित्रशैली के जनक नहीं। ढलती वय में, और एक सर्वथा नये वातावरण में आये शामदास अन्त तक मुख्यतः मुगल-शैली के चित्रकार रहे। इण्डिया ऑफिस लंदन, सीतारामशाह-संग्रह वाराणसी और अन्यत्र शामदास के जो चित्र हैं, उन्हें 'गढ़शैली' के मौलिक चित्र नहीं कहा जा सकता। महाराजा फतेहशाह के समय के दो चित्र, जो गिरिजाकिशोर जोशी के संग्रह में हैं, हरदास के हो सकते हैं जो पूर्णतः मुगल-शैली से प्रभावित हैं। मुगल दरबार के ये मुसब्बिर कम-से-कम दो पीढ़ियों तक अपनी पैत्रिक चित्र-शैली के चित्र बनाकर गढ़-राजदरबार में प्रशंसापात्र बने रहे।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(२) परम्परागत स्थानीय चित्रकला के साथ, इतर पहाड़ी चित्र-शैलियों तथा मुगल-शैली की प्रविधियों का स्थानीय परिवेश में समन्वय कर ही गढ़वाल में एक नयी चित्रशैली का जन्म सम्भव था। ऐसा शामदास की लगभग तीसरी पीढ़ी के ही चित्रकार कर सकते थे। एकान्तिक रूप से मुगल-शैली के चित्र -निर्माता शामदास और हरदास, गढ़वाल की धरती पर आते ही 'गढ़वाल - शैली' के जनक बन गये हों, ऐसा चमत्कार एक नयी चित्र-शैली के जन्म के लिए असम्भव ही है।

(३) स्पष्टतः, शामदास के वंशज हीरालाल के जीवनकाल में पहाड़ी शैली की एक शाखा के रूप में गढ़वाल-शैली का सूत्रपात हुआ होगा। अर्थात् लगभग सत्रहवीं शती ई० के अन्तिम दशक में। इस काल-निर्धारण में इस तथ्य को आधार माना जा रहा है कि शैली विशेष का आरम्भ किसी प्रदेश में विभिन्न कला-प्रभावों के फलस्वरूप एक दीर्घ विकास का परिणाम होता है। राजपूत - चित्रकला की भान्ति, पहाड़ी चित्रशैलियाँ भी तत्त्वतः लोक-कलाएँ रही हैं। भले ही कलानुरागी पहाड़ी राजाओं ने उन्हें अधिक प्रश्रय दिया। मुगल-शैली तत्त्वतः दरबारी-कला थी। अतएव, एक परिनिष्ठित चित्रशैली के रूप में, गढ़वाल-शैली का आरम्भ अधिकांशतः स्थानीय चित्रकला एवं काँगड़ा-गुलेर जैसी पहाड़ी शैलियों तथा अंशतः मुगल-शैली के समन्वय के रूप में, १७०० ई० के आसपास हुआ।

(४) महाराजा फतेहशाह (१६८४-१७१६ ई०) के समय के बने उक्त दो चित्रों का महत्व इसमें नहीं है कि वे 'गढ़वाल-चित्रशैली' के प्रथम चित्र हैं। अपितु इसमें है कि वे गढ़वाल में 'चित्रकला' की प्रथमतः ज्ञात उपलब्धियाँ हैं। श्री वा० गैरोला का कथन सर्वथा संगत है कि "उनको न तो किसी पूर्व- परम्परा का विकसित रूप कहा जा सकता है, और न ही उनको गढ़वाल-शैली की भावी समृद्धि का आधार माना जा सकता है।"[७] कारण, शामदास के पश्चात् सम्भवतः हरदास के समय के ये चित्र गढ़-राजप्रासाद में न तो मुगल-शैली के विकसित रूप हो सकते थे और न उन उद्दाम तत्त्वों को ग्रहण कर पाये थे जो आगे गढ़वाल-शैली की समृद्धि के आधार बन गये थे। अतएव, शामदास के चित्र और ये दो चित्र, जब तक इनसे पूर्ववर्ती चित्र नहीं मिलते, गढ़वाल - चित्रकला के प्रथम बिन्दु हो सकते हैं, गढ़वाल-चित्रशैली के प्रथम बिन्दु नहीं। वास्तविकता यह प्रतीत होती है कि इन चित्रों के निर्माण के लगभग तीन दशक पश्चात् ही, एक शैली विशेष के रूप में, गढ़वाल-चित्रशैली विकसित हुई होगी।

३.
गढ़वाल-शैली के चित्रकार

(१) मोलाराम तोमर

शाहजहाँ के दरबार से श्रीनगर में आये उक्त चित्रकार-द्वय के पश्चात्, उनके वंशज क्रमशः हीरालाल अथवा हीरानन्द और मंगतराम गढ़वाल-शैली के श्रेष्ठ चित्रकार थे। प्राप्त अनाम चित्रों में अवश्य ही उनके द्वारा निर्मित अनेक चित्र हो सकते हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शामदास की पंचम पीढ़ी में, मंगतराम का पुत्र, गढ़वाल-शैली का महान् चित्रकार मोलाराम (१७४३-१८३३ ई०)[८] हुआ जिसकी वंशावली मुकन्दीलाल और महापण्डित राहुल ने अपने ग्रन्थों में दी है। उसकी धार्मिक प्रवृत्ति उसके आत्म-चित्र से प्रकट होती है जिसमें वह जगदम्बा काली के सम्मुख नमस्कार - मुद्रा में खड़ा है।[९] उसकी यह प्रवृत्ति "जगदम्ब के भजन बिन होवे न कछु सुधारा" जैसी उक्तियों से भी प्रकट हुई है। माता रामोदेवी से उसे राम-भक्ति की प्रेरणा मिली। सन्त-सिद्धों का भी उस पर प्रभाव पड़ा। वह गोरख-पंथ का अनुयायी था। अंतिम दिनों में वह किन्हीं कारणों से शून्य-महिमावाले 'मन्मथ-पंथ' का अनुयायी हो गया था। इस धार्मिकता ने उसकी कल्पना को शक्ति दी, और बाहरी चितेरों के प्रभाव ने उसकी प्रतिभा का परिष्कार किया। लगभग पच्चीस वर्ष (मुकन्दीलाल के मत से २८ वर्ष) की वय तक वह परम्परागत रूप से मुगल-तकनीक का अनुसरण करता रहा, परन्तु तदुपरान्त की कृतियाँ काँगड़ा-शैली से पूर्णतः प्रभावित हैं। कहते हैं, महाराजा संसारचन्द के कलानुराग के कारण उसे उनके यहाँ भी आश्रय प्राप्त था। एक चित्रकार के रूप में उसकी ख्याति पहाड़ी शैली के राज्यों में ही नहीं नेपाल तक पहुँच चुकी थी। १८०३ ई० में गोरखा गवर्नर काजी हस्तिदल चौतरिया ने मोलाराम की चित्रशाला को देखकर कहा था -

"कांतिपुर में कीरति तुहारी, सुनत रहे अब आँख निहारी।
चित्र विचित्र तुहारे देखे, आगम निगमहिं कवितु परखे।। "

उस महान् चित्रकार को महाराजा ललितशाह, जयकृतशाह आदि उसके समकालीन पँवार नरेशों का संरक्षण प्राप्त था। परन्तु सुनते हैं कि १७८० ई० में प्रद्युम्नशाह के अनुज कुँवर पराक्रमशाह से उसकी अनबन हो गयी थी। जिससे उसने राजदरबार का अनुग्रह खो दिया। गोरखा - आक्रमण और उनका निर्मम शासन, तथा भूकम्प से श्रीनगर - राजप्रासाद की क्षति जिसमें प्रसिद्ध चित्रशाला थी, दोनों गढ़वाल-कला और कलाकारों के ऊपर वज्रपात थे। ऐसी विषम परिस्थितियों में, जब अनेक कलाकारों ने राजधानी त्याग दी होगी, मोलाराम अन्त तक श्रीनगर में ही कला-साधना में तल्लीन रहा। कुँवर प्रीतमशाह मोलाराम से चित्रकला सीखने टिहरी से श्रीनगर ही आते थे।

यह सत्य है कि मोलाराम की प्रतिभा बहुमुखी थी। वह अच्छा कवि, इतिहासकार और दार्शनिक भी था। 'गढ़राजवंश-काव्य', 'गढ़गीता-संग्राम' (गणिका नाटक), और 'मन्मथ-सागर' के अतिरिक्त उसकी लिखी अन्य पुस्तकें भी प्राप्त हो चुकी हैं जिनकी पाण्डुलिपियाँ अथवा प्रतिलिपियाँ श्री द्वारिका प्रसाद तोमर तथा विश्वविद्यालय संग्रहालय श्रीनगर (मुकन्दीलाल - संग्रह से) में सुरक्षित हैं। स्वनिर्मित चित्रों पर लिखी उसकी कविताएँ चित्रानुकूल बन पड़ी हैं। मुकन्दीलाल भी लिखते हैं कि - "केवल दो ही चित्रों में उसने अपने को चित्रकार बतलाया। वे

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं, 'मस्तानी' और 'जैदेव वजीर'। मोलाराम अपनी कविता और चित्र-विवरणों में अपने को सदैव 'कवि मोलाराम' लिखता था"।[१०] तथापि कवितादि उस चितेरे की सह-रुचियाँ थीं। वंश-परम्परा से वह चित्रकार था, और चित्रकला में ही उसकी ख्याति थी।

'मोरप्रिया' (सं० १८३२) उसकी प्रारम्भिक अवस्था का चित्र है और 'मयंकमुखी' प्रौढ़-काल का। 'मोरप्रिया' को फ्रैंच ने "सौन्दर्य की प्रतिमा" बताया है। 'उत्कण्ठिता-नायिका' और 'जयदेव वजीर' उत्कृष्ट चित्रों में से हैं। रूप-चित्रों के क्रम में प्रद्युम्नशाह और उसकी रानी का 'दम्पती' नामक चित्र भी उत्कृष्ट कोटि का है। 'राधा-कृष्ण-मिलन' नामक चित्र तो अपनी उत्कृष्टता के कारण अनेक बार देशी-विदेशी कला-प्रदर्शनियों में प्रदर्शित हो चुका है (चित्र २५)। श्रृंगार-चित्रों में 'विप्रलम्भा-नायिका', 'सितारप्रिया', 'हिंडोला', 'मस्तानी', 'वासकशय्या-नायिका' आदि चित्रों की गणना भी की जा सकती है।

नायिकाभेद, षड्ऋतु और पौराणिक विषयों पर बनाये उसके चित्रों की एक विशिष्टता प्रायः उन पर चित्रकार का नाम, चित्र-विवरण और तिथि का अंकन है। उदाहरणार्थ ; सवैया छन्द में चित्रानुकूल विवरण और नाम तथा संवत् १८५२ की तिथि से युक्त 'चन्द्रमुखी' नामक चित्र दर्शनीय है। इसी प्रकार, 'उत्कण्ठिता-नायिका' पर चित्रकार का नाम एवं संवत् १८६७ की तिथि अंकित हैं। "वे चित्र और उसके अनुकूल कविता बनाकर चित्र पर लिख दिया करते थे, जैसी कि इस चित्र 'चन्द्रमुखी' पर लिखी हुई है। इनके बनाये जितने चित्र देखे गये हैं, प्रायः सबमें यह विशेषता है।"[११] ना०च० मेहता का कथन सत्य है कि "मोलाराम के चित्रों की विशेषता इनके चित्र और कवित्व के समन्वय में है"।[१२]

कुछ-एक कला-समीक्षकों ने चितेरे के रूप में मोलाराम की श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं किया है। विद्वान् कार्ल खाण्डलवाला उसे "निःसन्देह अठारहवीं शती ई० के अन्तिम चतुर्थांश में गढ़वाल के कला-संसार में एक बहुत प्रख्यात व्यक्ति" (a very well-known figure in the art-world of Garhwal) तो स्वीकार करते हैं, परन्तु उसे "एक महान् कलाकार" मानना भ्रांति मानते हैं।[१३] उनका समर्थन करते हुए ठाकुर शूरवीर सिंह पँवार का भी कथन है कि "यद्यपि उनके कुछ चित्र श्रेष्ठ हैं, परन्तु वे गढ़वाल के अवसान-काल के चित्रकार थे"।[१४] परन्तु, जिस प्रकार मोलाराम को ह्रासोन्मुख गढ़वाल-शैली के अन्तिम चित्रकारों में से एक कहने की बात ह्रदय में नहीं बैठती, उसी प्रकार मुगल-शैली के श्यामदास जैसे नवागत चित्रकारों को उससे श्रेष्ठता देने की बात अटपटी-सी लगती है। निश्चित है कि जब श्यामदास श्रीनगर आये थे, तब यहाँ गुणग्राही पँवार-नरेशों के आश्रय में स्थानीय शैली के चित्रकार थे। श्रीनगर-राजप्रासाद में महाराजा बलभद्रशाह की एक चित्रशाला होने का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। स्थानीय शैली को समझने और उसके समन्वय से किसी प्रतिष्ठित चित्र-शैली को

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निखारने के लिए दीर्घकाल की अपेक्षा होती है। अतएव स्थानीय शैली की पृष्ठभूमि में बाहरी प्रभाव और स्वप्रतिभा का प्रशस्त उपयोग करके, मोलाराम ने जो चित्र बनाये, वे उसे महान् चित्रकार सिद्ध करते हैं। मोलाराम की निश्चित धारणा थी कि चित्रकार धनोपार्जन हेतु नहीं, अपितु किसी आदर्श की उपासना के लिए चित्रांकन करता है। सन् १७७६ में निर्मित 'पद्मिनी' चित्र में चित्रकार ने लिखा है :-

"कहँ हजार कहँ लक्ष हैं, अर्ब-खर्ब धन-ग्राम।
समझे मोलाराम तो, सुख सुदेह इनाम ।।

संवत् १८३३"

कला का वह तल्लीन उपासक हमें श्रेष्ठ चित्र देकर गढ़वाल-शैली का गौरव-स्तम्भ बन गया।

इस अमर चित्रकार के विषय में अजित घोष ने उचित ही लिखा है कि "राजपूत चित्रकला पर कोई भी निबन्ध पूर्ण नहीं होगा, जिसमें गढ़वाल के कलाकारों में महानतम मोलाराम के कृतित्व की प्रशंसा न की जाय। वास्तव में, मोलाराम गढ़वाल-शैली का सर्वोत्तम और अत्यन्त व्यक्तिपरक कृतित्व का प्रतिनिधित्व करता है।"[१५] जे० सी० फ्रैंच ने लिखा है, "पहाड़ी कला में जो क्रांति अठारहवीं शती में हुई है और जो उसके जीवन के साथ सम्बन्धित है, वह पूर्ण रूप में मोलाराम की कला में पायी जाती है। मोलाराम की कला में सामान्य लालित्य, सरसता और सौन्दर्य है। उसकी कला में अतीत की गम्भीरता और धीरे-धीरे आगे बढ़ती हुई अठारहवीं शती की प्रचुर कमनीयता पूर्णरूपेण पायी जाती है। क्या ही अच्छे सुघड़ सौन्दर्य के साथ उसकी कला समय की प्रगति के साथ आगे बढ़ती गयी!"[१६] गढ़वाल-कला का वह वरेण्य चित्रकार कला-जगत् के लिए अज्ञात ही रहता, यदि गढ़वाल-शैली के कला-विशेषज्ञ और उसके लिए जीवन-पर्यन्त समर्पित बैरिस्टर मुकन्दीलाल उसे प्रकाश में न लाते। मोलाराम की चित्रकला पर उनका सर्वप्रथम लेख *'मॉडर्न रिव्यू'* (अक्टूबर, १९०९ ई०) में छपा था। तदन्तर कई प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में अविरल उनके लेख छपते रहे।[१७]

(२) माणकू

मोलाराम के पश्चात्, माणकू और चैतू का नाम गढ़वाल चित्र-शैली के चितेरों में प्रसिद्ध हैं। परन्तु इनके जन्मस्थान तथा काल के सम्बन्ध में कलान्वेषक एकमत नहीं हैं। काँगड़ा में प्रचलित अनुश्रुति के आधार पर, राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह (महाराज संसारचन्द, पृ० १४३) माणक को गुलेर-काँगड़ा निवासी बताते हैं। जबकि मुकन्दीलाल (वसुधारा, पृ० १४२; ग० पें०, पृ० २१ और अन्यत्र) और ठाकुर पँवार दोनों को गढ़वाली मानते हैं। पँवार जी के अनुसार, माणकू देवलगढ़ के समीप रामपुर ग्राम का निवासी और रावत था, जिसकी वंशावली

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'पुराणा दरबार' में सुरक्षित है। डॉ० अशोक जेरथ पंडित सियु और तत्पुत्र माणकू को मुगल दरबार से आये चित्रकार मानते हैं। जेरथ (**पहाड़**, ३,१९८९, पृ० १२५) के अनुसार, मानकू जसरोटा के राजा बलवन्त सिह की मृत्यु के उपरान्त गुलेर, नूरपुर अथवा बसोहली की रियासतों की ओर चले गये और मानकू की गढ़वाल में जाकर मोलाराम से चित्रकला सीखने की कहीं और चर्चा नहीं मिलती"। चित्रकार के जन्मस्थान सम्बन्धी इन वैमत्यों में सत्य की खोज के लिए अभी अन्वेषण होना आवश्यक है।

मुकन्दीलाल[१८] तथा मेहता जहाँ माणकू एवं चैतू को मोलाराम का समकालीन मानते हैं, दूसरी ओर ठाकुर शूरवीर सिंह पँचार[१९] उन्हें मोलाराम का पूर्ववर्ती। इस सम्बन्ध में, गीतगोविन्द की एक चित्रमाला की वह पुष्पिका (Colophon) कुछ सहायक हो सकती है जिसमें स्वर्णाक्षरों में निम्नांकित श्लोक अंकित है:

"मुनि-वसु-गिरि-सोमे संमिते विक्रमाब्दे गुणि गणित गरिष्ठा मालिनी - वृत्तवित्ता .. माणकू चित्रकर्ता ललित लिपि विचित्रं गीतगोविन्द चित्रम्।।",

लाहोर-संग्रहालय की इस पुष्पिका के आधार पर ना०च० मेहता (**रूपम्**, सं० २६, १९२६ ई०) का कथन है कि "विक्रम सं० १७८७ = १७३० ई० में बसोहली में गीतगोविन्द को माणकू चित्रकर्ता द्वारा चित्रित किया गया। माणकू की संरक्षिका बसोहली राजवंश की राजकुमारी मालिनी थी।" इस पुष्पिका से ज्ञात होता है कि मोलाराम के जन्म के समय माणकू लगभग ४० वर्ष वय का होगा और, इस प्रकार, माणकू का जन्म १७०० ई० के आसपास होना प्रतीत होता है।

यह असम्भव नहीं है कि माणकू कभी गढ़-राजधानी श्रीनगर से जाकर बसोहली, काँगड़ा आदि कला-केन्द्रों में भी रहा था। माणकू तथा चैतू के चित्र ना० च० मेहता को १९२४ ई० में टिहरी गढ़वाल के महाराजा नरेन्द्रशाह से मिले थे। माणकू का एक श्रेष्ठ रंगीन चित्र 'आँख मिचौनी' महाराजा नरेन्द्रशाह के चित्र-संग्रह में ही प्राप्त हुआ है। इस चित्रकार के सम्बन्ध में नानालाल चमनलाल मेहता, एन० पी० चक्रवर्ती, एम० एस० रंधावा एवं कार्ल खांडलवाल के लेख अवलोकनीय हैं।[२] माणकू का पुत्र खुशाला भी अच्छा चित्रकार बताया जाता है।

(३) चैतू साह

माणकू एवं चैतू क्रमशः कुछ पूर्ववर्ती तथा परवर्ती भले ही रहे हों, परन्तु वे मोलाराम से परिचित थे, ऐसा प्रतीत होता है। दोनों राजधानी श्रीनगर में रहते थे। दोनों ने स्वनिर्मित चित्रों के

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पृष्ठभाग पर स्वनाम अंकित किया है। "यादवियों का हरण," 'कृष्ण द्वारा कर-वसूली', आदि चित्रों पर चैतू के हस्ताक्षर मिले हैं। रुक्मिणीहरण-चित्रमाला के तेरह चित्र भारत कला-भवन में सुरक्षित हैं, जिनमें से एक में पीछे 'चेतए ते घरे दें' (चैतू के घर से) लिखा है। भारत कला-भवन के *सूचीपत्र* (संवत् २००२, पृ० ३१) में चैतू को "पहाड़ी चित्रकारों की अंतिम पीढ़ी में हुआ" बताया गया है। मेहता ने अपने ग्रन्थ में चैतू साह की कला-कृतियों का परिचय दिया है।[२१] माणकू और चैतू के अनेक चित्र ना० च० मेहता के संग्रह में हैं जो उन्हें १६२४ ई० में महाराजा नरेन्द्रशाह - संग्रह टिहरी से प्राप्त हुए थे। टिहरी में राजधानी बनने पर सम्भवतः चैतू महाराजा सुदर्शनशाह की संरक्षता में वहाँ चला गया था। तथापि कृष्ण-लीलाओं के ख्याति प्राप्त इस चितेरे के वंशक्रम आदि के विषय में अब तक हमें अधिक ज्ञान नहीं है।

(४) मोलाराम के वंशज

कलाकार-त्रयी के सम्बन्ध में उक्त संक्षिप्त वर्णन के पश्चात्, यह उल्लेख कर देना परमावश्यक है कि गढ़वाल-चित्रशैली से शामदास के वंशजों का नाम अभिन्न रूप से जुड़ा है। मोलाराम के उपरान्त उसके पुत्र ज्वालाराम (१७८८-१८४८ ई०) और शिवराम (१७६०-१८५५), पौत्र आत्माराम और तेजराम (१८३३-१६०६ ई०) गढ़वाल-कला के अवनति-कालीन चित्रकार थे। ज्वालाराम के त्रेसठ चित्र मुकन्दीलाल - संग्रह में थे, और तीन १८०७, १८१४ और १८१५ ई० में निर्मित डॉ० रंधावा ने नूरपुर - महाराजा के संग्रह में देखे थे।[२२] उसका एक चित्र 'भुवनेश्वरी' इन पंक्तियों के लेखक ने राजकीय संग्रहालय अलमोड़ा में भी देखा है। शिवराम को ज्वालाराम से अच्छा चित्रकार बताया जाता है। आत्माराम के दो चित्र- 'शिव-पार्वती' और 'राधा-कृष्ण' गि० कि० जोशी के संग्रह में प्राप्त हुए हैं।[२३] अवनति-कालीन कला की क्षीण धारा इनके साथ समाप्त हो गयी। भले ही मोलाराम के प्रपौत्र हरिराम और तुलसीराम (१८८१-१६५० ई०) भी स्वर्णकारी के साथ चित्रकारी करते रहे। तुलसीराम के इक्कीस चित्र मुकन्दीलाल-संग्रह में थे।[२४]

इस वंश से गढ़वाल-कला के अन्त के विषय में जे० सी० फ्रैंच ने एक रोचक बात का उल्लेख किया है.- "बालकराम के पूर्वज अपनी आठ पीढ़ियों तक चित्रकारी करते रहे थे, परन्तु उनकी प्रत्येक पीढ़ी में एक व्यक्ति पागल हो जाता था। दुर्भाग्य की इस आशंका को टालने के लिए ही इस परिवार ने चित्रकला छोड़ दी थी, और वे स्वर्णकारी करने लगें। असम्भव नहीं कि बहुत - से चित्रों का विनाश मोलाराम के वंशजों द्वारा इसी दुर्भाग्य के कारण हुआ हो।" परन्तु गढ़वाल-कला की अवनति का सर्वोपरि कारण कालान्तर में समुचित संरक्षण का अभाव ही रहा।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

४.
गढ़वाल-शैली के चित्र-संग्रह

गढ़वाल और दूसरे पहाड़ी राज्यों के राजपरिवारों के मध्य दहेज में चित्रों का आदान-प्रदान एक पुरानी प्रथा थी। परन्तु महान् चित्रकार मोलाराम की मृत्यूपरान्त जब क्रमशः गढ़वाल-चित्रशैली की अवनति के दिन आरम्भ हुए, तब आरम्भ हुआ चित्रों का अधिक द्रुतता से बिखराव और बहिर्गमन। भविष्य में गढ़वाल-शैली पर अधिक व्यापक गवेषणा के लिए, इस शैली के मौलिक चित्र निम्नांकित संग्रहों में खोजे जा सकते हैं :

(१) महाराजा नरेन्द्रशाह - संग्रह, टिहरी, (गढ़वाल)।
(२) कुँवर विचित्रशाह-संग्रह, पुराणा दरबार टिहरी।
(३) राव वीरेन्द्रशाह - संग्रह, देहरादून।
(४) मोलाराम तोमर के वंशजों का संग्रह, श्रीनगर, (गढ़वाल)। सम्प्रति श्री द्वारका प्रसाद तोमर इस संग्रह के धारक हैं।
(५) बैरिस्टर मुकन्दीलाल-संग्रह, भारती भवन कोटद्वार- इस संग्रह के लगभग दो सौ पच्चीस चित्र गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर में दिये गये थे। श्रीनगर-संग्रहालय सूचीपत्र १९८९ में इस संग्रह के २०२ चित्रों का उल्लेख है। 'राधाकृष्ण-मिलन', 'प्रोषितपतिका' (संवत् १८६६ चैत का रेखाचित्र), आदि सुन्दर चित्रों सहित।
(६) दीवान रा० ब० चक्रधर जुयाल-संग्रह (कुँवर विचित्रशाह-संग्रह से)।
(७) गिरिजा किशोर जोशी, अल्मोड़ा- फतेहशाह कालीन दो चित्र, मोलाराम - निर्मित 'जैदेव वजीर' आदि दश चित्र, रुक्मिणी-मंगल के पन्द्रह चित्र (मोलाराम-संग्रह से), आत्माराम के दो चित्र (**वसुधारा**, सं० २००३, पृ० १०८-१२३)।
(८) राजकीय संग्रहालय अलमोड़ा - ज्वालाराम-निर्मित 'भुवनेश्वरी' चित्र।
(९) महाराजा नूरपुर - संग्रह।
(१०) भारत कला-भवन, वाराणसी - कुँवर विचित्रशाह-संग्रह से छः चित्र (कला-भवन सूचीपत्र, सं० २००२) ; "मोलाराम का एक सहस्ताक्षर चित्र", "गढ़वाल-शैली के अनेक सुन्दर और उत्तम चित्र" (**विशाल भारत**, मई १९३१, पृ० ६१२)।
(११) सीताराम शाह- संग्रह, वाराणसी।
(१२) राज्य संग्रहालय, लखनऊ।
(१३) बैरिस्टर मानक-संग्रह, पटना (कुँवर विचित्रशाह-संग्रह से)।
(१४) कस्तूरभाई लालभाई - संग्रह, अहमदाबाद - टैगोर - संग्रह से । टैगोर - संग्रह को चित्र बालकराम साह से प्राप्त हुए थे।
(१५) अजित घोष-संग्रह, कलकत्ता।
(१६) आर० के० कज़्रीवाल - संग्रह, कलकत्ता।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(१७) ओंकार चन्द सूद-संग्रह, शिमला।
(१८) जे० सी० फ्रैंच - संग्रह।
(१९) राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली।
(२०) बोस्टन म्यूजियम, संयुक्त राज्य अमरीका - आ० कुमारस्वामी से प्राप्त चित्र, जो उन्होंने १९१० ई० में बालकराम साह से क्रय किये थे। इनमें 'वर्षा - विहार' उत्कृष्ट चित्र।
(२१) ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन।
(२२) इंडिया आफिस, लन्दन।
(२३) विक्टोरिया एण्ड अलबर्ट म्यूजियम, लन्दन।
(२४) फिट्ज विलियम म्यूजियम, कैम्ब्रिज।

५.

गढ़वाल चित्रशैली के लक्षण

गढ़वाल चित्र-शैली में सत्रहवीं शती ई० के अंत से लेकर प्रायः मोलाराम के आरम्भिक-काल तक मुगल-शैली एवं प्रविधि का प्रयोग होता रहा। महाराजा फतेहशाह कालीन उपर्युक्त दो चित्र मुख्यतः मुगल-शैली से प्रभावित हैं। एक चित्र में राजा दरिद्रता के प्रतीक एक जीर्ण-वसन वृद्ध पर शर-संधान कर रहे हैं। दूसरे में राजा वन में बैठे हैं और सामने दो सिंह और एक बकरी शांतिपूर्वक एक घाट पर पानी पी रहे हैं। इन दो चित्रों को गढ़वाल-शैली के मौलिक चित्र मानने में कठिनाई होती है। मोलाराम - निर्मित 'मानिनी', 'मस्तानी' (सं० १८२८), 'सितारप्रिया' और 'हिंडोला' नामक चित्रों में मुगल-शैली का प्रभाव होते हुए, वे इस शैली के मौलिक चित्र हैं।

विषय की दृष्टि से, मुगल- और काँगड़ा-कला के बाह्य प्रभावों के होते हुए, गढ़वाल-शैली में अपनी पृथक् पहचान है। श्री फ्रैंच के अनुसार, "डिजाइन, विषय और प्रस्तुतीकरण समस्त सबलता से काँगड़ा-प्रभाव को प्रदर्शित करते हैं। परन्तु रेखा-प्रवाह और सामान्य वातावरण में एक निश्चित अन्तर है। गेयता और प्रवाह, जो काँगड़ा घाटी-रेखा की एक लाक्षणिकता है, यहाँ भी विद्यमान है, परन्तु यहाँ उस असाधारण कोमलता और कांति का अभाव है जो काँगड़ा - कला का एक गौरव है।"[२५] तथापि, अजित घोष के मत से, "भाव, उद्देश्य, प्रेरणा और प्रोत्साहन में भी गढ़वाल - शैली और काँगड़ा-कलम में समता है। किन्तु कुछ बातों में गढ़वाल-चित्रकला अन्य राजपूत-शैलियों से भी आगे बढ़ गयी है। यथा, चित्रों को शोभायमान और अलंकृत करने के उपादानों में, सूक्ष्मता और प्राकृतिक सौन्दर्य-प्रदर्शन में, गढ़वाली कलाकार आगे बढ़े हुए हैं ....."। इस शैली की अन्य विशेषताओं का उल्लेख करते हुए श्री वैद्य ने लिखा है - "इनमें अंकित आकृतियों के चेहरों की बनावट भी अन्य शैलियों से भिन्न है। अनेक चित्रों में कुछ पेड़ - पौधे बिना पत्तों के हवा में झकोले खाते हुए दिखायी पड़ते

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं। पत्तों से भरे पेड़-पौधों का अङ्कन छोटे तथा गोलाकार रूप में हुआ है। ऐसी अनेक निजी विशेषताओं के कारण गढ़वाल - कलम अपने अस्तित्व का समर्थ परिचय देने में सक्षम है।"[२६]

चित्रों के प्रमुख विषय हैं - रुक्मिणी-मङ्गल, नायिका-भेद, रामायण, महाभारत और कामसूत्र। दशावतार, अष्टदुर्गा, नवग्रह भी चित्रित हुए हैं। प्रारम्भ में रूप-चित्रों का प्रचलन रहा। परन्तु यह शैली भी सर्वोत्तम रूप में अभिव्यक्त हुई, कृष्ण - लीला अंकन में। लीलारत कृष्ण-राधा चित्रकारों का प्रिय विषय रहा है। "नारी-अङ्कन में कोई अन्य पहाड़ी शैली गढ़वाल-कला की ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकी। यहाँ वे अधिक छरहरी और मोहक दिखायी गयी हैं"।[२७] मुकन्दीलाल भद्र महिलाओं के ललाट पर पड़ा वक्र चन्दन-टीका भी इस शैली की एक विशेषता मानते हैं।[२८]

यहाँ भी काव्य और कला का सुन्दर समिश्रण हुआ है। नायिका के इस रूपायन में कलाकारों के प्रेरणा-स्रोत बिहारी, मतिराम, केशव, जयदेव आदि कवियों के ग्रन्थ रहे हैं। एक चित्र में नायिका के झूले से नीचे गिर पड़ने के बीच ही में कृष्ण द्वारा उसे थामकर बाहु-बन्धन में ले लेना ('हरि हिंडोरे गगन तें .....'), दूसरे में कृष्ण के ललाट पर प्रेमिका के पैरों का जावक लगा देखकर घर में राधा की आँखों में आग लग जाना, बिहारी-सतसई का प्रभाव है। इनमें प्रथम चित्र गि०कि० जोशी के और द्वितीय ओंकार चन्द सूद के संग्रह में है।

कलाकारों ने विभिन्न संदर्भों में पशु-पक्षी और पुष्प अभिप्रायों का सुन्दर अंकन किया। पुष्पित मन्दार का चित्रण यहाँ सामान्यतः होता रहा, जो मोलाराम के 'विप्रलम्भा-नायिका' आदि चित्रों में मुक्त रूप से दिखायी देता है। फ्रैंच के अनुसार, "गढ़वाल-शैली के पुष्पों में एक असाधारण रमणीयता और लावण्य है।" 'उषा-स्वप्न', 'मोरप्रिया', 'चकोरप्रिया' जैसे चित्रों में पक्षियों का चित्रण आकर्षक है।

प्रसिद्ध कला-समालोचक डॉ० कुमारस्वामी का यह कथन संगत है कि "राजपूत चित्रकला तत्त्वतः लोक-कला है जो सभी वर्गों के लोगों की अभिरुचि की पूर्ति करती है, ... वह गीतिकाव्य की- सी भावपूर्ण कला है।" इस दृष्टि से गढ़वाल-शैली भी एक लोककला है। जिसमें मिलती हैं ; पर्वतीय अञ्चल के समकालीन जीवन की कुछ स्मृतियाँ, ललित रूप में चित्रित उस जीवन की धार्मिक आस्थाएँ, सूक्ष्मता से चित्रित आभूषणों में स्वर्णकारी-कला का प्रभाव, आदि आदि। अतः इसमें उस काल का पुरातत्त्व भी सुरक्षित है जो संरक्षणीय है। इस शैली के मूल्यांकन और कला-संसार में प्रस्तुत करने के लिए जो महत् कार्य गढ़वाल के सुपुत्र मुकन्दीलाल ने किया, उसे अधिक गवेषणात्मक रीति से विवेचित करने की आवश्यकता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संदर्भ

१. कुमारस्वामी, आनन्द, राजपूत पेंटिंग, खण्ड १, पृ० ७।

२. **गढ़वाल पेंटिंग** तथा अन्यत्र मुकन्दीलाल ने 'हरदास' लिखा है, परन्तु ठाकुर शूरवीर सिंह पँवार इसे 'केहरदास' मानते हैं। इस सम्बन्ध में प्रायः **'गढ़राजवंश-काव्य'** एवं **'मंगतराम-मोलाराम संवाद'** की दो पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं :
(१) "स्यामदास जू के हरदासा। पिता पुत्र रहे माल के पासा।"
(२) "श्यामदास अरु हरदास ही। पिता पुत्र दोउ राखे पास ही।"
मुकन्दीलाल के संग्रह की १४ अक्टूबर १९४० की एक प्रतिलिपि में इस लेखक को 'हरदास' पाठ मिला है:
"स्यामदाश जू के हरदासा।
पिता पुत्र रेहें माल के पासा ।।५।।"

३. मुकन्दीलाल भी इस सम्भावना का खण्डन करते हैं (द्र०, **रूप-लेखा**, भाग २६ (२), १९५६ ई०; **गढ़वाल पेंटिंग**, दिल्ली, १९६९, पृ० १८)।

४. शर्मा शास्त्री, गोपाल, हिमाचल-प्रशस्ति, छठा भाग, काँगड़ा, २०२७ वि० सं०, पृ० ८१-८३।

५. सेन, सुजित नारायण, कारवान, दिल्ली, १ अक्टूबर, १९७०।

६. वैद्य, कि० ला०, **पहाड़ी चित्रकला**, पृ० १४८।

७. गैरोला, वा०, **भारतीय चित्रकला**, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६३ ई०, पृ० २१५।

८. ठाकुर पँवार मोलाराम का काल १७६०-१८५७ ई० मानते हैं (**उत्तराखण्ड भारती**, अंक दो, १९७३, पृ० ४५)।

९. यह चित्र सर्वप्रथम मुकन्दीलाल के लेख "सम नोट्स ऑन मोलाराम" (**रूपम्**, सं० ८, कलकत्ता, अक्टूबर १९२१) में अन्य चित्रों के साथ छपा था, जिसे लेखक ने बालकराम से लिया था। मुकन्दीलाल-कृत गढ़वाल पेंटिंग के चित्र संख्या दो और बाईस में निर्दिष्ट चित्र, वास्तव में, मोलाराम के आत्मचित्र नहीं हैं।

१०. **उत्तराखण्ड भारती**, प्रवेशांक, नैनीताल, १९७३, पृ० ३७।

११. **भारत कला-भवन का सूचीपत्र**, सं २००२, पृ० १०, तथा चित्र-संख्या १८।

१२. मेहता, **भारतीय चित्रकला**, पृ० ५०-५१।

१३. खाण्डलवाला, कार्ल, **पहाड़ी मिनिएचर पेंटिंग**, १९५८, पृ० १९८। 'वर्षा-विहार' चित्र के संदर्भ में वहीं पृ० २०४ भी द्र०।

१४. पँवार, शू० सिं०, उत्तराखण्ड भारती, अंक २, १९७३ ई०, पृ० ४५।

१५. घोष, अजित, **रूप-लेखा**, संख्या २, १९२९ ई०।

१६. फ्रेंच, जे० सी०, **हिमालयन आर्ट**, आक्स० यूनी० प्रेस लंदन, १९३१, पृ० १०६-१०८।

१७. मुकन्दीलाल के गढ़वाल-शैली विषयक लेख :- "सम नोट्स ऑन मोलाराम" **रूपम्** , २ (८), कलकत्ता, अप्रैल १९२१ ; विशालभारत, प्रथम अंक, जनवरी १९२८ (हिन्दी में प्रथम लेख) ; "गढ़वाल स्कूल ऑफ् पेंटिंग (१६५८-१८५८ ई०)", रूप-लेखा, खण्ड २० से २३ तक ; **हिन्दुस्तानी अकादमी पत्रिका**, प्रयाग, १९३२ से १९४४ तक ; **सरस्वती**, प्रयाग, सितम्बर १९४० ई० ; **त्रिपथगा**, कला-अंक, लखनऊ, १९५२ ; **नेहरू स्मारक ग्रन्थ** (१९४९ ई०) ; **उत्तराखण्ड भारती**, नैनीताल, जनवरी - मार्च, १९७३ ई० ; **इलेस्ट्रेटेड वीकली ऑफ् इं०**, ३ जून, १९७३ ; **सम्मेलन-पत्रिका**, कला-अंक, प्रयाग, १८८० शकाब्द ; "गढ़वाली चित्रकला में मोलाराम का स्थान", **वसुधारा**, प्रयाग,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संवत् २००३, पृ० १२४-१४४।

१८. **हिन्दुस्तानी**, १९३२ ई० ; गढ़वाल **पेंटिंग**, पृ० २१ ; **सम्मेलन-पत्रिका (कला-अंक)**, प्रयाग,, पृ० २२७।

१९. पँवार, **पूर्वोक्त**।

२०. माणकू एवं चैतू के लिए द्रष्टव्य :- मेहता, "टू पहाड़ी पेंटर्स ऑफ़ टिहरी गढ़वाल, माणकू एण्ड चैतू", **रूपम्** सं० २६ (१९२६); चक्रवर्ती, "वज माणकू ए पहाड़ी पेंटर?", **रूप-लेखा, खण्ड** २२(१), १९५१; मेहता, "माणकू, दि पहाड़ी पेंटर", **रूप-लेखा**, २१, सं० १, १९४९-५० ; रंधावा, "वज मानक दि पेंटर ऑफ़ गीतगोविन्द पेंटिंग्ज, ए गढ़वाली आर्टिस्ट ? ", **ललित कला**, सं० ७ (१९५९) ; कार्ल खाण्डलवाला, "दि आर्टिस्ट मानक", **आर्टस ऑफ़** हिमाचल, शिमला (१९७५) ; और अन्यत्र।

२१. मेहता, ना० च०, **स्टॅडीज इन इंडियन पेंटिंग**, बम्बई, १९२६, पृ० ५, फलकः १८-२०।

२२. रंधावा, "साइण्ड पेंटिग्ज ऑव् ज्वालाराम आर्टिस्ट ऑव् गढ़वाल", **रूप-लेखा, खण्ड** ३२ (२), दिल्ली, १९६१ ई०, पृ० ५१।

२३. त्रिपाठी, सु.ना. "पहाड़ी चित्रकला" **वसुधारा**, सं० २००३, पृ० १२०।

२४. **वैरिष्टर मुकन्दीलाल स्मृति-ग्रन्थ**, १९८९ ई०, पृ० १९६।

२५. फ्रेंच, जे० सी०, **पूर्वोक्त**, पृ० ५८।

२६. वैद्य, कि० ला०, **पूर्वोक्त**, पृ० १४९।

२७. मुकन्दीलाल, ग० पें०,, पृ० २३।

२८. तत्रैव, पृ० २२।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चतुर्दश अध्याय

मध्य-हिमालयीय इतिहास में अनुसंधान का स्वरूप

१.

इतिहास की व्यापकता

इतिहास के दो प्रधान अंग हैं : 'इतिहास' और 'पूर्व-इतिहास' (पुरातत्त्वविज्ञान)। पहला लिखित है तथा अतीत की घटनाओं और तथ्यों का वर्णन करता है। दूसरा अलिखित है, वह इतिहास की पहुँच से भी पूर्व जो कुछ था उस सामग्री को एकत्र करता है। वह सामग्री जो उसे सहस्र-लक्ष वर्ष प्राचीन शैलों, प्रस्तरित अस्थियों और पुरातन स्थापत्य में भरी मिलती है। इस प्रकार, इतिहास में निकट-भूत तथा सुदूर-भूत की उन समस्त बातों का वर्णन किया जाता है जो मानव ने अपनी युम - यात्रा में अनुभव की हैं, सोची हैं, कार्यान्वित की हैं और पोषित की हैं।

कुछ विद्वानों ने इतिहास को 'भूतकालीन राजनीति' तक सीमित कर दिया। राँके, ड्रायसेन और फ्रीमैन के नाम इनमें उल्लेखनीय हैं। परन्तु इतिहास का क्षेत्र तो अत्यन्त व्यापक है। प्रो0 जे0 टर्नर ने इस बात पर बल दिया है कि राष्ट्र के जीवन की सम्पूर्ण विधाएँ समष्टि रूप में उसके इतिहास में सन्निहित होनी चाहिए। सम्पूर्ण मानव जाति को इकाई मानकर इतिहास का वर्णन होना चाहिए। काण्ट का 'यूनिवर्सल हिस्टॅरि' का महान् विचार इसी सत्य को प्रस्तुत करता है। इतिहास की इस विषय-व्यापकता को देखते हुए बेकन की धारणा संगत थी कि "इतिहास मनुष्यों को बुद्धिमान् बनाते हैं।" इस व्यापक परिपेक्ष्य में, हमें ऐतिहासिक अनुसंधान का स्वरूप निर्धारित करना है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२.
ऐतिहासिक अनुसंधान की प्रक्रिया

मध्य-हिमालय से लेखक का मन्तव्य यहाँ उस प्रदेश से है, जिसके अन्तर्गत केदार और मानस के दो पौराणिक खण्ड तथा उनका पास-पड़ोस समाविष्ट है। बौद्ध-साहित्य, महाभारत और पुराणों में भी सर्वत्र 'हिमवन्त' और 'हिमालय' शब्द का प्रयोग इसी प्रदेश के लिए हुआ है। इस हिमालय के इतिहास पर उन्नीसवीं शती ई0 के आठवें-नवें दशक में जो अनुसंधान- कार्य आरम्भ हुआ था, उसके लेखक मुख्यतः अंग्रेज थे। इसमें त्रुटि यह थी कि एक तो यह व्यक्तिगत प्रयास था जो व्यक्ति की सीमाओं से आबद्ध था। पुनः विजातीय की संस्कृति को वे अपनी संस्कृति की आँखों से देखने का प्रयास कर रहे थे। तथापि गहन पर्यवेक्षण की प्रवृत्ति के कारण वे जो दोहन कर सके, उसके लिए हम सदैव उनके कृतज्ञ हैं।

इसके एक शतक पश्चात्, अब इस हिमालय प्रदेश में दो विश्वविद्यालयों की स्थापना से क्षेत्रीय इतिहास के अनुसंधान के लिए परिस्थितियाँ और साधन अधिक अनुकूल हो गये हैं। परन्तु यह मानना होगा कि इतिहास में 'अनुसंधान का स्वरूप' निश्चित नहीं हो पा रहा है। इतिहास में शोध की 'योजना' के महत्व पर सर्वप्रथम विचार होना चाहिए था जो नहीं हुआ। फलस्वरूप जो शोध- विषय गृहीत हो रहे हैं, उनसे समष्टि रूप से भविष्य में अधिक लाभकारी निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते । अस्तु, ऐतिहासिक अनुसंधान की प्रक्रिया में, सर्वप्रथम 'वैज्ञानिक दृष्टकोण', 'क्रमबद्ध योजना' तथा 'अनुसंधान-माध्यमों' के महत्व पर हमें विचार कर लेना चाहिए।

१. वैज्ञानिक दृष्टिकोण

इतिहास में 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' का मन्तव्य यह है कि सच्चा इतिहासकार ' दुराग्रहों' एवं पूर्वाग्रहों से दूर रहता है, तथा कभी अपुष्ट सूचनाओं पर विश्वास नहीं करता। वह यह भी जानता है कि समस्त ऐतिहासिक तथ्यों में नूतन सामग्री के प्रकाश में संशोधन के लिए स्थान होता है।

मध्य-हिमालय का इतिहास आज निर्माण की अवस्था में है। अशुद्ध तथ्यों पर 'दुराग्रह' के कारण बारंबार बल देकर हम अपने इतिहास के साथ अन्याय करते हैं। उदाहरण के लिए, अलकनन्दा तटीय 'राणीहाट' पुकारे जानेवाले स्थान - नाम को ही लीजिए। क्योंकि एक नाति प्राचीन स्थानीय लोकगीत में यह 'रणिहाट'- सा गाते हुए सुना जाता है। अतएव कुछ लोग इसी रूप को दुराग्रह से शुद्ध मान बैठे हैं और इसका प्रयोग भी कर रहे हैं। उनकी कल्पना के अनुसार, यह 'पुरणिहाट' का घिसा हुआ संक्षिप्त रूप है। परन्तु वास्तविकता यह है कि इस स्थान-नाम का पूर्वपद 'पुरणि' था ही नहीं, और किसी भाषाशास्त्रीय सिद्धान्त से 'पुरणि'

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(=पुरानी) शब्द का 'रणि' भी नहीं बनता। तब तो उनका भाषाशास्त्र 'राणीकोट', 'राणीचौंरी', और 'राणीगढ़' को भी क्रमशः पुरणिकोट, पुरणिचौंरी और पुरणिगढ़ का संक्षिप्त रूप बता सकता है! वस्तुतः 'राणीहाट' का पूर्वपद 'राणी' है जो रानी का गढ़वाली रूप है। सूच्य है कि गढ़वाल में जियारानी कर्णावती के नाम से बिनसर के पास भी दूसरा 'राणीहाट' स्थान है, और वह इसी नाम से पुकारा जाता है। इस प्रकार, श्रीनगर के सम्मुख गंगा-तट पर बसा उक्त स्थान भी 'राणीहाट' ही पुकारा जाता रहा है। ('राणी' शब्द से ही एलर्जी न हो तो बिनसर के समीपवर्ती दूसरे राणीहाट का इतिहास भी, जो अब तक अप्रकाशित ही है, जानने की जिज्ञासा होनी चाहिए।) यह है वैयक्तिक दुराग्रह का एक उदाहरण।

यही दुराग्रह यदा-कदा तालेश्वर -ताम्रपत्रों की कार्त्तिकेयपुर नामक प्रशासकीय इकाई को (जिसे अगली शतियों में 'विषय' कहा गया है) और पाण्डुकेश्वर-ताम्रपत्रों के 'कार्त्तिकेयपुर' को कत्यूर-घाटी के बैजनाथ से जोड़ देता है। जबकि यह आदि कार्त्तिकेयपुर नगर अलकनन्दा-घाटी में अवस्थित था। कालान्तर में, कत्यूर-घाटी में जो राजनगर उन शासकों के वंशजों ने बसाया वह 'बैजनाथ-कार्त्तिकेयपुर' कहलाया। अभिलेखीय प्रमाणों से भी यह सिद्ध हो चुका है। यही दुराग्रह प्रायः एक शती तक पाण्डुकेश्वर-दानपत्रों के शासकों को 'कत्यूरी शासक' मानता रहा। यह वैयक्तिक नहीं, भ्रांत स्रोत-ग्रन्थों पर आधारित दुराग्रह है।

इतिहास-लेखन में 'पूर्वाग्रह' का दोष प्रायः जातीय तथा क्षेत्रीय संकीर्णता के कारण देखा जाता है। गढ़वाल - कुमाऊँ के लेखकों द्वारा हिन्दी में लिखित पुराने इतिहासों पर कुछ आलोचकों को सामन्तशाही और उच्चवर्गीय प्रभाव परिलक्षित हुआ है । यदि यह सत्य है तो उनके लेखकों पर पूर्वाग्रह की छाया मानी जायेगी। परन्तु यदि हमारे वर्तमान इतिहास में राजतंत्र-विरोधी एवं उच्चवर्ण - विरोधी भावनाएँ प्रकट होती हैं तो हम पूर्वाग्रह से मुक्त कहाँ हैं? पूर्वाग्रहों सम्बन्धी उदाहरणों की कमी नहीं है। दुराग्रहों एवं पूर्वाग्रहों की मरुभूमि में भटकता हिमालय-इतिहास कभी सत्य का उद्घाटन नहीं कर सकेगा। ऐसा इतिहास मनुष्यों को बुद्धिमान् नहीं बना सकता, न राष्ट्रीय इतिहास के लिए लाभकारी हो सकता है।

इतिहास के साथ अन्याय होने की सम्भावना तब बढ़ जाती है, जब इतिहासकार ऐतिहासिक सामग्री का प्रत्यक्षदर्शी नहीं होता, अथवा उसके सम्बन्ध में वह 'अपुष्ट सूचनाओं पर विश्वास' कर लेता है। कार्त्तिकेयपुर - शासकों के 'पाण्डुकेश्वर-ताम्रपत्रों' को इसी कारण भ्रमवश कभी "कत्यूर के ताम्रपत्र" कहा जाता है, और कभी 'बदरीनाथ-ताम्रपत्र'। तथ्य यह है कि ये ताम्रपत्र पाण्डुकेश्वर के योगबदरी मन्दिर से मूलतः प्राप्त हुए थे, सुरक्षार्थ अब बदरीनाथमन्दिर- कार्यालय में रखे गये हैं। कहीं लिखा गया है कि वैदिक धर्मानुयायी नृपति शीलवर्म्मन् ने यज्ञ-सम्पादनार्थ "चैत्य का निर्माण किया"। जबकि शीलवर्म्मन् ने यमुना-तट पर

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"चिति" का निर्माण किया था। यह अपुष्ट सूचनाओं पर विश्वास करने का ही प्रतिफल है कि विद्वान् लेखक भी "बाड़ाहाट-त्रिशूल पर तिब्बती अभिलेख" होने, "गोपेश्वर-त्रिशूल के प्राचीन अभिलेख में किसी नाम के अंकित न होने" और "गजसिंह ही एक-मात्र मूर्ति लाखामण्डल में ही पाये जाने" की बातें लिख देते हैं ! स्वयं इस लेखक ने एक बार अपुष्ट सूचनाओं पर विश्वास कर, लालढाँग शिव-मन्दिर के पञ्चायतन लिंग को लिंगोद्भवमूर्ति लिख दिया था। इतिहासकार द्वारा इतिहास की किसी सामग्री का दर्शन न हो पाने पर उसका उल्लेख न कर पाना उतना आश्चर्यजनक नहीं माना जाता, जितना दुराग्रह और कही-सुनी बातों के आधार पर किसी स्रोत- सामग्री की विषयवस्तु को भ्रांत रूप में प्रस्तुत कर देना।

ऐतिहासिक अनुसंधान की प्रक्रिया निस्संदेह एक विज्ञान की प्रक्रिया है। प्रो. एच.सी. हॉकेट का कथन सत्य है कि "इतिहासकार को एक वैज्ञानिक की भाँति, उन्हीं प्रमाणों का उपयोग करना चाहिए जो विश्वस्त पर्यवेक्षण पर आधारित हों।" इसके लिए वह दूसरों की सूचनाओं, पर्यवेक्षणों, मान्यताओं और तथ्यों की सत्यता की जाँच एक वैज्ञानिक की भाँति करता है।

२. शोध - योजनाएँ

'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' सामग्री - संकलन एवं लेखन में ही नहीं, क्रमिक रूप से शोध-प्रकरण गृहीत करने और शोध-योजनाओं को प्रस्तावित करने में भी प्रयुक्त होना चाहिए। उदाहरण के लिए, एकाधिक शोध-प्रबन्ध सर्वप्रथम हिमालय-इतिहास की स्रोत-सामग्री पर लिखे जाने चाहिए जिनमें उन समस्त 'साहित्यिक स्रोतों' को एकत्र होना चाहिए जो मध्य-हिमालय पर संस्कृत-पालि साहित्य में तथा विदेशी यात्रियों के वृतान्तों में पाये जाते हैं। दूसरे शोध-प्रबन्ध स्रोत-सामग्री पर ही समर्पित हों जिनमें समस्त 'अभिलेखीय स्रोतों' को एकत्र किया जाएगा। डॉ. फ्लीट के भारतीय अभिलेख-संग्रह के प्रायः अनुरूप उनमें प्राकृत, संस्कृत एवं स्थानीय बोली के समस्त अभिलेख कालक्रम से सुविवेचित होने चाहिए। स्थानीय बोली के अभिलेखों के संग्रह के सम्बन्ध में दो बातें सूच्य हैं: प्रथम, इस प्रदेश की कुछ अभिलेखीय सामग्री दरबार पुस्तकालय काठमांडू और अन्यत्र नेपाल में भी प्राप्य हो सकती है। द्वितीय, पँवार- और चन्द-राजवंशों के विलुप्त ताम्रपत्रों की प्रतिलिपियाँ कभी-कभी पहाड़ी कागज पर 'सनदों' के रूप में भी सुरक्षित मिलती हैं। ये शोध-ग्रन्थ हिमालय-इतिहास के आधार स्तम्भ बन जायेंगे जिनसे अन्य सामाजिक विषयों के शोधकर्ता भी लाभान्वित होंगे। अमरीका में प्रादेशिक इतिहास पर इस प्रकार के प्रशस्त कोश, विश्वकोश और ग्रन्थ-सूचियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

शोध-ग्रन्थों की योजनाएँ स्थान-नामों के अध्ययन पर भी होनी चाहिए, जिनमें हिमालय के प्राचीन ऐतिहासिक भूगोल, वर्तमान स्थान - नामों तथा अन्य भौगोलिक नामों का विश्लेषण -

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वर्गीकरण हो। 'टोपोनीमी' के विभिन्न आधुनिक सिद्धान्तों का इस अध्ययन में उपयोग अपेक्षित है। स्थान-नाम अनेक प्रकार के हैं : (१) जो भारतीय इतिहास के प्रख्यात नाम हैं, परन्तु उनकी भ्रामकता अब तक बनी है। यथा, ' वैदिक सरस्वती' और पौरव-राजधानी ' ब्रह्मपुर'। (२) एक ही नाम के उन स्थानों का निर्वचन जो पृथक् स्थानों में पाये जाते हैं। यथा - पलेठी, कुठार, सिरोली, जौरासी, मासों, नैणी, पिल्ख, आदि। इस अनुसंधान - कार्य में भूगोल, इतिहास और भाषाविज्ञान - विभागों की समन्वित योजनाएँ लाभदायी होंगी । इसी प्रकार, मध्य-हिमालय में धार्मिक मत एवं सम्प्रदायों के इतिहास पर जो अन्वेषण- कार्य होगा, उसके अन्तर्गत सर्वप्रथम शैव-बहुल, वैष्णव -बहुल और शाक्त-बहुल स्थानों का सर्वेक्षण होना चाहिए। पुनः एक ही अञ्चल अथवा उपत्यका में यदि एकाधिक मतों के देवस्थान मिल जाते हैं तो उनकी न्यूनाधिक संख्या एवं पूर्वापर पुरातत्त्वीय स्तरों के आधार पर उनके विकास का इतिहास ज्ञात किया जा सकता है। हिमालय में धार्मिक मतों के जन्म और विकास का अध्ययन राष्ट्रीय इतिहास के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। अतएव पुरातत्त्व, इतिहास, भूगोल तथा संस्कृत विभाग यह कार्य सम्मिलित योजना द्वारा खण्डों में सम्पन्न कर सकते हैं।

स्रोत-सामग्री के बहुलांश पर अनुसंधान हो जाने के उपरान्त, ऐतिहासिक 'ग्रन्थ-सूचियों' (BIBLIOGRAPHY) में भी शोध वांछनीय है। यह योजना दो खण्डों में सम्पन्न की जायेगी :- प्रकाशित ग्रन्थ-सूची और हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची। इनका विवेचन विषयानुसार, वर्णक्रमानुसार और कालक्रमानुसार होना चाहिए।

ऐसी समस्त योजनाओं में हम "संयोग" (compound) का आश्रय लेंगे अर्थात् खण्डों की विशेषताओं की रक्षा करते हुए सँहति-क्रिया की जायेगी। अन्ततः "सँहति" (combination) ही हमारा उद्देश्य होगा जिसके अन्तर्गत खण्डों में सम्बन्ध स्थापित करके एक नये 'पूर्ण' का निर्माण किया जायेगा।

अस्तु, मध्य-हिमालयीय इतिहास पर शोध-योजनाओं के कुछ प्रकरण निम्नांकित क्रमानुसार प्रस्तावित किये जा सकते हैं :-

क. स्रोत-सामग्री के अन्तर्गत :

(१) भारतीय साहित्य में उत्तराखण्ड हिमालय।
(२) विदेशी यात्रियों के वर्णन में मध्य-हिमालय।
(३) मध्य-हिमालय के प्राकृत - संस्कृत अभिलेखों का अध्ययन।
(४) मध्य हिमालयीय बोलियों के अभिलेखों का अध्ययन।
(५) उत्तराखण्ड की उत्तर-मध्यकालीन अनुश्रुतियाँ और उनका ऐतिहासिक महत्व

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(लोकगाथाओं, भड़ेलों और जागरों के परिपेक्ष्य में)।

(६) जोशीमठ की यात्री-बहियों का ऐतिहासिक मूल्यांकन।

(७) उत्तराखण्ड की ऐतिहासिक ग्रन्थ-सूची।

ख. स्थान-नामों के अन्तर्गत :

(१) मध्य-हिमालय का ऐतिहासिक भूगोल।

(२) मध्य हिमालयीय स्थान-नामों का अध्ययन।

ग. पुरातत्त्व के अन्तर्गत :

(१) उत्तरकाशी जनपद का पुरातत्त्व।

(२) गढ़वाल हिमालय का पुरातत्त्व

(३) कुमाऊँ हिमालय का पुरातत्त्व।

(४) मध्य-हिमालय का प्रागैतिहासिक पुरातत्त्व।

(५) मोरध्वज-उत्खनन (१८८७ ई०) से प्राप्त सामग्री का ऐतिहासिक मूल्यांकन।

(६) मध्य-हिमालय की देवालय वास्तु- एवं शिल्प-कला।

(७) उत्तराखण्ड की जन-वास्तुकला।

घ. धर्म के अन्तर्गत :

(१) मध्य हिमालयीय पुरातत्त्व में धर्म।

(२) गढ़वाल-कुमाऊँ के शैव स्थलों का अध्ययन।

(३) उत्तराखण्ड हिमालय में शैव एवं शाक्त सम्प्रदायों का विकास।

(४) मध्य-हिमालय में बौद्ध धर्म का इतिहास।

ङ. राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के अन्तर्गत :

(१) प्राक्-ऐतिहासिक मध्य-हिमालय।

(२) ऋग्वैदिक आर्य तथा मध्य हिमालय।

(३) बुद्ध-पूर्वकालीन उत्तराखण्ड।

(४) उत्तराखण्ड में खशों का इतिहास।

(५) मध्य-हिमालय का आद्य इतिहास।

(६) मध्य-हिमालय का प्राचीन इतिहास (ई० पू० पाँचवी शती से ई० पाँचवी शती तक)।

(७) मध्य-हिमालय में कार्त्तिकेयपुर का राजवंश।

(८) उत्तराखण्ड का मध्यकालीन इतिहास (छठी से बारहवीं शती ईसवी तक)।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(९) गढ़वाल के बावन गढ़ों का इतिहास (महाराजा अजयपाल तक)।
(१०) गढ़वाल का पँवार राजवंश।
(११) कुमाऊँ का उत्तर-मध्यकालीन कत्यूरी राजवंश।
(१२) कुमाऊँ का चन्द राजवंश।
(१३) उत्तराखण्ड का इतिहास (तेरहवीं शती ई. से गोरखा आक्रमण तक)।
(१४) उत्तराखण्ड तथा नेपाल का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध।
(१५) केदारखण्ड ग्रन्थ का भौगोलिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन। इत्यादि।

'उत्खनन-योजनाओं' में ऐसे पुरास्थलों को भी लिया जायेगा जो पुस्तकों में अब तक अधिक चर्चित नहीं हैं, परन्तु जहाँ की पुरातत्वीय सम्भावनाएँ हम देख चुके हैं। उदाहरण के लिए, पुराने टिहरी नगर के पास खाण्ड ग्राम के कुषाणकालीन स्थल को प्राथमिकता मिलनी चाहिए थी। इस स्थल से प्राप्त कुषाणयुगीन मृत्तिकापात्रों के अवशेष पुरातत्त्व विभाग के एक अधिकारी ने मुझे दिखाये थे। अन्य स्थलों में गोपेश्वर, बिनसर, बैरासकुण्ड, बिलेश्वर, लक्षेश्वर, बैजनाथ, सेनापानी, इत्यादि ऐसे पुरास्थल है, जिनका परिवेश अपने अतल में अकूत सांस्कृतिक सम्पदा छिपाये है। परन्तु उत्खनन-योजनाएँ सदैव विश्वविद्यालयों अथवा सरकार के पुरातत्त्व विभाग के कुशल निर्देशन में ही सम्पन्न होनी चाहिए। हमें ज्ञात है कि अनेक उत्साही अनुसंधानकर्ताओं ने गढ़वाल-कुमाऊँ में स्वयं 'खोद-कार्य' कर दिया जिससे वे पुरास्थल भविष्य में उत्खनन के लिए अस्त-व्यस्त (disturbed) हो गये।

३. अनुसंधान के माध्यम

(क) **संग्रहालय** - यह सुविदित है कि हिमालय - पारिस्थितिकी इस प्रदेश के दुर्गम भूगोल का प्रतिफल है। अतएव ऐतिहासिक शोध की प्रगति के लिए इस प्रदेश में समृद्ध पुरातत्व-संग्रहालयों की आवश्यकता है। कुमाऊँ में अलमोड़ा-संग्रहालय तथा, गढ़वाल विश्वविद्यालय का श्रीनगर- संग्रहालय कुछ वर्ष पूर्व स्थापित हो चुके है। स्थानीय संग्रहों और इतिहास-विभागों के संग्रहों का अपना महत्व है, परन्तु स्वतंत्र संग्रहालय "म्यूजियोलॅजि" के सिद्धान्तों पर आधारित सुसंगठित संस्थान होता है, वह अधिक कुशलता-पूर्वक कार्य कर सकता है, और उससे छात्र ही नहीं बाहरी विद्वान् एवं अनुसंधानकर्ता भी लाभ उठा सकते हैं।

इन संग्रहालयों में संग्रह-कार्य के सम्बन्ध में दो बातें स्मरणीय हैः प्रथम, अर्चाधीन मन्दिरों की मूर्तियाँ संग्रहालयों में स्थानान्तरित कदापि नहीं की जानी चाहिए। सप्राण देवालयों को मूर्ति-शून्य कर संग्रहालयों को समृद्ध करने की रीति अनिष्टकारी है। उदाहरणार्थ, एक ओर पुरातत्व-विभाग अलमोड़ा के प्रसिद्ध कटारमल्ल सूर्यमंदिर के जीर्णोद्धार के लिए कटिबद्ध है, और दूसरी ओर, उसमें प्रतिष्ठित - नित्यपूजित भव्य सूर्यमूर्ति को सुरक्षा के बहाने

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अलमोड़ा-संग्रहालय में लाने की चर्चा भी चली है। अर्चाधीन प्राचीन मन्दिरों की पुरासामग्री की सुरक्षा का प्रबन्ध वहीं होना चाहिए। द्वितीय, हिमालय की दुर्लभ और प्राचीन पाण्डुलिपियाँ व्यक्तिगत हाथों में पड़ी रहने के कारण अभी तक उनका अध्ययन नहीं हो पाया है। उनका संग्रह भी संग्रहालयों में ही होना वांछनीय है। यह सत्य है कि पाण्डुलिपियों के व्यक्तिगत संग्रह उनके स्वामियों ने कठिन साधना से निर्मित किये हैं। परन्तु कहीं उनका संचालन लड़खड़ा गया है तो कहीं पाण्डुलिपियों की सुरक्षा संकट में पड़ी है। ऐसी दशा में, उनके स्वामियों को समुचित सम्मान प्रदान कर, उनसे पाण्डुलिपियाँ संग्रहालयों में हस्तान्तरित करने की प्रार्थना की जानी चाहिए।

(ख) **शोध-निर्देशन** - 'निर्देशन की प्रकृति' से भी अनुसंधान का स्वरूप प्रभावित होता है। शोध-निर्देशन औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रकार का हो सकता है। जो शोध-छात्र दोनों से लाभ उठाते हैं उन्हें अपनी संकल्पना के लिए अधिक ठोस सतहें मिलती हैं। शोध-छात्रों के हित में , औपचारिक निर्देशन के अधिकार का भी विस्तार किया जाना आवश्यक है। इसके लिए ऐसे 'विद्वज्जनों' को भी शोध-अधिनियमों में निर्देशक का अधिकार दे दिया जाता है जो अपने मौलिक कार्य द्वारा विख्यात हैं और जिन्हें उनकी विद्वता के कारण अन्य विद्वान् आदर भाव से देखते हैं, चाहे वे विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में सेवारत न हों। अनेक विश्वविद्यालयों में ऐसा प्राविधान है। निर्देशन की रश्मियाँ यदि मात्र विश्वविद्यालयों के पीठों से ही फूटेंगी तो शोध में चिंतन का क्षेत्र एकाकी होने का भय रहेगा। क्योंकि शोध-छात्र निर्देशन के लिए ही नहीं, आर्थिक सहायता तथा भावी जीविकोपार्जन की आशा में भी विश्वविद्यालयीय निर्देशकों पर निर्भर रहते हैं। अतएव कभी-कभी उन्हें अपने निर्देशकों को "लॉवी" के रूप में समर्थन देना पड़ता है, जो मौलिक शोध के लिए खतरे की घण्टी है। यद्यपि ऐसा सर्वत्र एवं सदैव नहीं होता। पर्वतीय विश्वविद्यालयों में भी बाहरी विद्वज्जनों को औपचारिक निर्देशन का अधिकार देकर, 'निर्देशन' को यदि मुक्त एवं विस्तृत आयाम दिये जावें तो ऐतिहासिक ही नहीं किसी भी विषय में अनुसंधान का स्वरूप अधिक स्वस्थ रूप में निखर सकता है। निर्देशन की अधिकार - सीमा में विस्तार कर, यदि शोध-छात्रों को बाहरी विद्वज्जन भी स्वतः औपचारिक निर्देशक के रूप में मिल जाते हैं तो 'लॉवी'-रहित स्वस्थ अनुसंधान के लिए क्या यह सौभाग्य की बात न होगी ?

३.

उपसँहार

ऐतिहासिक अनुसंधान का 'विषय क्षेत्र' प्रकृत्या विस्तृत है। परन्तु किसी-किसी अञ्चल से सम्बन्धित कुछ राष्ट्रव्यापी विषय भी होते हैं। ये राष्ट्रव्यापी विषय उससे सम्बद्ध अञ्चल को एक पृथक् व्यक्तित्व प्रदान करते हैं और भारतीय इतिहास से उसका सम्बन्ध जोड़ते हैं। दूसरे

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शब्दों में, इनका अन्य शोध-प्रकरणों की अपेक्षा देशव्यापी महत्व होता है। सौभाग्य से, मध्य हिमालयीय इतिहास के भी कुछ राष्ट्रव्यापी विषय हैं जो इस अञ्चल को महती गरिमा प्रदान करते हैं, और, जिन पर व्यापक अनुसंधान हुए बिना प्रामाणिक राष्ट्रीय इतिहास की कल्पना नहीं की जा सकती है। उदाहरण के लिए, "वैदिक सरस्वती" और "आर्यों का आदिदेश" इसी कोटि के विषय हैं। व्यक्तिगत रूप से हरिराम धस्माणा, भजन सिंह "सिंह", शूरवीर सिंह पँवार और बालकृष्ण भट्ट जैसे विद्वानों ने साहित्यिक स्रोतों के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला कि वैदिक सरस्वती ही नहीं आर्यों का आदि देश भी मध्य-हिमालय में ही था। परन्तु दोनों पर्वतीय विश्वविद्यालयों को भी सम्मिलित रूप में एक बृहत् प्रकल्प लेकर, और भौगोलिक, भूगर्भीय, पुरातत्त्वीय तथा नृवंशीय विवेचन द्वारा भी इस विषय को स्पष्ट करना चाहिए। यह प्रकल्प ठीक उसी प्रकार होगा जैसे भारतीय इतिहास संकलन-योजना के तत्वावधान में 'वैदिक सरस्वती नदी शोध-अभियान' का प्रकल्प। "कालिदास की जन्मभूमि", "कार्त्तिकेयपुर का राजवंश और "गढ़वाल चित्रशैली" (गढ़वाल कलम) भी इसी प्रकार के महत्त्वपूर्ण राष्ट्रव्यापी विषय हैं जिन पर विश्वविद्यालयों द्वारा भी व्यापक अनुसन्धान होना चाहिए। अवश्य ही, इस प्रकार के अनुसन्धान में संकीर्ण प्रादेशिकता, भावुकता एवं दुराग्रह का कोई स्थान न होगा।

मध्य हिमालयीय इतिहास में अनुसन्धान किन नियामक तत्त्वों से अनुशासित होना चाहिए, यह विचारणीय है। यहाँ तो उनमें से कुछ ही बातों का संकेत किया गया है, अथवा चर्चा का उपक्रम-मात्र है। इस स्वरूप - निर्धारण करने में पर्वतीय विश्वविद्यालयों, मान्य संस्थाओं एवं विद्वानों का योगदान अपेक्षित है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पञ्चदश अध्याय

भाषा की प्रकृति

(गढ़वाली के विशेष सन्दर्भ में)

१.

भाषा का प्रकृति-तत्त्व

बोली विशेष को भाषा के समकक्ष आने के लिए मूर्त, मांसल एवं शिष्ट स्वरूप में उतरना होता है। मात्र मुख की सम्पति भाषा नहीं बन सक्ती। लिपि से बोली मूर्त जीवन पाती है। तभी कोई कुशल कलाकार उसे तराशकर उसमें 'गढ़न' लाता है, कोई लावण्य योजना द्वारा भव्य बनाता है, और कोई उसके वर्द्धन में व्यस्त हो जाता हैं। बोली का वह मूर्त जीवन अब उस लोक-मानस की अभिव्यक्ति को स्थायी बनाकर, सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय बन जाता है।

किसी भाषा में अभिव्यक्ति एवं लेखन से पूर्व साहित्यकार उसकी स्वतन्त्र प्रकृति, उसका स्पन्दन और उसके विशिष्ट तत्त्वों का सूक्ष्म अनुशीलन कर लेता है। प्रकृति-बोध के विना अभिव्यक्ति - कार्य ऊसर में केसर की कल्पना होगी। तुलनात्मक अध्ययन से किसी भाषा में जो बातें अन्य भाषाओं से भिन्न जान पड़ेंगी, उन्हें ही उस भाषा की प्रकृति कहेंगे। भाषा की प्रकृति प्रायः मानव-प्रकृति के समान है। उदाहरणार्थ, क्रान्ति मण्डलीय प्रदेश कभी गोरांग जाति के लिए उपयुक्त सिद्ध नहीं हुए हैं। भाषा में अपनी प्रकृति के अनुकूल तत्त्वों को ही ग्रहण करने की प्रवृत्ति होती है। भाषा विकासशील है जिसका शरीर इतर भाषाओं के अच्छे और आवश्यकीय तत्त्वों को ग्रहण करता है, परन्तु अपनी प्रकृति का ध्यान रखकर। 'एस्पिरेंटो' (Esperanto) और 'हिन्दुस्तानी' भाषाओं की असफलता के क्या कारण हैं ? भाषाओं के विशुद्ध अनुवाद क्यों नहीं हो सकते ? इत्यादि, ऐसे प्रश्न हैं, जिनसे भाषा विशेष की स्वतन्त्र प्रकृति का बोध होता है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'भाषा' के रूप में गढ़वाली का इतिहास ग्यारहवीं - बारहवीं शताब्दी विक्रमी से पर्याप्त काल पूर्व से प्रारम्भ हुआ है। देवलगढ़ में, गढ़वाली राजभाषा के भूमिदान सम्बन्धी संवत् १३११ के एक शिलालेख का उल्लेख हमें मिलता है। गढ़वाली ही गढ़-राजाओं की राजभाषा थी जो हिन्दी की भाँति नागरी लिपि में लिखी जाती थी। पुरानी गढ़वाली में गद्य की ही प्रधानता थी। वह चाहे 'आदेशपत्रों' के रूप में मिलती हो और चाहे 'लोकगाथाओं' तथा 'तन्त्र-मन्त्रों' के रूप में। हम देखते हैं, अनेक स्थलों पर गढ़वाली में लिखित 'राजादेशों' की भाषा, अशोक के धर्म्म-प्रज्ञापनों के समान, सार रूप में अभिव्यक्त तथा सरल-सहज हृदय से प्रसूत है। अतएव प्रभावपूर्ण है। वह एक सशक्त भाषा का रूप ले चुकी थी। उसमें सशक्तता थी, क्योंकि वह गढ़ की माटी से उठती एक सुगन्ध थी, उसमें मौलिकता थी और वह पदे-पदे अपनी संस्कृति के तत्त्वों से सारवान् थी।

परन्तु, प्रकृतिगत करने की अपनी अपूर्व क्षमता के होते हुए, गढ़वाली भाषा में आज न अपनी प्रकृत्यनुरूप बाह्य तत्त्व गृहीत हो रहे हैं, और न ही उन्हें प्रकृतिगत किया जा रहा है। ऐसा इसलिए हो रहा है क्योंकि गढ़वाली के उस प्रकृति - तत्त्व के समीप पहुँचने का प्रयास ही नहीं है जो उसका जीवन है। इस बीच अवश्य गद्य से इतर रूपों को भी ग्रहण किया गया, कुछ उद्भावनाएँ नूतन तथा सुन्दर रूप में सामने आयीं, संग्रह-कार्य हुआ तथा समीक्षा-कार्य भी। अपनी सीमाओं में यह सब जो कुछ हो रहा है सराहनीय है। परन्तु अपनी अभिव्यक्ति में लेखक, इस भाषा की मौलिकता तथा निजत्व को त्यागकर, हिन्दी के पीछे घसीटते जा रहे हैं। अभिव्यक्ति ही नहीं, अलङ्कार-योजना भी, यहाँ तक कि स्वर-ताल सभी, हिन्दी के होते जा रहे हैं। विशेषतः यह बात उन लेखकों के विषय में कही जायेगी जो गढ़वाली जन-जीवन से सर्वथा विलग होकर, गढ़वाली की प्रकृति जाने विना, गढ़वाली में लेखन द्वारा उसके विकास की कल्पना कर रहे हैं।

२.
गढ़वाली भाषा की प्रकृति

गढ़वाली भाषा की सतह में वैदिक संस्कृत की इतनी स्पष्ट छाया है कि यह हिमालयीय अञ्चल, वास्तव में, वैदिक आर्यों का अभिजन विदित होता है। गढ़वाली के आंशिक शब्द, उसका वाक्य-विन्यास एवं लिपि हिन्दी के निकट है! हिन्दी के अन्य रूपों से अधिक इसकी संनिकटता राजस्थानी से है। उत्तर-मध्यकाल में गढ़देश में इतर भाषी जातियाँ संक्रमित हुई थीं। फलतः इनकी प्रभावशीलता में, प्रधानतः राजस्थानी तथा अंशतः अन्य हिन्दी रूपों की हवा भी अवश्य लगी। परन्तु इसके निजत्व के सम्बन्ध में न भ्रमित होने की आवश्यकता है, और न हिन्दी का पल्ला पकड़ने की। इस पर सदैव अपने विशिष्ट वातावरण का गाढ़ा रङ्ग था। उसके इसी प्रकृति-तत्त्व ने गढ़वाली का रूप-वैशिष्ट्य निरूपित किया।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भाषा में लेखन से पूर्व अवांछित कंकड़-पत्थरों को हटाना होता है। मेरा मन्तव्य यह नहीं कि बाह्य शब्द-प्रयोगादि गृहीत ही न हों। परन्तु सिद्धान्ततः, भाषा निज प्रकृत्यनुरूप तत्त्व ही ग्रहण करती है। क्योंकि देश एवं मानव-प्रकृति का सापेक्ष सम्बन्ध है, अतएव किसी देश में बसी हुई जाति की प्रकृति का प्रभाव निश्चितत: उसकी बोली वा भाषा में परिलक्षित होगा। ओ0 डबल्यू0 होम्स का इसी सत्य की ओर संकेत हैं - "Every language is a temple in which the soul of those who speak it is enshrined" अर्थात्, प्रत्येक भाषा एक देवालय है जिसमें उसके भाषियों की आत्मा प्रतिष्ठित होती है। अस्तु, प्रकृति-बोध के लिए, उस बोली वा भाषा के भौतिक वातावरण तथा आध्यात्मिक तत्त्वों की छाप छाँटनी होती है। पुरानी गढ़वाली के शब्द-प्रयोगों एवं अभिव्यक्ति में भी उसकी सहज प्रकृति के दर्शन होते है। इसके विना उसके 'नवोदित' साहित्य में अखड़न पैदा हो सकती है।

किसी भाषा की 'प्रकृति' का ज्ञान उसकी भाव-व्यञ्जना की विधियों, क्रिया-प्रयोगों, शब्द-रूपों, वाक्य-विन्यास, उपसर्ग-प्रत्ययों, लोकोक्तियों, लिङ्ग - विभक्तियों, आदि द्वारा होता है। शब्दोच्चारण में भी इसका दर्शन होता है। इसके अन्तराल में एक अमूर्त लोक-भावना, उस लोक-समूह का स्वतन्त्र चिन्तन एवं विशिट दृष्टिकोण अन्तर्निहित होता है। इसमें उस लोक जीवन की प्रतिछाया साकार होती है। आँग्ल कवि शैली का कथन यथार्थ है: "A poem is the very image of life", अर्थात्, कविता जीवन की प्रतिमूर्ति होती है।

गढ़वाली के पुराने लोक-गीतों तथा लोक-गाथाओं में यह प्रकृति अधिक स्पष्ट दिखायी देगी। इसलिए पुरानी गढ़वाली-लोकवार्ताओं (folklores) का व्यापक संग्रह तथा सम्यक् अध्ययन होना आवश्यक है। क्योंकि गढ़वाली का निजत्व तथा उसकी प्रकृति उनसे सच्चे अर्थों में स्फुटित होती है। यद्यपि वर्तमान गतिशील जीवन ने गढ़वाली लोक-समूह के शान्त-स्वतन्त्र जीवन को झकझोर- सा दिया है। उसे फ्रांस की धरती जानती है, वह टिगरिस में नहाया है, ब्रह्मदेश - मलय की घाटियों में उसकी हुँकार गूँजी है, कोरिया-मिश्र वासियों से उसने छाती मिलायी है। भारत का प्रत्येक नगर उसका घर बन गया है। तथापि परकीय शब्दों तथा अभिव्यक्तियों को अपनी प्रकृति के अनुसार आत्मसात् कर उन्हें गृहीत करने की गढ़वाली में अपूर्व क्षमता है।

गढ़वाली के इस वरेण्य लोक-साहित्य को अधोलिखित चार **वर्गों में बाँट** सकते हैं : प्रथम, वे **लोकगीत** हैं जो मुक्तक शैली में गेयता, माधुर्य एवं निजत्व के लिए प्रसिद्ध हैं। इनके अन्तर्गत, विवाह के 'माँगल' आदि संस्कार-गीत ; 'थड्या', 'झुमेलो', 'वसन्त' आदि के ऋतुगीत ; निराई, कटायी, पिसायी तथा ससुराल में नववधू के करुण क्रिया-गीत ; 'धामी' तथा 'औजी' के देवताओं सम्बन्धी धार्मिक - गीत ; तथा जाति-गीत आते हैं। द्वितीय, वे **लोक-गाथाएँ**

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं जिनमें वीररसपूर्ण कथानक की प्रधानता है। इनके अन्तर्गत 'पँवाड़े' तथा 'भड़ेला' हैं। तृतीय, वे अनेक लोककथाएँ हैं जो विनोद तथा उपदेश-तत्त्वों से युक्त हैं। चतुर्थ, वे प्रकीर्ण वा लोकोक्तियाँ हैं जो गढ़वाली में 'अखाणा' तथा 'पखाणा' नाम से प्रसिद्ध हैं।

उक्त समस्त लोक-साहित्य से समृद्ध गढ़वाली भाषा के प्रकृति-तत्त्व की, कुछ-एक विशेषताएँ साररूप में अधोलिखित हैं :-

(१) शब्द-रूप

हिन्दी शब्दों का जो सम्बन्ध संस्कृत-प्राकृत से है, गढ़वाली शब्दों का वही सम्बन्ध संस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी तथा हिन्दी के अन्य रूपों से है। जिस प्रकार हिन्दी में संस्कृत-प्राकृत के घिसे-पिसे 'तद्भव' उसकी सम्पत्ति हैं, उसी प्रकार संस्कृत, प्राकृत तथा राजस्थानी हिन्दी के घिसे अधिकांश शब्द ही गढ़वाली शब्द-भाण्डार में आते हैं।

प्रथम प्रकार के शब्दों में **रूढ़ वा ठेठ गढ़वाली** शब्द हैं। हिलाँस (एक सुन्दर हिमालयी पक्षी), **ब्वे** (माता), **भुली** (अनुजा), **ब्यालि** (व्यतीत कल), **खुद** (स्वकीयों के प्रति विरह-जन्य आत्मिक व्याकुलता जो रह-रह कर स्मृति में आती रहती है), **कलुकली** (दयनीय जीव पर निर्ममता देख करुणा में शिथिल होना) ऐसे ही शब्द हैं। इसी प्रकार, **घुघी, खज्ययीं, पितयीं, कुबरैली**, इत्यादि असंख्य ठेठ शब्द हैं। निजत्व के सहित, इनकी अन्य विशेषताएँ हैं - कोमलता, चित्रात्मकता तथा भाववाहकता। उदाहरणार्थ, 'ब्वे' वा 'बोई' शब्द महनीय 'माता' के लिए ही नहीं, प्रायः उसी स्नेह-सबलता तथा भाव-विस्तार के साथ वात्सल्य की मूर्ति 'लघु बाला' को भी कहा जाता है। असीम अनुराग के कारण, **दो भाव-छोरों को छूनेवाला 'ब्वे' शब्द** किसी भाषा में मिलना कठिन है।

ठेठ शब्दों के अन्तर्गत गढ़वाली के अनुकरणात्मक वा ध्वन्यात्मक शब्द भी हैं जो अत्यन्त मधुर, भाव-व्यञ्जक और वर्धमान् प्रकृति के हैं। **'नौन्यूँ कु गुमणाट', 'छोरूँ कु फ्वींफ्याट', 'बुड्या कु कणाट', 'लोगूँ कु गबदाट', 'दाथी कु छुमणाट', 'गदन्यूँ कु स्वींस्याट'**, आदि ऐसे ही ध्वन्यात्मक शब्द हैं, जिन पर गढ़वाली भाषा को गर्व है।

रूढ़ शब्दों में गन्धवाची शब्दों के उदाहरण देना भी रोचक होगा। दग्ध वस्तुओं के गन्ध-वर्ग के शब्द हैं : **कुतराँण** (सूती वस्त्र की), **किराण** (ऊर्ण वा रोम की), **भिभलाँण** (मांस की), **कुमराण** (तप्त मृतिकादि की)। अन्य अप्रिय गन्धों के लिए **खिखराण** (मिर्च की), **औंक्याण** (सीले अन्न की), **चिराण** (मूत्र की), **बुखाण** (स्वेद-तन की), इत्यादि ऐसे शब्द हैं जिनके पर्याय हिन्दी में खोजना व्यर्थ ही है। **सिलकाण** (सीलीभूमि वा वस्त्र की), **सड़्याण**

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(सड़न), आदि गन्धवाची शब्दों को इतना आत्मसात् कर लिया है कि परकीय तत्त्व प्रच्छन्न हो चुका है।

हिन्दी दिखायी देनेवाले **तन्त** (तत्त्व), **झूरि** (दुःख में कृसगात), **अछरी** (अप्सरा), **कबलास** (कैलास-सा उच्च- दुर्गम) शब्द तो ठेठ गढ़वाली हैं। क्योंकि प्रथम, ये हिन्दी की अपेक्षा गढ़वाली में अबाधतः बोले जाते हैं। द्वितीय, ये शब्द यहाँ उतने ही प्राचीन हैं जितना गढ़वाली लोक-जीवन।

द्वितीय प्रकार के वे संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी तथा विदेशी शब्द हैं, जिन्हें या तो प्रकृतिगत कर अथवा अविकल उसी रूप में ग्रहण किया गया है। उन्हें प्रकृतिगत या तो वर्णों के उलटफेर (वर्ण-व्यत्यय) से किया गया, अथवा तदर्थीय शब्द बनाकर। यथा - ठुमक से **मठु** ; संस्कृत गोमूत्रिका वा हिन्दीं बरधमुतान से **बल्दमुतण** ; कपाट से **किवाड़**; रुखी ग्रीष्म से **रूड़ी** ; नन्हीं से **नौंनी** ; अर्गला से **अंगल्या**। फारसी अख्तियार से **इक्त्यार** बन गया है। व्याकरणीगत कर भी यहाँ इतर शब्दों का पाचन हुआ है। यथा, हिन्दी **'आग'** का यथावत् प्रयोग होता है। परन्तु प्राकृत रूप **'अगिन'** को भाववाचक संज्ञा रूप में अपना लिया है।

अपने मूल रूप में ही गढ़वाली में जो संस्कृत प्रतिरूप चलते हैं, उनकी संख्या अल्प नहीं है। यथा -

माणि	बिट्	कति	मालु
नालि	द्यौ	सण	पली
खारी	रुप्य	श्यालि	

प्रचलित तत्सम तथा तद्भव शब्दों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उनमें विपुल संख्या लौकिक संस्कृत की नहीं, वैदिक संस्कृत की है। यथा - वंश > **बाँस** (गृह-आच्छादन में प्रयुक्त बल्ली), गोष्ठ > **गोठ**, नपात् > **नाति** (पौत्र), निःसद् > **निखिद** (निषिद्ध), लवन् > **लवैं** (फसल काटना), पलाव, *अथर्व०* > **पराल** (पुआल), इट् (रॉथ द्वारा निर्दिष्ट) > **हिट्** (चल), कुक्कुर > **कुकुर** (श्वान), इत्यादि। यह सम्बन्ध आकस्मिक नहीं हो सकता है। इस सम्बन्ध पर इतिहासविद् एवं भाषाविद् अनुसन्धानरत हैं ।

बेद (बेत) < विदत्थि, **तथगयी** < तत्तका, **पाथो** < पत्थ, **नालि**< नालि, **दूण** < द्रोण, **सच्च** < सच्च, **खारि** < खारि, इत्यादि शब्दों में, तथा मूर्धन्य 'ल' की ध्वनि में पालि का स्पष्ट प्रभाव है। 'न' के स्थान पर 'ण', 'स्' के स्थान पर 'श्' तथा 'र्' के स्थान पर 'ल' के बहुधा प्रयोग में भी मागधी का ही अविच्छिन्न प्रभाव है। प्राकृत-अपभ्रंश में 'ण' की प्रवृत्ति प्रबल थी।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'र' से 'ल' में परिवर्तन **प्राकृत-पैंगलम्** में भी निर्दिष्ट है। भाषाविदों का कथन है कि "वैसे, र > ल में परिवर्तन मुख्यतः मागधी तथा वैकल्पिक रूप से चूलिका पैशाची प्राकृत की विशेषता रही है" (सिंह, **पृथ्वीराजरासो की भाषा**, पृ० ५३)। अस्तु गढ़वाली प्राकृत-मूल प्रधान है। प्राकृत 'गूण' (अश्वादि पर लादा जानेवाला भार का बँधा गट्ठर) आदि पदों का प्रयोग गढ़वाली में आज भी यथावत् होता है।

हिन्दी के अन्य रूपों की अपेक्षा गढ़वाली पर राजस्थानी का सर्वाधिक प्रभाव है। पुरानी राजस्थानी के निम्नलिखित शब्द, जो **पृथ्वीराजरासो** के 'कन्नवजसमय' में मिलते हैं, ठेठ शब्दों जैसे गढ़वाली में प्रयुक्त होते हैं :-

अवास (आवास)	असाढ़ (आसाढ़)
कतिग (कितना ही)	कोतिग (कौतुक)
छाअण (छादन)	निंद (निद्रा)
पसर (प्रसार)	पावाँर (परमार)
यत्त्त (यत्र)	मँझ, मधि (में)
रहणो (रहना)	रजपूत (राजपुत्र)
रावुत > रावत (राजपुत्र)	सज्जिगे (सज गये)
सब्बु (सब, समस्त)	

यह असम्भव नहीं है कि उक्त राजस्थानी कहे जानेवाले अनेक शब्द सीधे अपभ्रंश से गढ़वाली में आये हों। फारसी का 'साल' (वर्ष) शब्द तो आज यथावत् अपनाया गया है, परन्तु उसी के 'शाह' तथा 'साबित' शब्द 'साह' तथा 'साबुत्त' बनाकर ग्रहण किये गये हैं।

शब्द-रूपों के ये अल्प उदाहरण हैं। परन्तु गढ़वाली शब्दों की प्रकृति-ज्ञान के लिए एवं उनमें गढ़वाली का निजत्व देखने के लिए इतना कथन अलम् होगा।

(२) ध्वनि - रूप

यहाँ शब्दोच्चारण तथा अभिव्यक्ति में एक सहज संगीत है। हिमालय पर बसे पर्वतीय जन की इस विशेषता का उल्लेख वाल्टन ने भी अपने 'गढ़वाल गजेटियर' (१६१०, पृ० ८०) में किया है : "गढ़वाली एक संगीतमय स्वर (Sing-Song Voice) में कहता है जो बिल्कुल स्कॉटलैण्ड के नवागत व्यक्ति का स्मरण दिलाता है।"

गढ़वाली का जो बोला जानेवाला रूप है, उसे यथावत् लिखित रूप में उतारना सरल नहीं

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। क्योंकि उसकी अनेक शब्द - ध्वनियों में ऐसा ही निजत्व है जो देवनागरी वर्णमाला में ध्वनित नहीं हो सकता। गढ़वाली-शब्दकोश के सम्पादन के समय इसके लिए कुछ पृथक् ध्वनि-संकेत बनाने होंगे।

गढ़वाली शब्दों की ध्वनियाँ अपने प्राचीन रूप संस्कृत - प्राकृत के अधिक निकट हैं। कुमाउँनी जैसे उनसे दूर भाग रही है। अल्प उदाहरण अवलोकनीय हैं:-

	गढ़वाली	कुमाउँनी		गढ़वाली	कुमाउँनी
(क)	निन्द (निद्रा)	नीन	(ख)	मोल़ (गोबर)	मोव
	डाँडा (पर्वत)	डाना		बाल़ (बाल)	बाव
	भाण्डा (भाण्ड)	भाणा,भानि		अकाल़ (अकाल)	अकाव
(ग)	थाल़ी (स्थाली)	थाई	(घ)	ससुरु (श्वशुर)	सौरा
	देल़ी (देहली)	देई		अंद्वार (समरूपता)	अन्वार
	अँचुलि़ (अंचल)	अँचुइ		खुपड़ी (कपाल)	खोरी

ध्वनियों को प्रकृतिगत करने की अपनी-अपनी प्रक्रियाएँ रहीं। गढ़वाली ने शब्दों के प्राचीन ध्वनि-रूपों को अधिक सुरक्षित रखा। कुमाउँनी बहुधा प्राचीन ध्वनियों से दूर रही है, परन्तु वह मधुर, काव्योचित तथा संक्षिप्त ध्वनि-रूपों से सम्पन्न है।

(३) उपमान

अपनी शब्द-समृद्धि एवं भाव-कोमलता के कारण, गढ़वाली भाषा में उपमान भी अधिक सुन्दर, सार्थक तथा प्रकृत्यनुरूप हैं। आँग्ल वाइलिट (Violet) से हिमालयी 'फ्यूँल़ी' का पुष्प अधिक कोमल ; मालती वा करील के कुँज से हिमालयी 'कूँजों' अधिक यथार्थ तथा मादकपूर्ण है। हिमालयी 'भेल्वड़ि' आँग्ल नाइटिंगेल से अधिक विरह-विदग्ध है। गढ़-कवि के शब्दों में -

"इखुली - इखुली गहरी गदन्यूँ,
चुप रुँदि किलै म्यारि मेल्वड़ि तू ?
इनु क्या च चुची दिल माँ दुःख वो,
घरु छोड़ि जु यूँ बणु माँ पड़ि तू ?"

हिमालयी 'बुराँस' और 'ग्वीराल़' के फूल आँग्ल डेजी (daisy) पुष्प से भी अधिक भोले तथा सौन्दर्यपूर्ण हैं। हिमालयी 'घुघती' तथा 'हिलाँस' शेक्सपीयर के स्काईलार्क से अधिक अनुराग - उद्दीपक हैं। यदि कोई गढ़वाली में लिखे- 'कमरि चs शेरनि जनि पतली', तो यही मानेंगे कि वह हिन्दी भले ही जाने, परन्तु वह गढ़वाली में लिखने का दुस्साहस ही कर रहा है।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होना चाहिए - **'कमरि घऽ कुमाली - सी ठाण'**। बस यही है निजत्व अथवा प्रकृति-तत्त्व।

(४) लोकोक्तियाँ

गढ़वाली की लोकोक्तियाँ इतर अनेक भाषाओं से निश्चय ही अधिक संगत, मर्मस्पर्शी, संगीतमय एवं निजत्वपूर्ण हैं। आँग्ल 'क्रोकोडायल टियर्स' से 'थूका आँसू' अधिक संक्षिप्त तथा यथार्थ है। **'बडूँ, कू नि टुट्याँ लूण-पाणी, छुटूँ नि हुयाँ हूण-खाणी'** में कितना तोष कितनी उदारता है ! **'कणसा बटी खवाणो,** जेठा बटी बिवाणो' में गढ़वाली जन का जातीय आचार ; **'बोई जि हूँदी रोई क्याँकि'** में एक गढ़वाली का मातृप्रेम तथा **'दौड़ि चली त चढ़ीं राँड, मठु चली त सड़ीं राँड'** में पर्वतीय नारी की मर्यादा निखर उठती है। हिन्दी के 'नमक लगे न फिटकरी, रंग निकले चोखा' से **'लूण - डलि फुटो ना अलुणो साग हो ना'** अधिक तुकान्त एवं ऐतिहासिक है। **'घोर का चार बचन घरघरा'**, 'जना का तना होला कना' कितने अनुप्रासयुक्त हैं ! सत्य ही, इन लोकोक्तियों में गढ़वाली की प्रकृति, मौलिकता, अतीत तथा रागात्मक मोह छिपा है। इधर कुछ गढ़वाली साहित्यकार यदा-कदा अंग्रेजी तथा हिन्दी मुहावरों के अविकल अनुवाद प्रस्तुत कर, सामान्य लोगों के बोध में व्यवधान पैदा करते ही हैं, साथ ही सीधी व्यञ्जना नहीं कर पाते। इस सम्बन्ध में हिन्दी के एक विद्वान् का कथन यथार्थ है - "यदि अनुवाद के समय कोई मुहावरा सामने आ जाय तो होना तो यह चाहिए कि अपनी भाषा में उससे मिलता-जुलता कोई मुहावरा ढूँढा जाय, और यदि वह न मिले तो उसका भाव ऐसे ढंग से प्रयुक्त किया जाय जो अपनी भाषा की प्रकृति के अनुकूल हो।"

३.
उपसँहार

मध्य-हिमालयीय एक भाषा की स्वतन्त्र प्रकृति का आभास इन स्वल्प पृष्ठों में उसके शब्द - रूपों, शब्द- ध्वनियों, उपमानों तथा लोकोक्तियों के स्पर्श-मात्र से दिया गया है। उसकी भाव - व्यञ्जना, शब्दोच्चारण एवं भाषा के लयात्मक रूप में भी ऐसा ही निजत्व है। कुमाउँनी भाषा की प्रकृति स्वाभाविकतः इसी के समरूप है। वस्तुतः जितना ही हम अतीत की ओर झाँकते हैं, गढ़वाली-कुमाउँनी का अन्तर मिटता दिखायी देता है।

'स्वस्ति-गो-ब्राह्मण-लेखक-वाचक-श्रोतृभ्य इति ।। '

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संक्षिप्त सन्दर्भ-सूची

क. मूल संस्कृत-पालि ग्रन्थ

संकेताक्षर	ग्रन्थ	संस्करण
ऋ०	ऋग्वेद संहिता	वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, वि० संवत् १९५७।
शत० ब्रा०	शतपथब्राह्मणम्	लक्ष्मीवेंकटेश्वर मुद्रणालय, कल्याण मुम्बई, १९४० ई०।
तैत्ति०आ०	तैत्तिरीयआरण्यक	बैप्टिष्ट मिशन मुद्रणालय, कलकत्ता, १८७१ ई०।
ऐ० ब्रा०	ऐतरेयब्राह्मण	आनन्दाश्रम मुद्रणालय, १८९६ ई०।
रामा०	वाल्मीकि रामायण	गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २०१७।
महाभा०	महाभारत	(१) स्वाध्याय मण्डल,पारडी, संवत् २०२५-३६ तथा (२) गीता प्रेस, गोरखपुर।
हरिवंशपु०	हरिवंशपुराण	वेंकटेश्वर मुद्रणालय, मुम्बई, संवत् १९८० (पत्रात्मक)।
मार्क० पु०	श्रीमार्कण्डेयमहापुराणाम्	नैमिषारण्य (सीतापुर), वि० सं० २०४२।
शिवपु०	शिवमहापुराण	श्रीवेंकटेश्वर मुद्रणालय, मुम्बई, वि०सं० १९६५।
वामनपु०	वामनपुराणाङ्क	गीता प्रेस, गोरखपुर, १९८२ ई०।
-	महापरिनिब्बानसुत्तं	ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, वि०सं० २०१५।
-	दिव्यावदान	संस्कृत विश्ववि० दरभंगा (देवनागरी लिपि में)।
-	अष्टाध्यायी	
बृ० सं०	वाराही (बृहत्) संहिता	श्रीवेंकटेश्वर मुद्रणालय, मुम्बई, वि०सं० २००९।
-	अभिज्ञानशाकुन्तलम्(सम्पा०)	निरूपण विद्यालंकार, मेरठ, अष्टम सं०, १९८२ ई०।
-	काव्यमीमांसा	बड़ौदा संस्कृत सिरीज, १९१६ ई०।
राजतरं०	राजतरंगिणी	एम० ए० स्टाइन सम्पा०।
-	केदारखण्ड	श्रीवेंकटेश्वर मुद्रणालय, मुम्बई, वि०सं० १९६३ (१९०६ ई०)।
-	मानसखण्डः	श्रीनित्यानन्द-स्मारक-समिति, वाराणसी, १९८९ ई०।

ख. हिन्दी-अंग्रेजी समीक्षा ग्रन्थ, निबन्ध, सूचीपत्र

लेखक	प्रकाशन-वर्ष	पुस्तक*, संस्करण, प्रकाशक, पृष्ठ
अग्रवाल, वासुदेवशरण	१९६९.	पाणिनिकालीन भारतवर्ष, द्वि०सं०,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

		चौखम्बा, वाराणसी।
एट्किन्सन, एडविन टी०	१८८२-८६.	दि हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स ऑव् दि नार्थ-वेस्टर्न प्रॉविन्सेज ऑव् इंडिया, ३ भाग, इलाहाबाद तथा कलकत्ता। पुनर्मुद्रण : कोस्मो पब्लि० दिल्ली, १६७३।
कनिंघम, अलेक्जेण्डर	१८७१.	आर्किअॅलॉजिकॅल सर्वे रिपोर्ट्स-१८६३-६४, खण्ड २, शिमला।
....	१८७१.	दि एन्शॅंट जिऑग्राफि ऑव् इण्डिया, १, लंदन। पुनर्मुद्रण : लो प्राइस पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १६६०।
चट्टोपाध्याय, क्षेत्रेशचन्द्र	१६८६.	ऋग्वैदिक रिवर सरस्वती, नार्दर्न बुक सेन्टर, नयी दिल्ली (प्रथम भारतीय सं०)।
चित्राव, सिद्धेश्वरशास्त्री, वि०सं०	२०२१.	भारतवर्षीय प्राचीन चरित्रकोश, भा०च०मं०, पूना-४।
जयचन्द्र विद्यालङ्कार	१६६०.	भारतीय इतिहास की मीमांसा, हिन्दी भवन, प्रयाग।
जूलियन, एम०	१८५७.	HIOUEN THSANG, ३ खण्ड, पेरिस।
डबराल, शि० प्र० वि०सं०	२०२२, २०२६.	उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १ तथा ३, वीरगाथा-प्रकाशन, दोगडा।
दे, नन्दलाल	१६२७.	जिऑग्रैफिकॅल डिक्शॅनॅरि ऑव् एन्शॅन्ट एण्ड मेडिवॅल इण्डिया, द्वि०सं०, लंदन।
त्रिपाठी, ताराचन्द्र	१६८३.	"तालेश्वर दानपत्रों के प्रकाश में ब्रह्मपुर की खोज", पहाड़, अंक १, नैनीताल, पृ० १३-१६।
पँवार, ठा० शूरवीर सिंह	१६७७.	"उत्तराखण्ड : दि क्रेडल ऑव् आर्यन्स", दि हिमालय, खण्ड १, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर।
फूह्ररर, ए०	१८६१.	दि मॉन्यूमेन्टॅल ऐंटिक्विटीज एण्ड इन्सक्रिप्शन्स् इन दि नार्थ-वेस्टर्न प्रॉविन्सेज एण्ड अवध, खण्ड २ (आ०स०इं०, न्यू सिरीज, खण्ड १२), लखनऊ। पुनर्मुद्रित वाराणसी, १६६६।
फ्लीट, जॉन फेथफुल	१६७४.	भारतीय अभिलेख संग्रह, खण्ड ३, राजस्थान

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

		हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर (गुप्त इन्सक्रिप्शन्स, १८८८ का हिन्दी अनु०)।
बील, सैम्युअल	१८५७-५८.	**बुद्धिस्ट रिकार्डस् ऑव् दि वेस्टर्न वर्ल्ड**, ४ खण्ड, १८८४। सुशील गुप्त, कलकत्ता।
-	वि०सं० २००२.	**भारत-कला-भवन का सूचीपत्र**, काशी नागरी प्र० सभा।
मजूमदार, रमेशचन्द्र, (सम्पा०)		**दि हिस्टॅरि एण्ड कल्चॅर ऑव् दि इण्डियन पीपुल**, खण्ड १-५, विद्या भवन, बम्बई-७।
मुकन्दीलाल	१९६८.	**गढ़वाल पेंटिंग**, पब्लिकेशन्स डिविजन, भारत सरकार, नयी दिल्ली।
मैक्डॉनल एवं कीथ		**वैदिक इंडेक्स ऑव् नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स**।
भट्ट, मदनचन्द्र	१९६६,१९६९.	"कार्त्तिकेयपुर का खस राज्य", **स्टडीज**, खण्ड ३, तथा "ब्रह्मपुर की खोज", **स्टडीज**, खण्ड ६, डी० एस० बी० राजकीय कॉलेज, नैनीताल।
रतूड़ी, हरिकृष्ण	१९२८.	**गढ़वाल का इतिहास**, गढ़वाली प्रेस, देहरादून।
....	१९१०.	**गढ़वाल वर्णन**, निर्णय सागर प्रेस।
रामचन्द्रन्, टी० एन०	१९५३.	"अश्वमेध साइट नियर कालसी", **ज० ओ० रि०**, खण्ड २१, पृ० १-३१।
लाहा, बिमलचरण	१९७२.	**प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल**, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ।
वाटर्स, टॉमस	१९०४.	**ऑन् युवान्-च्वाङ् ज ट्रैवेल्स इन इण्डिया** (सि-यु-कि), २ खण्ड, लन्दन। पुनर्मुद्रण : मुन्शीराम मनोहरलाल, दिल्ली, १९६१।
सरकार, दिनेश चन्द्र	१९६५.	**सिलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स्**, खण्ड १, द्वि०सं०, कलकत्ता।
....	१९५५.	"थ्री प्लेट्स् फ्रॉम पाण्डुकेश्वर", **इपि० इं०**, खण्ड ३१ (६), पृ० २७७-९८।
सांकृत्यायन, राहुल	१९५३.	**गढ़वाल**, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद।
....	१९५६.	**किन्नरदेश में**, किताब महल, प्रयाग।
....	वि०सं० २०१५.	**कुमाऊँ**, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिंह, भजन सिंह १६८६. आर्यों का आदिनिवास : मध्य हिमालय, द्वि0सं0, भागीरथी प्रकाशन-गृह, टिहरी।

* खण्ड = Vol., भाग = Part

ग. पाण्डुलिपियाँ

श्रीरामायणप्रदीप, श्रीलक्ष्मीधर-विद्यामन्दिर, देवप्रयाग की प्रति।

सभासार, सुदर्शनशाह-रचित, राजकीय पुस्तकालय टिहरी की संवत् १८६८ एवं १६२५ की प्रतियाँ।

चन्द्रबदनीमन्दिर-प्रलेख ; केदारेश्वर मन्दिर, **दूयूल-प्रलेख** ; **रुद्रनाथ-प्रलेख**। इनमें से कुछ लेखक के संग्रह में हैं (पृथक्-पृथक् लेख्यों के रूप में)।

परम्परागत गढ़ों की **घाँदपुर-सूची**, वि0सं0 १६३२ तथा **ग्यारहगाँव-सूची**।

पंजी बी (पार्ट III), टंकित, राज्य संग्रहालय, लखनऊ।

टिहरी-गढ़वाल राज्य का मानचित्र, १६३० ई0, राजकीय पुस्तकालय, टिहरी।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आ भा र

लेखक निम्नलिखित प्रकाशकों एवं संगोष्ठियों के कार्यविवरण - धारकों का आभारी है जिन्होंने इस ग्रन्थ के लिए निम्न लेखों के प्रकाशन की अनुमति प्रदान की है :-

१. आजकल (मासिक), जून १९८६, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नयी दिल्ली ("मूर्ति-शिल्प" के लिए).
२. पहाड़, अंक १, नैनीताल, अक्टूबर १९८३ ("बावन गढ़-गाथा" के लिए).
३. वसुधारा, गढ़वाल साहित्य परिषद्, प्रयाग, मई १९८१ ("पँवारकालीन देवालय-प्रबन्ध" के लिए).
४. वैरिस्टर मुकन्दीलाल स्मृति-ग्रन्थ, कोटद्वार, फरबरी १९८६ ("गढ़वाल चित्र-शैली" के लिए).
५. संग्रहालय पुरातत्त्व पत्रिका, अंक ३६, राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जून १९८७ ("पँवार-राजधानी देवलगढ़ का पुरातत्त्व" के लिए).
६. संग्रहालय पुरातत्त्व पत्रिका, अंक ४७-४८, राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जून-दिसम्बर, १९९१ ("ललितशूरदेव का कण्डारा ताम्रपत्राभिलेख" के लिए).
७. गढ़वाल अकादमी, मसूरी, संगोष्ठी २७ मई, १९८४ का कार्यविवरण ("पुराणों में हिमवन्त" के लिए).
८. प्राच्य विद्या अकादमी, उ0 प्र0, ज्वालापुर (हरिद्वार), गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार संगोष्ठी, २८ मार्च, १९८७ का कार्य - विवरण ("कार्त्तिकेयपुर का राजवंश" के लिए).
९. उत्तराखण्ड शोध-संस्थान, देहरादून संगोष्ठी, २७ दिस0, १९८८ का कार्य - विवरण ("ऋग्वेदीय नदी सरस्वती" के लिए).
१०. उत्तराखण्ड शोध-संस्थान, अलमोड़ा संगोष्ठी, १७ अक्टूबर, १९८७ का कार्य - विवरण ("मध्य हिमालयीय इतिहास में अनुसन्धान का स्वरूप" के लिए).

छायाचित्रों एवं रेखांकनों को प्रदान करने तथा उनके प्रकाशन की अनुमति के लिए लेखक अधोलिखित संस्थाओं, संग्रहालयों एवं व्यक्तियों का भी उपकृत है :-

१. भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, उत्तरी मण्डल, आगरा (चित्र - १,३,८,९,१९ के लिए).
२. राज्य संग्रहालय, लखनऊ (चित्र - ४ के लिए).
३. उत्तर प्रदेश राज्य पुरातत्त्व संगठन, पर्वतीय इकाई गढ़वाल (चित्र - ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, २१ के लिए).
४. श्रीनगर संग्रहालय (चित्र - ७ के लिए).
५. आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'मालनी के वनों में' (चित्र - २३ के लिए).
६. डॉ0 यशोधर मठपाल, भीमताल : (रेखांकन संख्या - ६ के लिए).
७. अनूप साह, नैनीताल (चित्र - ५ तथा आवरण चित्र के लिए).
८. रूप सागर स्टूडियो, उत्तरकाशी (चित्र - २२ के लिए).
९. पब्लिकेशन्स डिवीजन, भारत सरकार नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'गढ़वाल चित्रकला', सित0 १९८३ (चित्र -२५ के लिए).
१०. डॉ0 हरिमोहन, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (आवरण - चित्र 'स्कन्द' के लिए).

----------00000----------

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अनुक्रमणिका

*(व्यक्ति, स्थल एवं ग्रन्थ *)*

अगरज *रा* - कुणिन्द ८

अगस्त्यमुनि *स्थ* १००, १५४, १६२ टि,
= अगस्त्याश्रम ४५

अग्निपुराण *ग्रं* १६, ७६, ६६, १३७

अग्रवाल, वा० *ले* - कलकूटपर २, कुलिन्द ज. पर ८, - युगन्धर पर १७, - कत्रि पर १०६, ११५ टि

अग्रवाल,धर्मपाल *ले* ६५, ६७

अजमीढ *रा* - पौरव १६

अजयपाल *रा* १३, ६६, ११६, १२०, १२१, १२४, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४६, १८४

अञ्जन - *पर्वत* २

अठूर *ग्रा* ६५

अत्रिआश्रम *स्थ* १८

अथर्ववेद *ग्रं* १, २८, १६१

अनन्तपाल *रा* १३१

अनसूया- *मन्दिर* ८६, ८८

अन्तरंग *वि* ५, ६६

अन्तर्गिरि *प* = महाहिमवन्त ४

अन्तर्वेदी *प्र* ५८

अपराजितपृच्छा *ग्रं* १०६

अपोलोदोतस *रा* १७

अबू-रिहान *ले* १०६

अभिज्ञानशाकुन्तलम् *ग्रं* १६

अभिधानचिन्तामणि *ग्रं* ३०

अभिधानप्पदीपिका *ग्रं* १४८ टि

अमरकोश *ग्रं* १६, ४७

अमोघभूति *रा* -कुणिन्द ८,- मुद्राएँ १७, ६५

अम्बाड़ी *ग्रा* -शिला० ६०

अम्बाला *ज* ८, १७, १८, - न १८

अरिष्टाश्रम *स्थ* ७, ११०

अर्क्कस्थल *स्थ* १००

अर्जुन *पाण्डव* ६, १०, ३०

अलन *ले* ६३

अलकनन्दा *नदी* ३, ५, १३, १६, ३३, ३४, ५३, ५५, ५८, ११०, १११, १३२, १७६, -घाटी ५३, ५५, ६६, १०५, ११०, १११, ११२, ११३, १८०, =सरस्वती १३, ४१, =गङ्गा २३

अल्मोड़ा *ज* १४, १५, १६, १७, २१, २२, २६, २७, २६, ५४, ५६, ८३, ८६, ६३, ११०, ११४, १३६ टि, - वर्ग की मुद्राएँ ६३, ६४, ६५, - न ६३, - संग्रहालय ६३; ८८, ८६, १७२, १७३, १८४, १८५

अलका *स्थ* ४६, - पुरी ४६

अल्-बीरूनी *ले* ४०

अवेस्ता *ग्रं* ४०

अशोक *रा* २, १८, ५२, ८६, - लेख २, ५८, १८८

अशोकचल्ल *रा* ३, ७, ६, ११, २४, ४३, १०७, १३८

अष्टाध्यायी *ग्रं* १, ४, ७, १७

अस्कोट *स्थ* १०६

अहिच्छत्रा *दे/राज्य*, ११, - स्थ ५४

आदित्यथान *स्थ* ८६

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आदित्यसेन *रा* - लेख ६७
आदिपुराण (जैन) *ग्रं* २
आदिबदरी (गढ़वाल में) *स्थ* २४ ४८, ७५, ७६, १३५, १६२ टि, -कीर्तिमुख ७८, - विष्णु ८५
आदिबदरी (सिरमौर पहाड़ियों में) *स्थ* ४०, ४२
आन्ध्र दे १००, १०२, १०७
आमस्रोत *स्थ* ८७
आर्ष्टिषेण - आश्रम *स्थ* ५
आसन्तिदेव *रा*,१०६

इंडियन ऐण्टिक्वरि *पत्रिका* १, ३, ७, १०४ टि, ११५ टि
इण्डियन कॅल्चॅर *पत्रिका* ५, ८१ टि
इन्द्र *देवता* २४, ११७
इन्द्रप्रस्थ *स्थ* ५४
इला *मनु-पुत्री*, ४६
इलि *नदी* ६
इष्टगणदेव *रा* ६८, १०१

ईरान दे ३३
ईशानशिवगुरुदेवपद्धति *ग्रं* ८१ टि
ईशाल *वि* ५, ६६
ईश्वरा, - प्रशस्ति ३०
ईस्ट एण्ड वेस्ट *पत्रिका* ८७

उजैन *ग्रा*, - दुर्ग ११
उज्जयिनी *स्थ* ५४
उड़ीसा *प्र* ५, १००
उत्तर *भिक्षु*, १८
उत्तरकाशी *स्थ* - बौद्ध-शिल्प ८७, -ज ५३, ६१
उत्तरकुरु दे ६, ३५, ३६, ३७, ३८, ३६, ४०, ४६
उत्तरमद्र दे ६, ३६
उत्तराखण्ड *प्र*, ५४, ५७, ६२, ७१, ८४, ६०, ६४, १४०, १८२, १८३, १८४
उत्तराखण्ड भारती *पत्रिका* १३, ६७, १७६ टि
उत्तरापथ *प्र* १८
उपगिरि *प* = शिवालिक ४, = मैनाक ४, ५
उपुगढ़ *गढ़* १२४
उरगम *ग्रा* - विश्वनाथ ७५, - सूर्य ८५, ८८, - बदरी १५०
उर्वशी *अप्सरा* ४, ४६, ५२
उशीरगिरि *प* १, = उशीरबीज १, = उशीरध्वज १, ३

ऊषीमठ *मं/स्थ* ३०, ११२, १५०
ऋग्वेद *ग्रं* १४, १६, २३, २४, ३१ टि, ३२, ३३, ३४, ३५. ३७, ३८, ४२ टि, ४४, ४५, ४६, ६३, ११७
ऋषिकेश *स्थ* १, - भरतमं० ६२
ऋषितीर्थ *स्थ* २३

एं० जि० इं० *ग्रं* १८, २७, ६७
एकपाद दे १५
एट्किन्सन, ई० टी० *ले* ५, २१, २२, २५, २६, ३१, ६८, ८१, ६६, १०६, १०८, ११०, १११, ११५ टि, ११७, १३१, १३३
एपि० इं० *पत्रिका* ३, ५, ७, १२, १४, १५, २१, २२, २४, २५, २८, ३०, ३१, ११०, ११३, ११५ टि
एशि० रि० *पत्रिका* २४

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐतरेयब्राह्मण *ग्रं* ६, ३६, ३६

औतोरकाई दे ६

कटारमल्ल *ग्रा* - मं ७६, - सूर्यमं ८८, ६०, ६३, ६४, ६६ टि, १८४, - सूर्य ८५, - काष्ठ-अवशेष ८३, ८७ टि, - देवचेली ८४

कटारमल्लदेव *रा* - कत्यूरी ६३

कण्डारा *ग्रा* ६७, १००, १०७, - ताम्र० ५, १३, ६०, ६७

कण्डारागढ़ *स्थ* १३, ६६, १२१

कण्व *ऋषि* - मेधातिथि-पुत्र १६, -मं २१, ५२

कण्वाश्रम *स्थ* ६, १८, १६, २०, २१, ४३, ४५, ४७, ५२, ६६

कत्यूर- *घाटी* ७, १६, २६, ६३, १०६, ११०, १११, १८०

कत्रि *न* २२, १०६,

कथासरित्सागर *ग्रं* १

कनकपाल *रा* ११६, ११८, १३५, १४४

कनखल *स्थ* १, २१

कनिंघम, ए० *ले* ७, ८, ११, १२, १५, १६, १७, १८, २५, २६, २७, ४७, ५६, ६०, ६७, १०६, ११४ टि

कमल *नदी* ६१

कमा दे ३, =कमादेश/कमाचकं ७

करनाली *नदी* १६, ७०

करवीरगर्त्ता *ग्रा* २१, २२, =करवीरपुर १११

करवीरपुर *स्थ* २१, १११, ११४

कर्णावती *महारानी* २६, १८०, -हाट ताम्र० १५७

कर्तृपुर *न* २२, १०६

कलकूट *प* १, - एकराज ज २

कलिङ्ग *दे/जन* १००, १०२, १०७

कल्याणचन्द *रा* २६

कल्याणवर्म्मन् *रा* ६०, ६२

कवष *सूक्तद्रष्टा* , ३६

कश्मीर दे ६, १०, ११, ३०, ७०, ८२

कसारदेवी *मं* ५४

काँगड़ा *प्र* १७०, -शैली १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, १७१, १७४

काँगड़ी *ग्रा* ८७

कादम्बरीं *ग्रं* १००

कान्यकुब्ज *न* १०५, १०६

काव्यमीमांसा *ग्रं* ८, ११, १६, १०७, १०६

कार्त्तिकपुर *न* २४, १०६

कार्त्तिकस्वामी *मं* , २६, - शिखर ३०, ११०, १११, ११४

कार्त्तिकेय *देव-सेनापति* २६

कार्त्तिकेयनगर *न*, ११, १०७, १०६

कार्त्तिकेयपुर *न* ७, १३, २२, २४, २८, ३१, ५२, ७१, ७६, ८०, ८१, ८२, ६८, ६६, १००, १०१, १०५, १०६, १०७, १०८, १०६, ११०, १११, ११३, ११४, ११५ टि, ११६, १३६ टि, १४०, १४१, १८०, १८३, १८६

कार्त्तिकेयपुर- *ग्रामक* ११०

कार्त्तिकेयपुर *वि* ७, १२, ६६, १०६, ११०, ११२, ११४, - प्रशासनिक इकाई ११०, १८०

कालकूट *प* =कालगिरि, कालपर्वत, कालशैल, यामुनपर्वत १, = कालसी ८, - कालकूट-देश २,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

- कुणिन्द-राजधानी २,८
कालसी *स्थ* २, ३, ८, १७, १८, २३, ३१, ५३, ५८, ६०, ६८, ८६
कालिदास *महाकवि* १६, १८६
काली *नदी* ७०, ७२, ८०
काली-कुमाऊँ *परगना* = कुमू ७
कालीमठ *स्थ* ४५, -मं १५०, १५१, १५६, १६२ टि
कालों-डाँडा *स्थ* ६५
काशगर *स्थ* ६, १३
काशीपुर *न* ११, -उत्खनन से ६०, ६४, -ज ११
काशीरामपुर *ग्रा* ४८
काश्यपशिल्प *ग्रं* ४८
किउ-पि-श्वंग्-न *राज्य* =गोविषाण ११
किन्नरदेश में *ग्रं* २, २६
किम्नी *ग्रा* ५५
किरात-देश, ८, १२, १५, -किरात १००, १०२
कीथ *ले* ३२
कीर दे ६
कीर्त्तिपुर *न* २२, २४, ११४
कीलहॉर्न *ले* १०४ टि, ११२, ११५ टि
कुबेर *यक्षराज* १८, ४६
कुब्जाम्रक *स्थ* ४५
कुमाऊँ *मण्डल* ४, ७, ८, ११, १२, १३, १६, २६, ५३, ५६, ५६, ७५, ८१, ८७, ६३, १०६, १३५, १८०, १८४, -हिमालय ५२, ५४, ७२
कुमाऊँ *ग्रं* १०८, ११४, ११५ टि
कुमाऊँ का इतिहास *ग्रं* १३, १६
कुमारपाल *रा* ६
(डॉ) कुमारस्वामी *ले* १६४, १६५, १७५, १७६ टि
कुरुक्षेत्र *तीर्थ-स्थ* ३२, ३४, ३५, ३८, ३६, ४०, ४१, ४४, ५४
कुरु-देश, ३६, ३७, =कुरु
कुरूड़ *ग्रा* -नन्दादेवी मं १४६, १५१, १६२ टि, -प्रलेख १५४
कुलसारी *स्थ* ६८, १०६, १५०
कुलिन्द *वि* = कुणिन्द ७, -कुणिन्दगण ८, -कौणिन्द ११, -ज १७
कुलिन्द्रीन दे ७, ८
कुलुन दे, ७
कुलूत दे, १०, १२, १५
कुल्लू *प्र*, ८
केदार दे ६, ४३, ४५, ४८, ४६ - हिमालय २६, ४१, ४८, ४६
= केदारमण्डल ६, ६, १६, ४३
= केदारभूमि ६, २४, २६, ४३, ४५, ४६, ७०, ८६
= केदारदेश ६, ४१, ४३, ४५
=केदारखण्ड ६, १७६
= केदारक्षेत्र ४३, ४४,
= केदारवन ४४
केदारखण्ड *ग्रं* ४, ६, ६, १४, १६, २०, २३, २४, २८, ४३, ४५, ४७, ४८, ५० टि, ८३, ६०, १८४
केदारनाथ *तीर्थ- स्थ*, ४५, ६४,= केदार ६, २०, २४, ४५, ६४, ६६, ८२, = केदारेश्वर ६ केदारतीर्थ ६, ८२,
- मं ७४, १५०, १५१, १५५, १६२ टि, -गजसिंह ४६, -पण्डे १५५, - देवचेली १५६
केदारेश्वरमन्दिर घूल *स्थ* १४६, १५१,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१५८ - प्रलेख १५४, १५५,
१५६, १६०, १६१, १६२
(डॉ0) के0 वी0 रमेश *ले* २१
कैलास *प* ४, ५, ६, २२, २३, २४, ३६, ४५,
५२, ५३, ८२
कोटद्वार *स्थ* ३, २६, १७३
कोणार्क *स्थ* १००
कोब *ग्रा* - नागराज ८५
कौशिक दे १५
कौषीतकीब्राह्मण *ग्रं* २३, ३६, ४४
क्रौञ्च *प* ६, ३०
क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय *ले* ३२, ३४,३६
क्राचल्लदेव *रा*, २२, २४, ११४

खजुराहो *स्थ* - शिला0 ४, ११, १०७
खला *ग्रा* ८३
खशाः *लोकसमूह*, १०, १२, ५३, १०२,
१०७, १०८
खस- *देश*, ३, ७, १०, ११, १५, १०७
खाण्ड *ग्रा* ६५, १८४
खालिमपुर *ग्रा* - लेख ६, ३०, १३६ टि
खुटानानाला *स्थ* ५४
खुद्दकनिकाय *ग्रं* - केमहानिद्देश १२
खेखन *स्थ* ५६
खोतान दे १५

गढ़कनारा *गढ़* १३७
गढ़वाल दे, ४, ६, ८, ६, ११, १३, १६, १७,
१८, २३, २७, २८, २६, ३०,
४३, ४६, ४७, ५३, ५६, ६१,
७१, ६७, १०६, १०७, १४१,
१४३, १६४, १७१, १८४
= गढ़देश १३७,
- हिमालय २६, ५२, ५३, ५४,
५५, ५६, ५७, ५८, ७२, ११६,
१४४, १४८ टि, १६४, १८३,
= गढ़ १३, १६६, १७१,
- राज्य १४६, १५६,
-चित्रशैली १६४, १६५, १६६,
१६७, १६६, १७०, १७२, १७३,
१७४, १७५, १८६,
-विश्वविद्यालय ५५, ५७, ५८,
६१, ६३
गढ़वाल *ग्रं* २२, २४, २५, २८, ५७, १०४ टि,
१०८, ११५ टि
गङ्गा *नदी* ४, ५, ८, १७, १८, २१, २३,
२४, २७, ३३, ३४, ३५, ३६,
३७, ४४, ४५, ४१, ४२ टि, ४३,
५२, ६६, ७०, ८२ १०७, १०८,
- दशधाराएँ ६, - घाटी ५४
गङ्गाद्वार *स्थ* ८, ६, १४, २०, २१, २६, २७,
४३, ४५, ५२, ५३, ६२, ६३, ६६
गन्धमादन *प* १, ४, ५, ६, ८, २३, २४, ४६,
५२, ५३
गरुडगङ्गा *नदी* १२, ११२
गुरुडपुराण *ग्रं*, १६
गिरि- *नदी*, १७, १८, ३१
गुजरात दे ८०
गुप्त इन्सक्रिप्शन्स *ग्रं* २१
गोपेश्वर *स्थ* - लेख ६, २४, ४३,
८७, १४६, १५०, १८०, १८४,
=गोथला १५५,
- स्थल १८, ५६, १११, ११४,
-मं0 ७४, ७६, ७७, १५५, १६२,
-गजसिंह ४६, - संग्रह ८४,
८८,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

- कलाकेन्द्र ८४, - गङ्गा, बुद्ध, नटराज ८५, - चण्डिका ८६, घण्डी मं० ७८, - मयूर ७६
गोमती *नदी*, २१, - घाटी ६६, १११, ११४
गोमुख *स्थ* ७६
गोरुन्नासा, *स्थ* ७, = गोरुन्नसारी ११२, ११३
गोरखनाथ *गुरु* १४६
गोविषाण *दे* ११, - नगर ११, -दुर्ग १२, ६०, - से मुद्राएँ ६४
गवरख्या- उड्यार *स्थ* ५५

चन्द्रवदनी *मं* ७६, १३१, १५१, १५२, - प्रलेख १४६, १५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६, १५७, १५८
चमाल *ग्रा* - विष्णु ८५, ८६
चमोली गढ़वाल *ज* १३, ५५, १५०
चम्पावत *स्थ* ५, १४४, - तहसील २६, =चम्पावती १०६
चम्बल *नदी* १६
चम्बा- *राज्य*, २५, ७०
चाँदपुर *प्र* -मण्डल १३, - गढ़, ४६, ७१, ११८, १२८, १३५, १३६, १३७, १४४, १४७, - नरेश ६६, - सूची ११७, ११८, १२७
चुल्लबग्ग *ग्रं* १८
चुल्ल हिमवन्त *प* ४
चैतू *चित्रकार* १७०, १७१, १७२, १७७ टि
चैत्ररथ *वन* ६
चौकीघाट *स्थ* ३, १६, २०, २१
चौंडागढ़ *गढ़* ११८
चौंदकोटगढ़, १२३, १३७

जतवालदेव *रा* १०६, ११५ टि
जमुना *नदी* २, ८
जयकूल-भुक्ति *प्र* १७
जयचन्द्र विद्यालंकार *ले* - उत्तर-कुरु की स्थिति ६, कुणिन्दों की स्थिति ८, - प्रतिष्ठानपुर पर ४६, भद्रमित्र पर ६०
जलंधर *खण्ड* जालन्धर *दे*, ३०
जसकोट *स्थ* ५६
जागुड *दे* १२, - जन ५२, ५३
जागेश्वर *स्थ* - मं ७४, ७६, ७८, ७६, - कलाकेन्द्र ८४ - जैनमूर्ति ८७
जातक *ग्रं* १
जानन्तपि *अत्यराति एक पृथ्वीजेता*, ६
जायसवाल, का० प्र० *ले*, - कुणिन्दों की स्थिति ८, - सैङ्घपुर राज्य पर ३०
जीवनी *ग्रं* २५
जूलियन, एम० *ले* ११, १५, १७, २५
जैन्नल *ग्रा* ५७, ५८
जैमिनीयब्राह्मण *ग्रं* ३६
जोशी *ग्रा* २८
जोशीमठ *स्थ* १२, ५६, ८१, ६६, ११०, ११२, ११३, ११५ टि, १३६, = योशि २२,-में नृसिंह २८, - तहसील ३१, ४८, ११०, - वासुदेव मं ७५, ७७, ८६, १११, - मं ७६, १५०, - यात्री-बहियाँ १८३
जौनसार-देहरादून *ग्रं* २, १८, ३०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ज्ञानार्णवतन्त्र *ग्रं* ६
ज्याँ प्रज्लुस्की *ले* १८
जौनसार-बावर *प्र* -यौधेय-मुद्राएँ ६५

टकनौर *परगना* १४
टङ्गणपुर *वि* ५, ७, १२, २८, ६६, १०८, ११२, ११३, ११४, ११५ टि, - मुख्यालय १२
टङ्गणी *ग्रा* १२, ११२
(पुराना) टिहरी *न* ६५, १६६, १६८, १७२, १७३, १८४ -दरबार १६५
टोन्स *नदी*, २, - द्रोणी १४, ५२, ७०, ७४, ७७, १४६

डबराल, शि० प्र० *ले* १८, ३०, ५६, १०६, ११४ टि, ११५ टि
डोटी *प्र* ११, २२, २४, - वंशावली ६३, *स्थ* १०६
ढिकाल *ग्रा* ६२

तंगनोई *दे* १२
तङ्गण *दे* ८, १०, १२, १५, - लोकसमूह १०, १२, ५२, ५३, १०८
तपोवन (जोशीमठ का समीपवर्ती) *स्थ* २२, २४, ३१, ४५, - दुर्गा ८३, - बदरिकाश्रमीय - ११२, ११३
तपोवन (ऋषिकेश का समीपवर्ती) *स्थ* २५
तमसा *नदी*, १, ६, ४३, ८०
तमसावन *दे* ३०
तराई-भाभर *प्र* १६, २०
तलसारिका *स्थ* १००, १०२, ११२
ताड़केश्वर *मं* ८३
ताण्ड्यमहाब्राह्मण *ग्रं* ३६
तालमी *ले* ६, ७, ८, १२
तालेश्वर *स्थ* - ताम्र० ७, १४, १५, १६, २१, २२, २५, २६, २८, ४७, ११०, १११, १८०
तिब्बत *दे* ६, १०, १५,
तीलू रौतेली *वीराङ्गना*, १३८
तुङ्गनाथ *मं* ४६, १५०, १५१, १६२ टि, -देवचेली १५६, -बुद्ध ८७
तैड़ीगढ़ *गढ़* १३०
तैत्तिरीयआरण्यक *ग्रं* ५, ३६
तोपगढ़ *गढ़* ११८
त्रिनेत्रेश्वर *मं* -जैन-मूर्ति ८७
त्रिपिटक *ग्रं* १८
त्रियुगीनारायण *मं* ६४, ७४, १५०, १५१, १५४, १५५, १६२ टि, - विष्णु ८५

थल *स्थ* ७७
थान *ग्रा* ७४
थापली *स्थ* ५३, ५४
ध्यानशान् *प* ६

दक्ष *प्रजापति* - यज्ञ-स्थल २१
दरद *दे* १०, १२
दारुवन *स्थ* -तीर्थ ४४
दिवोदास *वैदिकयुगीन राजा* ३८
दिव्यावदान *ग्रं* १, १८
दुगई-आगर, *स्थ* ८८
दुमग *दे* १३, =दुमाक / दुमाग १३, ६६, १२१
दुर्म्मोर्ग *वि*, ५, १३, ६८, ६६, १०१, ११२
दुर्योधन *कौरव* - *रा* १४
दूधातोली *प* - बिनसर २७, २८

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दूलू (=डोटी) *प्र* २४
दे, नन्दलाल *ले* ६, २६, ३६
देवढुंगा *स्थ* ६१, ६२, ७३
देवपाल *रा* - मुंगेर-ताम्र० ६
देवप्रयाग *तीर्थ स्थ* २५, ४५, ६१, - मं ७४, - शिलालेख ३, ६४, - लेख १५४, - पण्डे १५५
देवलगढ़ *स्थ* ७१, ७४, १२०, १३७, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १७०, - गजसिंह ४६, - में सत्यनाथ भैरव - मठ १५१, = जगतगढ़ १२०, १४१, - विष्णु ८५, - जैनमूर्ति ८७, - दानलेख १८८
देवलगढ़- *मण्डल* १२०, १३८, १४१, १४८ टि
देवातिथिकाण्व *ऋषि* २०
देवीधुरा *स्थ* ५३, ५६
देवीभागवतपुराण *ग्रं* १०, २२
देशटदेव *रा* ५, - ताम्र० २२, १०६, ११३
देहरादून *न* २,
- *ज*, १, २, ३, १७, २५, ५८, ६०, ६५, ७३, १३८
द्युतिवर्म्मन् *रा* - पौरव १४, - ताम्र० १५, २१, ११०, १११
द्यूल *ग्रा* २६, ७५, - मयूर ७६
द्रुमती *प्रशा० इ०* १२, २८, ११२
द्रोण *प्र* = द्रोणी-घाट, द्रोणाश्रम, द्रोणक्षेत्र १४, ६०
द्व्याश्रयकाव्य *ग्रं* ६
द्वाराहाट *स्थ*, २६, १५० - प्रस्तर ८३, ८७, -शैल-चित्रांकन ५६
द्वैतवन *वन*, ४०
धनभूति *रा* १७
धर्मपाल *रा* - केदारयात्रा ६, - खालिमपुर-लेख ६, ३०, १३६ टि
धौली *नदी* २२, २४, ४५, ५६, ११३, - घाटी ७३,११२
ध्यानबदरी *मं*, २४
नकुलेश्वर *मं*, -विष्णु ८५
नगरपर्व्वत *स्थ* १००, १०२, ११२
नबालका *नदी* = नयार ४७, - में ज्वालेश्वरी १६३ टि
नन्दगिरि, ६, = नन्दापर्वत ४३
नन्दादेवी -*मूर्ति* ४८, ४६, ५२, १०१, १३८, १४६, १५६
नया- उदयरामपुर *ग्रा* २१
(प०) नयार-घाटी, ५६
नरनाराणं *ऋषि* २४, ३५, ४४, ५२
नरनारायण - आश्रम *स्थ* ५, २३, ३८, = नरनारायण-स्थान २३, ३५, ४४, = विशाला ४४, - गन्धमादन पर २४
नर्मदा *नदी* १६
नागपुर *मण्डल* ७, १३, १११, १३८, १३६ टि, १४६, १५४
नाडपित् *स्थ* १६
नारद *मुनि* ४४, - आश्रम, - क्षेत्र २३
नाला *स्थ* ८७
निम्बर *रा* ६८, १०१
निरत *ग्रा* - सूर्यमं ६६
नीति *घाट* ५६
नेपाल *दे* ११, २४, ५२, ७०, ८२, ८६, ११४,

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१३८, १६८, १८१
नैनीताल *स्थ* – जैनमूर्ति ८७, –*ज* ५४, ६०
नौला *ग्रा* ५६, ५७

पञ्चगाईं *प्र*, १४
पञ्जाण *प्र*, १८, ३३, ३४
पञ्चविंशब्राह्मण *ग्रं* १४, ३६
पणिभूतिका *स्थ* ७
पद्मपुराण *ग्रं* १६, २०, २४, ३५, ३६, ४८, ११३
पद्मटदेव *रा* १२, १०६, – ताम्र० २२, २३, २४, २८
परतङ्गण *दे* १२, १३
पर्वताकर – *राज्य* १४, १५, १६, २५, २६, ११०
पर्वतीय *जन* १४, = पारावत-जन १४
पर्शावर *न* १०६
पर्सी ब्राउन *ले* ७६, ८१ टि
पलेठी *ग्रा* १८२, – लेख ४, ६०, ६२, – कीर्तिमुख ४८, – विष्णु, सूर्य ८५, – पिढा मं ७६, – सूर्य मं ८८, ६१, – समुच्चय का काल ६३
पाख *स्थ* ६०
पाणिनि, २, १७, १०६, – महाभाष्य ११२
पाण्डु *रा* १, ५, ५३
पाण्डुकेश्वर *स्थ* १०७, १५५, – योगबदरी ७६, १५०, १८०, – ताम्र० ५, ७, १२, २२, २३, २४, २८, ३१, ४५, ६७, ६८, १०७, ११३, ११५ टि, १८०
पाण्डुवाला *स्थ* २५, ६०, ७१, ८४
पारावत *जन* / *दे* – पारावत-गण १४, = पर्वती (*य*) १४
पावगढ़/ मावगढ़, १२२
पार्जिटर *ले* १०, ४६
पाल *वंश* ६, – अभिलेख ४
पिण्डारक *नदी* ३४, – घाटी १०६
पिथौरागढ़ *ज* ७, ५४, ७७, ८८
पिल्ख *स्थ* ८७
पीलीभीत *ज* ११
पुनाणू *ग्रा* ७८, ७६
पुरातनप्रबन्धसंग्रह *ग्रं* ६
पुरुषोत्तम सिंह, ३, – लेख ७
पुरूरवस् *रा* ४, – ऐल ४६
पुसालकर, ए० डी० *ले*, ३२, ३३
पुरोला *स्थ* ५३, ६१
पृथिवीमित्र *रा* १२
पृथ्वीराजरासो *ग्रं* ३, ७, १६२
पृथ्वीपतिशाह *रा*, १६५
पेटशाल *स्थ* ५४
पैठाणी *स्थ* ४६, – गजसिंह ४६, ६०, – मं ७४ – हरिहर ८६
पैनखण्डागढ़, १२५, १२८, १३६
पैनखण्डा – *मण्डल* २८
पो-लो-कि-मो-पु-लो *राज्य* = ब्रह्मपुर-राज्य १६, १५, २५
प्रगाथ काण्व *ऋषि* २०
प्रतिष्ठानपुर *न* ४६
प्रबन्धचिन्तामणि *ग्रं* ६
प्रयाग (राज) *स्थ* ३७, ४६, – प्रशस्ति १०६, ११५ टि
प्राकृतपैङ्गलम् *ग्रं* १६२
प्राचीन चरित्रकोश *ग्रं* १४, १४३
प्रालेयाचल *प* ४, १०७

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फड़कानौली *स्थ* ५४
फतेपर्वत *प* १४
फन *राज्य* १५
फरगुसन, जेम्स *ले* ७०, ८२
फल्सीमा *स्थ* ५४
(डॉ) फ्यूहूरर, ए० *ले* २५, ५६, १०४ टि
(डॉ) फ्लीट, जॉन *ले* २१, १००, १८१

बजिंग *ग्रा* ७६, ६०
बडादित्य *मं* ६०
बदरिकाश्रम *स्थ* ३, ४, २४, ५२, ६६, ११२, = बदरीविशाला ५, २२, २३, - सरस्वती तटवर्ती २३, २४, २८, ३३, ३५, ३७, ३८, ४१, ४३, ४४, ४५,
प्र,- बदरिकाश्रम हिमालय ३७, -बदरिकाश्रम-मण्डल ४५
बदरीनाथ *स्थ*, ३, २३, ४२, ४५, ८२, १५०, १५५, १५६, १६२, टि, =बदरी २०, २४, ३६, ६४, ६६, ८२, -हरिस्थल २४, -बहियाँ २८, -पञ्चबदरी २४, ११२, ११३

बदरीवन *प्र* १६, - बदरीनाथ क्षेत्र २०, २४, ४५, -बदरीक्षेत्र ३७
बधाणगढ़ *गढ़*, ११८
बध्र्यश्व / वध्र्यश्व *एक वैदिक राजा* ३८
बनकोट *स्थ*, ५४
बनगढ़ *मण्डल* १३८, १३६ टि, १४६
बरगेज *ले* १००
बरुवा *ले* ३
बल्लालचरित *ग्रं* २३
बसन्तनदेव *रा* १०६
बसेड़ी *ग्रा* , ५७, ५८
बहादराबाद *स्थ*, ५३
बहिर्गिरि *प* ४
बागेश्वर *मं* ७५, ८७, १०६, -शिलालेख १७, १०८, - बागेश्वर १०६
बाजसनेयिसंहिता *ग्रं* ३८
बाड़वाला *ग्रा* - वेदियाँ ७३, -इष्टका-लेख १६, ६०,
बाड़ाहाट *स्थ* , २५, -लेख १८१, - विश्वनाथ *म* ७५, १५१
बाण/ बाणासुर *असुर* २६, ३०
बाम्सू *ग्रा* - पट्टी १३, २६
बालेश्वर *मं* - ताम्र० ५, २२, २४, ११३, ११४
बिजनौर *ज* ८
बिनसर (दूधातोली पर्वत पर) *मं*- दूधातोली - २७ , १८०, १८४, - मं ७४, ७६, ,७७ ८१, ४७, ४८, - महादेव २८, - लिंग ८४, ८५, - स्कन्दमाता ८६, =वन्यश्रीकेश्वर २८
बिनसर (अलमोड़ा के समीप) *मं*, २६, २६
बिलेश्वर *मं* - उमामहेश्वर ८५, - पुरास्थल १८४
बील, सै० *ले* १५, १७, २५, ३०
बुद्ध , १, १४, १८, ५२, ६३, ६६, ८५, - गया - लेख ६८
बृहत्संहिता *ग्रं* २, ६, ७, १०, १२, १५
बेहत *स्थ* ८
बैजनाथ *ग्रा* २१, ७५. ६६, १०६, ११०, ११२, १८०, १८४, = कीर्तिपुर

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२२, - पार्वती ८६, =वैद्यनाथ ११४, - शिला० ११४

बैराथ *न* २४, = भरथ २४

बैरासकुण्ड *स्थ* ४८, १८४

बोध-गया *स्थ* ३, ७, - लेख ३, ७, ११, ६८, १०७

बोधिसत्त्वावदानकल्पलता *ग्रं*, ६७

बौद्धाचल *प* ६, ४३

ब्यास *नदी* ८

ब्रह्मपुर *राज्य* १०, ११ १४, २२, ४७, १०५, १०६, = ब्रह्मपुरक १५, = ब्रह्म १६, - क्षेत्र ११०

ब्रह्म् पुर *न* १०, १४, १५, १६, २५, २६, २७, २८, ७१, १८२

ब्रह्मपुराण *ग्रं* २४, ३६, ४४

ब्रह्माण्डपुराण *ग्रं* १०

ब्रह्मावर्त *दे* ३६

(डॉ) बूह्लर, जॉर्ज *ले* ३, ३०

भंगलोक *दे* १२

भगीरथ *रा*, ३७

भद्रमित्र *रा* - मृण्मुद्रा १४, ६०

भरत *जन* ३६, ३९

भरत *रा* २, - दौष्यन्ति १६, ६०

भरतमन्दिर, - यक्ष ६२, ८३, ८४

भरदार *मण्डल* १३८

भरमौर *स्थ* २५

(वृद्ध) भरसार *स्थ* ७६

भविष्यपुराण *ग्रं* ७, २३, २७, ४७

भविष्यबदरी *मं* २४, ११२

भागवतपुराण *ग्रं* ३६, ३७, ४५

भागीरथी *नदी* ३, ५, २३, २५, ३४, ३६, ४५, ६५, ९०, ९१

भानुप्रतापपाल *रा*, ११८, १३५

भाभर *प्र*, ४८

भारतवर्ष *दे* १४, १५, २०, २३, २४, २६, ३२, ३५, ४०,४३, ४४, ४५, ५२, ६०, ६२, ७९, ९८ =भरत-खण्ड २३

भारहुत *स्थ* - लेख ३, १७

भाष्कर- क्षेत्र *स्थ* ९०

भिलसा *स्थ*, - लेख ४

भिल्लंगगढ़, १२३

भिल्लाङ्गना *नदी* १३, ४५, - घाटी ८६, ९६, १४९

भूदेवदेव *रा* १७, १०८

भेत् *स्थ* ७५

भोट- *देश*, पश्चिमी - ४, ६, १०, ५७, ७२, ८६

मङ्कणक *ऋषि* ३९, ४१

मङ्गलसेन, मंगलसिंह *रा* १३

मज्झिम *थेर* ४, ५२

मज्झिम *देश*,मध्यदेश , १, २, ३७, ४०, ४६

मणिभद्राश्रम *स्थ* २३

मण्डावर *राज्य* ११, १५, २५, २६, २७

मत्स्यपुराण *ग्रं* १९, ४९, ५०

मथुरा *न* ८६, - लेख १००

मध्य एशिया, १३, ५७

मध्यमेश्वर *मं* ४५, - हैमवती ८५, मं, १५०, १५१, १५५

मनुस्मृति *ग्रं* १०, ३६

मन्दाकिनी *नदी* ६, १३, ३४, ४६, ९०, ९७, १००, १२१, - उपत्यका २६, ९६, १००, १५५

मयूर (मोरध्वज) *स्थ* ३, २५, ४७, ५२, =

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मयूरनगर, मयूरध्वज ४७, = मो-यु-लो १५, २६, २७, ६३, - मोरध्वज - उत्खनन ४६, ४७, ५८, ५६, - प्रतिमाएँ ८३, - कलाकेन्द्र ८४

मरखाम ए० एम० *ले* २७, ४७, ५६, ६३, ६६

मरुत *देवता*, १

मलारी *ग्रा* ५६, ५७, ५८, ७३

महाबग्ग *ग्रं* १

महाभारत *ग्रं* १, ४, ६, ७, ८, १०, १२, १४, १६, १७, १८, १६, २०, २२, २३, २४, ३०, ३५, ३६, ३६, ४१, ४२ टि; ४३, ४४, ४६, ४७, ४८, ५० टि, ५३, ५४, ६०, ८६, १००, १०४, ११५ टि, १७५, १७६

महापरिनिब्बानसुत *ग्रं* १४

महावंश *ग्रं* ४

महीपतिशाह *रा* १५४

माणकू *चित्रकार* १७०, १७१, १७२, १७७ टि,

माणा *ग्रा* =माना ४१, ४२, ८७ -मातामूर्ति १५०

मातृमित्र *रा* १२

माधोसिंह भण्डारी *सेनापति* ११६, १३८

मानपर्व्वत *प* ३

मानसखण्ड *ग्रं* २६, ६०,६३, *प्र*,१७६

मानसरोवर, ६, ४५ -प्रदेश २५, -तीर्थ ८२

मानसार *ग्रं* १३७

मायाक्षेत्र/मायापुर *स्थ* ६, २६, २७, ४३, ४७,६२

मार्कण्डेयपुराण *ग्रं* ७, १२, १५, ३५, ४६, ५० टि, १४५

माल *प्र* १६, १८, २०, ४५, ६३, ६६

मालिनी *नदी* १८, १६, २०

मिलिन्दप्रश्न *ग्रं* ६, ३०,

मित्र, राजेन्द्रलाल *ले* १७, ११०

मुद्राराक्षस *ग्रं* १०

मुनि-की-रेती *स्थ* ६३

मेघदूत *ग्रं* १६, २०

मेनका *अप्सरा* २०

मेरु *प* ६, ३२, ४६

मैक्समूलर *ले* ३२, ३३

मैगाधार *स्थ* -मृण्मूर्तियाँ ८३

मैनाक *प* १, ३, ४, ५, ३६

मो-ति-पु-लो *स्थ* =मण्डावर ११, २५, २६

मो-यु-लो *न* २७

मोरगिरि *प*, ३, = मयूरगिरि २७

मोरध्वज *स्थ* २७, ६३, ६६, ६७, ७७, ८३, ८४, ८६, -उत्खनन १८३

मोलाराम तोमर *चित्रकार* १६६, १६७, १६८, १६६, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६ टि

यजुर्वेद *ग्रं* ३६, शुक्ल- ६६ टि

यदु *राज्य* ६, ३०

यमुना *नदी* २, ५, १२, १४, १५, १७, १८, ३०, ३१, ३३, ३६, ४०, ५२, ६६, ७३, १३२, १८०, = कालिन्दी ८, - उपत्यका ५३, ६०

यमुनोत्तर *प* ६

ययाति *रा* ४६

यशोवर्म्मन् *रा* चन्देल ४, ११, १०७

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यामुन *ग्रा* ५
यामुन-देश =यामुन २, =कालपर्वत १६
यामुन-पर्वत, १, =यामुनदेश २, ५
यारकन्द *नदी* ६
युग दे १६, -शैल १६, १७, = युगन्धर १६,१७
युधिष्ठिर *रा* १०, १२, १४, ५३
युवान्-च्वाङ् *चीनी यात्री* ११, १४, १५, १७, १८, २५, २७, ३०, ४७,६३, =स्वेन-चाङ् ३०
योगबदरी *मं* २४
योगिनीतन्त्र *ग्रं* २१, २३
योशि, योषि *स्थ* १२, २२, २३, २८, ६६, ११२ , ११३, ११४, -कर्म्मान्त २८, -मठ २८
यौधेयगण दे, ८

रठगाड *नदी* ५०
रथवाहिनी *नदी* = रामगङ्गा ४७
राजतरंगिणी *ग्रं* ६, ६, ३०, ४३
राजपल्लिका *ग्रा* १००, १०२
राजव्यवहारकोश *ग्र* १३६ टि
राजशेखर *कवि* ११, १६, १०७, १०६
राजस्थान *वर्तमान राज्य* ३२, ४२, ८०
राणीहाट *स्थ* ५६, १७६, १८०, -उत्खन न ५८, -मं० ७४, १४५
रॉथ *ले* ३२, ४२ टि, १६१
(प०) रामगङ्गा *नदी* ११, २५, -वीणु संगम २७, - घाटी ५४,५६, ५७
रामठ दे १२, -जन ५३
रामायण *ग्रं* १, २, ४, ६, ८, १२, १६, १८, १६, १७५
रामायणप्रदीप *ग्रं* १३, ६६, १२१, १४४
राष्ट्रकूट *प* २८, =दूधातोली ४७
राहुल सौंकृत्यायन *ले* २, १७, १८, २२, २५, २८, २६, ३०, ३१, ५७, ६७, ६६, १०४ टि, १०६, १०८, १११
रिवेट-कार्नक *ले* ५६, ६७
(प्रो०) रीज डेविड्स *ले* ४
रुद्रनाथ *मं* १५०, १५३, १५५, -विष्णु ८५, -प्रलेख १४६, १५३
रुद्रमहालय (गोपेश्वर) *स्थ* -तीर्थ ४४

लक्ष्मण-*मन्दिर* ५
लखनऊ (राज्य संग्रहालय-), २७, ५६, ६६, १७३
लखनपुर *स्थ* =वैराटपट्टन २५, २६, २७
लखु-उड्यार *स्थ* ५४, १०६
लंगुरगढ़, *गढ़* १२२, १३७, १३८
लम्पाक दे १०
ललितशूरदेव *रा* -ताम्र० ७, १३, २२, २४, ५०, ६०, ६७, ६८, १०१, १०४ टि, १०६, ११३
ललितागम *ग्रं* ६
ललितादित्य *रा* ६
लाखामण्डल *स्थ* ३१, ८५, -मं ७४, ७७, -*मण्डल* १३८, -प्रशस्ति ३०, -गजसिंह १८१, -कलाकेन्द्र ८४, -लिङ्ग ८४
लालढाँग *स्थ* -लिङ्ग ८६, १८१
लाहा, बि० च० *ले* ३६
लासेन *ले* ६, ३२
लुकाधड़ी *ग्रा* -घटपल्लव ७८
लुडविग *ले* ३२
लूनी-सोत *स्थ* ६०

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लोमश *ऋषि* २४, ५३
लोहबागढ़, ११८, १३८
(सुई-) लोहाघाट *स्थ* २६
लोहितपुर *न* ३०
ल्वेथाप *स्थ* ५४

वनराष्ट्र दे १०, =वनराष्ट्रक १५
वन्यश्रीकेश्वर *मं* २८, ४६, = बिनसर ४७,४८
वराहपुराण *ग्रं* ४४, ४९
वसुमान् *प* ६
वसुरोचिष् *वैदिक राजा* १४
वशिष्ठ *ऋषि* १८
वाटर्स,टॉमस *ले* १५, १७, २५, २७
वामनपुराण *ग्रं* १०, १२, २३, २४, ३५, ३६, ३९, ४०, ४१, ४२ टि, ४४, ४६, ५०, ११५टि
वायुपुराण *ग्रं* १९
वाल्टन (H.G.WALTON) *ले* ३, १२९, १६२
वासुदेव *रा* ६३
वास्तुशिरोमणि *ग्रं* ७१, ७९
विदेघ माथव *वैदिक राजा* ४०
विनयपिटक *ग्रं* १, १८
विनशन *तीर्थ* ३६, ४०
विभाण्डेश्वर *मं* ६५
विशालाबदरी *तीर्थ* ४, २३, २४, ५२, =बदरी २३, २४, =विशाला २३, ४६
विष्णु *देवता* १९
विष्णुगङ्गा *नदी* =अलकनन्दा २३, ४५, ११३
विष्णुधर्म्मण *वि* १७, ६९
विष्णुधर्मसूत्र *ग्रं* १९
विष्णुपुराण *ग्रं* ८, १६, २३
विष्णुवर्म्मन् *रा* १४, -ताम्र० १५, ११०
वीणु *नदी* २७, २८
वीरणेश्वर *देवता* १६, २६, २७, २८, २९, -स्वामी १६, ४७, ४८
वीरभद्र *स्थ* -शिवमं ६२, ७७, ८४
वैद्यनाथ-कार्त्तिकेयपुर *न* २१, २२, ६९, १११, ११४, १८०
वैसाली *न* १८
व्यास *ऋषि* ८, १८, २३, २४, ४४
व्यासाश्रम *स्थ* २३, २४

शङ्कर *आचार्य* २८, ५२, ६९
शकुन्तला *अप्सरा* १६, २०
शक्ति *ऋषि* १८
शतपथब्राह्मण *ग्रं* १९, ४०, ६०
शतशृङ्ग *प* ५, ५३
शतुद्रि *नदी* ३३, ४०
शान्तनदेव *गढ़पति* १३७
शारदा *नदी* १२
शिमला *प्र* ८
शिव *देवता* २४, =वीरणेश्वर २८, २९, ४३, ४४, ४७, ४८, ४९, ५२, ८६
शिवदत्त *रा* ६३
(महा) शिवपुराण *ग्रं* २४, २९, ४३, ४४, ४५, ४७, ४८, ४९, ५० टि
शिवभवानी *रा* ६०
शिवालिक *प* ३, ३५, ४०
शीलवर्म्मन् *रा* १६, १७, ६०, १८०
शैलोदा *नदी* ६, १०
शोणितपुर *न* २६, ३०
श्यामपुर-*गढ़ी* ६२
श्यामशाह *रा* ७१

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

श्रावस्ती *स्थ* ५४
श्वेतगिरि *प* ४३, = श्वेत पर्वत १, ५, ६, ६, ४३
श्री-कृष्ण, २४, ४५, ५०टि, १४३, १७५, केशीसूदन- ६३, ७८
श्री-जयमन *रा* ४
श्रीनगर (गढ़वाल में) *न* २५, ५३, ५८, ६३, ६४, १४०, १४४, १६५, १६६, १६७, १६८, १६६, १७१, १७३, १८०, = श्रीक्षेत्र ४५, १६३टि, -संग्रहालय २१, १६८, १७३, १८४, -कम्लेश्वर मं एवं गोरखनाथ मं, १५१, -केशवराय ७५
श्रीतत्त्वनिधिः *ग्रं* २, ६
संयुक्तनिकाय *ग्रं* १४८ टि
संसारचन्द *रा* १६४, १६५, १६८
सतलज *नदी* २, ८
सतीमठ *स्थ* २०
सदानीरा *नदी* ४०
सन-पो-हो *राज्य* १५
सपादलक्ष *प* ३, ११, १०७
सप्तसिंधवः *नदियाँ एवं उनका प्रदेश* ३३
सभासार *ग्रं* १४४
समरांगणसूत्रधार *ग्रं* ७५, ७६, १३७
सरकार, दि० चं० *ले* -अन्तरंग पर ५,-कुणिन्दपर ८, -खश पर ११, १२ -तालेश्वर -ताम्र० पर १६, -सुभिक्षपुर पर ३१, -अलमोड़ा मुद्राओं पर ६३, ६८, ११२, ११३, ११५ टि
सरसुती *नदी* ३२, ३५, ३८, ४०, =सर्सती ४०
सरस्वती *नदी* (ऋग्वेदीय), १४, २३, २४, ३१टि, ३२, ३३, ३४, ३६, ३७, ३८, ४२, ५२, १८२, १८६, =सिन्धु ३८, ४१, ४४, =गङ्गा ३७, ४४
(द.) सरस्वती *नदी* (कुरुक्षेत्रवर्ती), १७, ३४, ३६, ३७, ३६, ४०
सलाण *प्र* १३
सहणपाल *भाण्डागारिक* ३, ११, १०७
सहारनपुर *ज* १, ८, १७
न १८
साँची *स्थ* -स्तूप-लेख ४, ५२
सागल *न* ६
सानणा *ग्रा* ५७, ५८
सायण *आचार्य* १६, ३३, ३४, - भाष्य ६३
सासनबंस *ग्रं* ६७
सिन्धु (Indus) *नदी* ३०, ३२, ३३, ३४, ३५, ४०
सिमली *स्थ*-गजसिंह ४६, -मं ७५
सि-यु-कि *ग्रं* ३०
सिरमौर *प्र* १७, १३८
सिंहपुर *न* -प्रशस्ति में ३०, - महाभारत में ३०, ३१
सिंहपुर *ग्रा* १८, ३१
सुआल *नदी* ५४
सुघ *ग्रा* १८
सुदर्शनशाह *रा* १६५, १६६, १७२, -प्रलेख १५१, १६२
सुनेत, ८
सुबाहु-*विषय* =कुलिन्द-विषय· ८, १२
सुभिक्षपुर *न* ३१, ११३
सुभिक्षराजदेव *रा* ५, १२, २३, २८, ३१, १०६, - ताम्र० ५, १२
सुभैं० *ग्रा* ३१, ११३, - भविष्यबदरी १५०
सुमाड़ी *ग्रा* ८६
सुरट्ठ *दे* १२
सु-लु-किन-न *राज्य* = स्त्रुघ्न १७
सुवर्णगोत्र *दे* १५, २५
सुवास्तु-द्रोणी *प्र* ५७
सूर्य-प्रयाग *स्थ* ६०, ११२
सेंट-मार्टिन *ले* २५
सेङ्- हो-पु-लो, न, = सिंहपुर ३०
सेनापानी *स्थ* ६०, ८४, - शिल्प ८६, - पुरास्थल १८४
सेमल-वाला-स्रोत *स्थ* २१

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सैरिन्ध *दे* १०, १५
सैंहपुर- *राज्य*, ३०
सोनपाल *रा*, १२३
स्कन्द *देव*, ५२
स्कन्दपुराण *ग्रं* १६, २३, २४, ३०
(प्रो०) स्टैला क्रैमरिश *ले* ७५, ८१ टि
स्त्रीराज्य *दे* ६, १२, १५
स्थाणीश्वर *न* १७
स्त्रुघ्न- *राज्य* = सुघ ८, १७, १८, २७, ३०, ४७
स्त्रुघ्न- *नगर*, १७, = सुघ ८, १७, १८,- में भिक्षु उत्तर १८, ३१
हनोल *ग्रा*, ७४
हरदत्त *रा*, ६३
हरह्‌वैती *नदी* ३३, ३८, ४०, = हरक्षवैती ४०
हरिद्वार तीर्थ *स्थ* १, ५, २५, १८, ४७, ५३, ६०, ८५, ८७, १०७, १६५, -ज, २१
हरिवंशपुराण *ग्रं* ४, २२,, २३, २४, २६, ३०, ४५, ४६, ५० टि
हर्षवर्द्धन *रा* १६, १०५
हस्तिन *रा* - दानपत्र १००
हस्तिनापुर *न* १६, २०, ५४, - इष्टकाएँ ५८
हाट *ग्रा* - ताम्र० १५७, १५८
हिमवत्- प्रस्थ *प* १६, २०, ५३
हिमवन्त *प* २, ४, ६, ३६, ३७, ४३, ४५, ४८, ५२, ६६, ८६, = हिमालय ४३, १७६
हिमवत् -देश, = केदारदेश ४, ४३
हिमाचल प्रदेश *राज्य* ८, २६, ४०, १३७
हिमालय *प* १, २, ३,६, ८, ६, १०, ११, १४, १८, १६, २१, २२, ३०, ३३, ३६, ३७, ४१, ४४, ४६, ४८, ५०, ५७, ७०, ८२, ८५, ८६,६० ६५, ६८, ६९, १०६, १०७, १५६, १५६, १८०, १८१, १८२, १८५, = हिमशैल, उत्तरपर्वत ४, = हिमवान् ४६, = हैमवत् ४
हि० डि० *ग्रं* २४, २५, २६, ६८, ८१, १०६, ११७, १२३
हिलब्राण्ट *ले* ३२, ३८
(डॉ) हुल्श (E. HULTZSCH) *ले* ३
हुविष्क *रा* ६३
हूण-देश, ६, = प० भोट १०
हेनवुड *ले* ५३, ५६
हेरोडोतस *इति० ले* १५

---

* सङ्केताक्षर

रा = राजा, ले = लेखक, स्थ = स्थल, ग्रा = ग्राम, न = नगर, प = पर्वत, प्र = प्रदेश, दे = देश, ज = वर्तमान जनपद (जिला), वि = विषय (प्राचीन प्रशासनिक इकाई), मं = मन्दिर, ग्रं = ग्रन्थ, टि = पाद-टिप्पणी।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

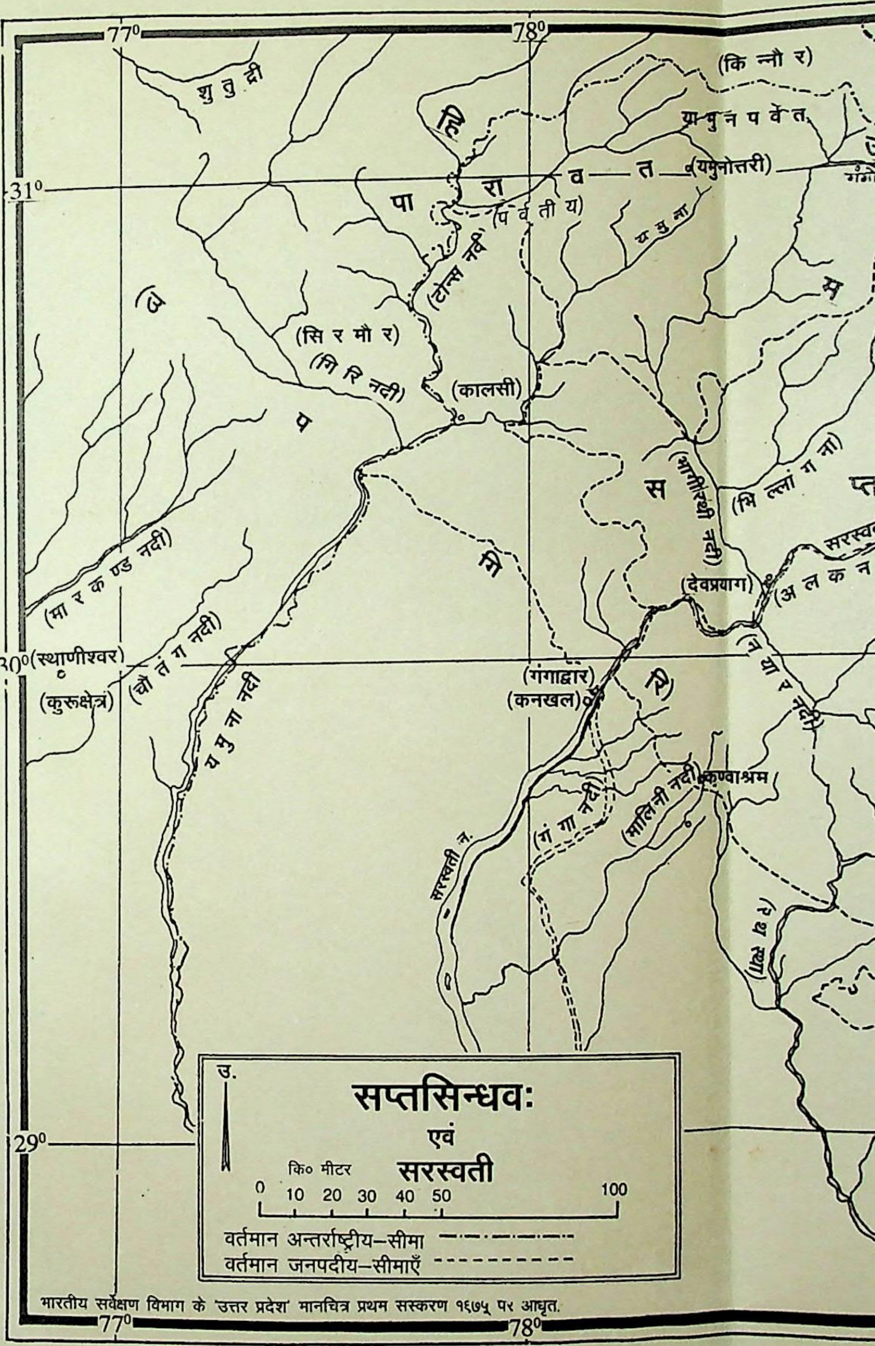

ऋग्वेदीय स्थल-नाम कोष्ठक-रहित हैं।

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

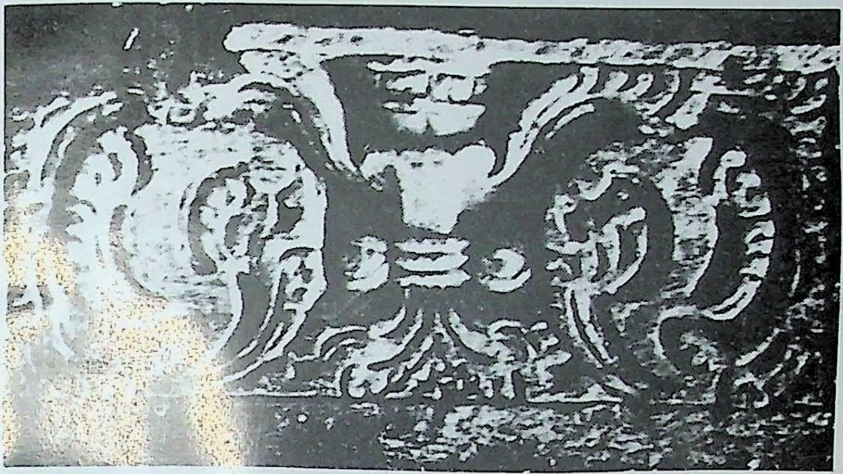

चित्र-१. कीर्तिमुख.
रुद्रमहालय, गोपेश्वर (चमोली-गढ़वाल). पूर्व-मध्यकालीन.
(पृ० ४८, ७८)

चित्र-२. गजसिंह (खण्डित).
लक्ष्मणमन्दिर ब्यूल (पौड़ी गढ़वाल). मध्यकालीन.
(पृ० ४९, ७९, ८७)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

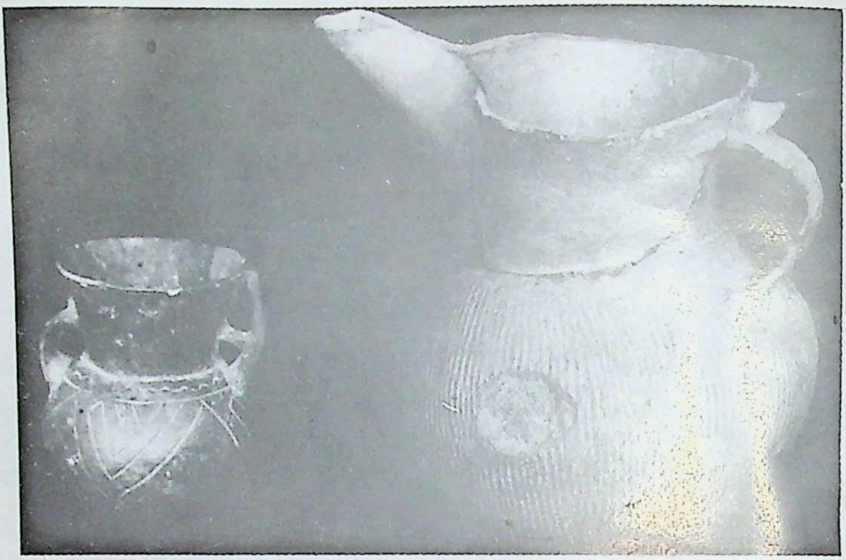

चित्र-३. चित्रित मृद्भाण्ड.
मलारी (चमोली-गढ़वाल). लग० प्रथम सहस्राब्दि ई०पू०.
(पृ० ५६, ५७)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चित्र-४. एक अभिलिखित मृण्मुद्रा.
मोरध्वज (हिमालय-पादप्रदेश). चैत्य में ध्यानस्थ बुद्ध.
लिपि के आधार पर लगभग पञ्चम शती ईसवी. राज्य संग्रहालय लखनऊ, B७७०
व्यास : ४.५ इंच
(पृ० ५९, ६६, ८६)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

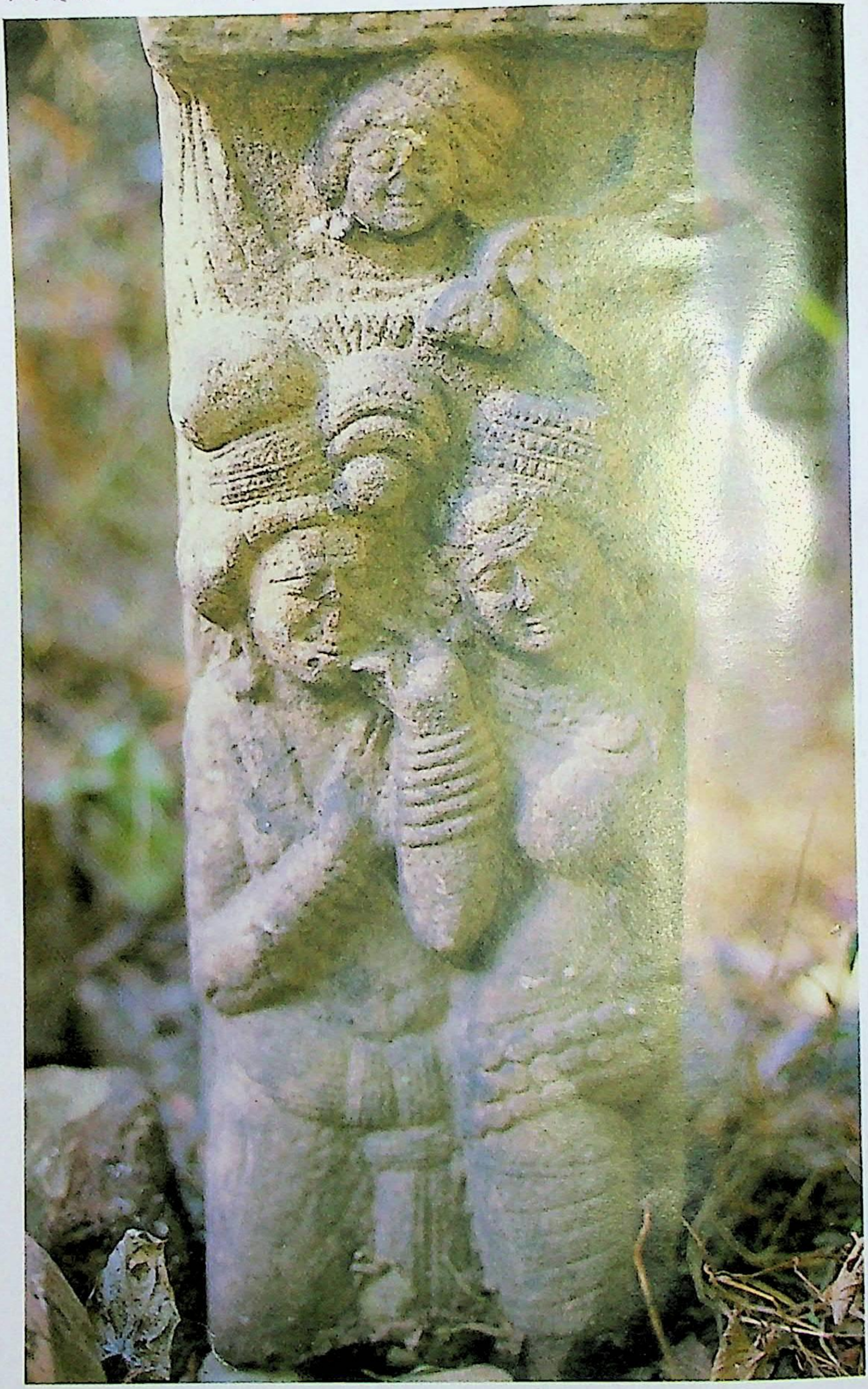

चित्र- ५. एक चित्रित स्तूप-स्तम्भ.
सेनापानी (नैनीताल-तराई). लाल-बालुकाश्म.

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(पृ० ६० /४ /६)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चित्र-६. यक्षी.
भरत मन्दिर, ऋषिकेश. लाल-बालुकाश्म.
(पृ० ६२, ८४)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चित्र- ७. केशीसूदन कृष्ण.
मोरध्वज. मृण्पट्टिका. कुसाणोत्तर-काल.
विश्वविद्यालय संग्रहालय, श्रीनगर.
(पृ० ६३, ७८)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

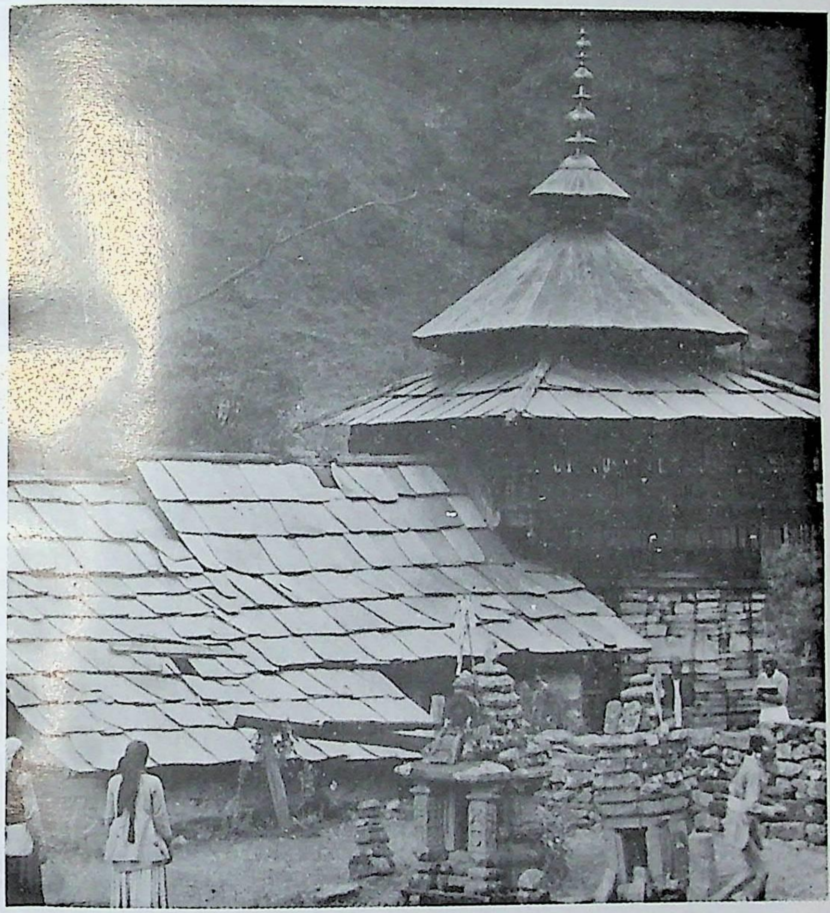

चित्र- ८. महासू मन्दिर.
हनोल (ज. देहरादून). पैगोडा प्रकार (काष्ठ): उ०पू० से दृष्ट.
(पृ० ७४)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

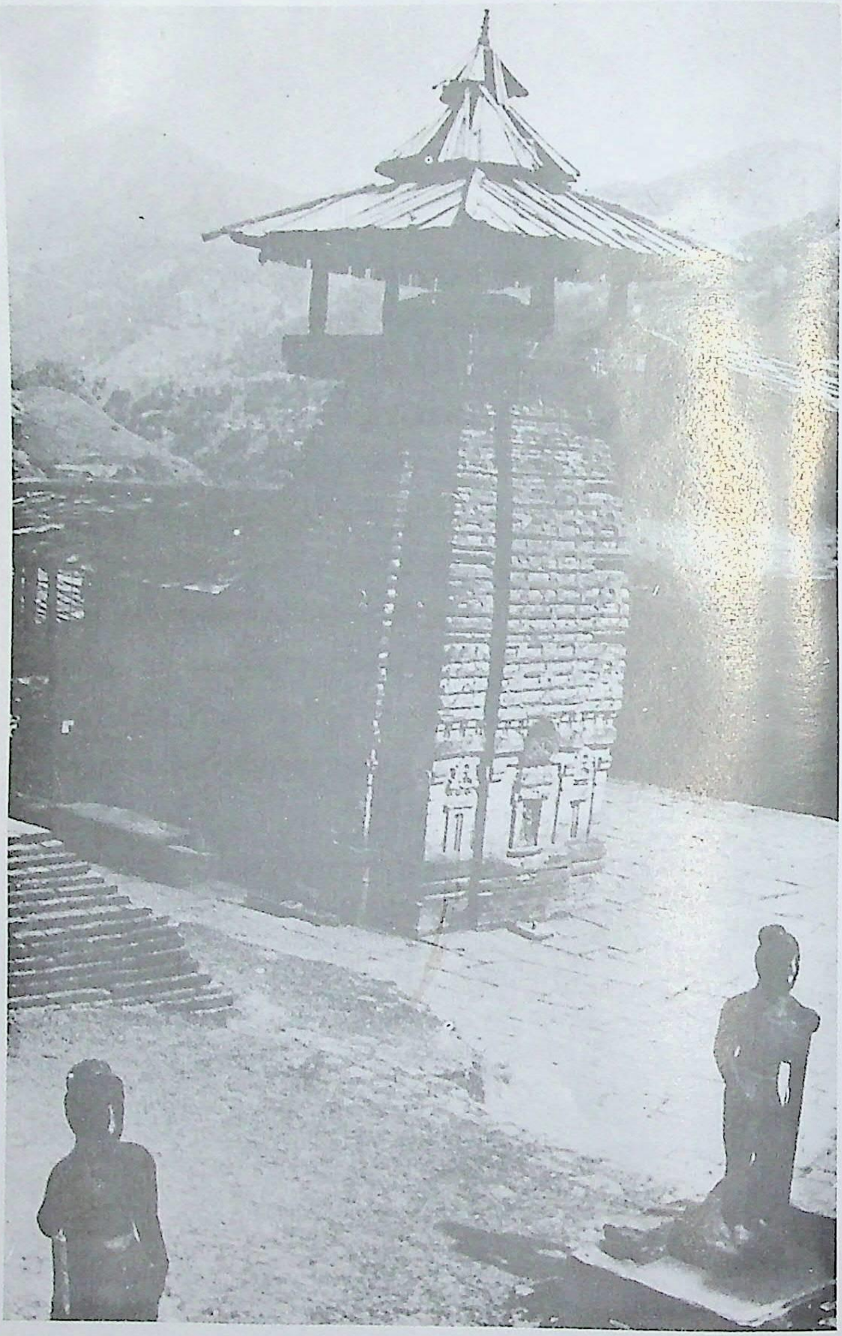

चित्र-९. शिवमन्दिर मढ़ (लाखामण्डल).
ज. देहरादून, त्रि-छत्र प्रासाद, द्वारपालों सहित.
(पृ० ७४)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

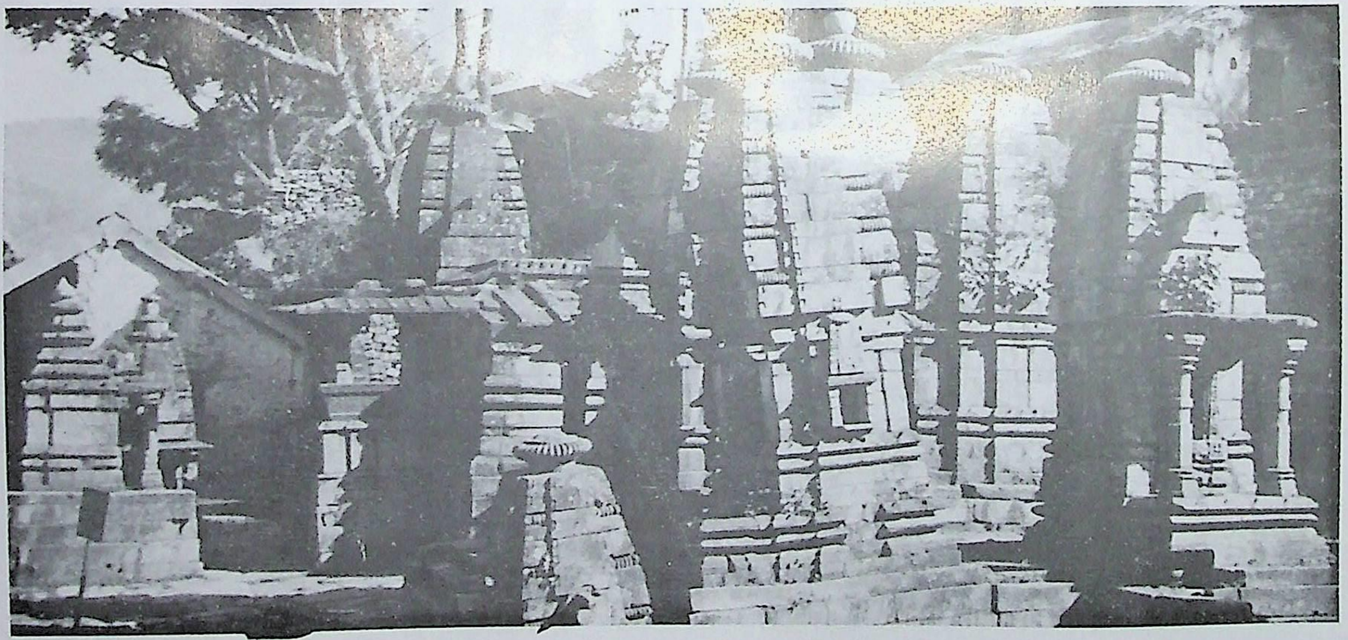

चित्र- १०. वैष्णव देवालय-समूह.
आदिबदरी (चमोली-गढ़वाल). रुचक प्रासाद.
(पृ० ७५)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

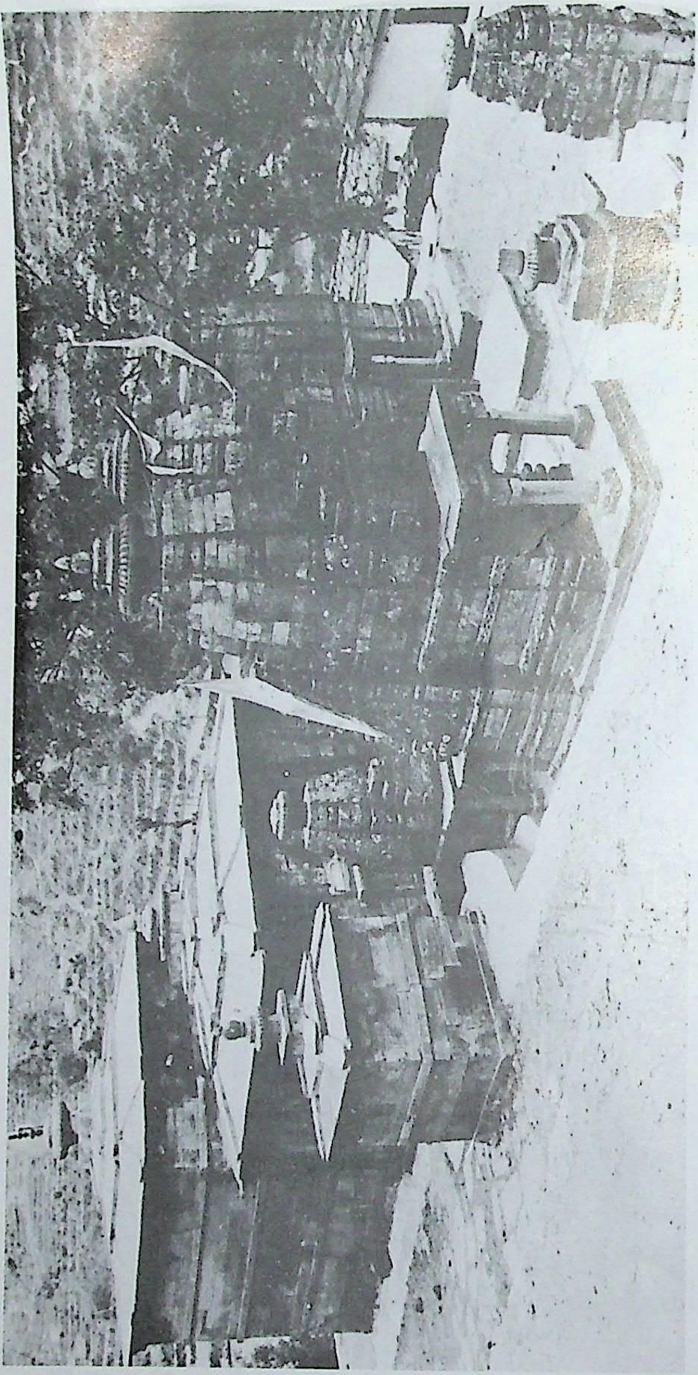

चित्र- ११. देवालय-समूह.
घूल (सितोनस्यूँ, पौड़ी-गढ़वाल)
(पृ० ७५)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

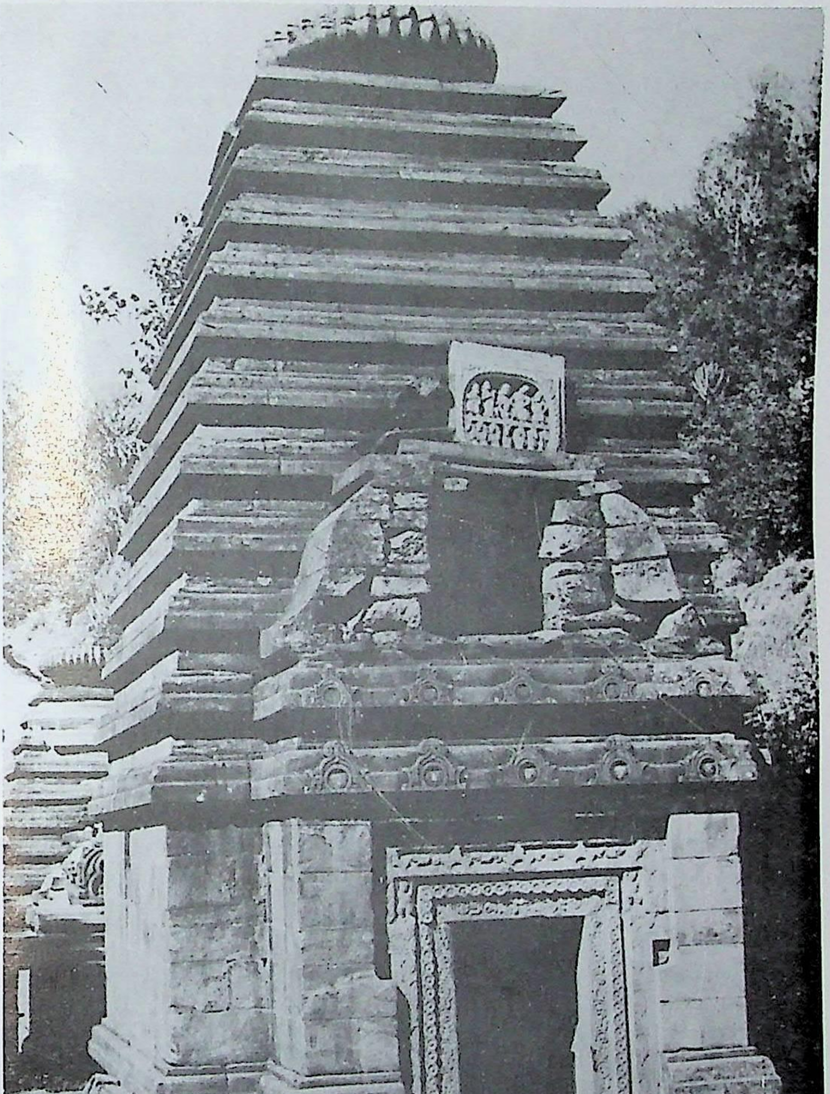

चित्र-१२. सूर्य्य-देवालय, पलेठी.

ज. टिहरी-गढ़वाल. पिढ़ा-शिखर प्रासाद, आरम्भकालीन-सप्तम-अष्टम शती ई०

(पृ० ७६, ९१)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चित्र- १३. घण्डियाल (?) देवालय, वृद्ध - भरसार.
ज. पौड़ी-गढ़वाल. वलभी प्रासाद. पार्श्व दृश्य.
(पृ० ७६)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

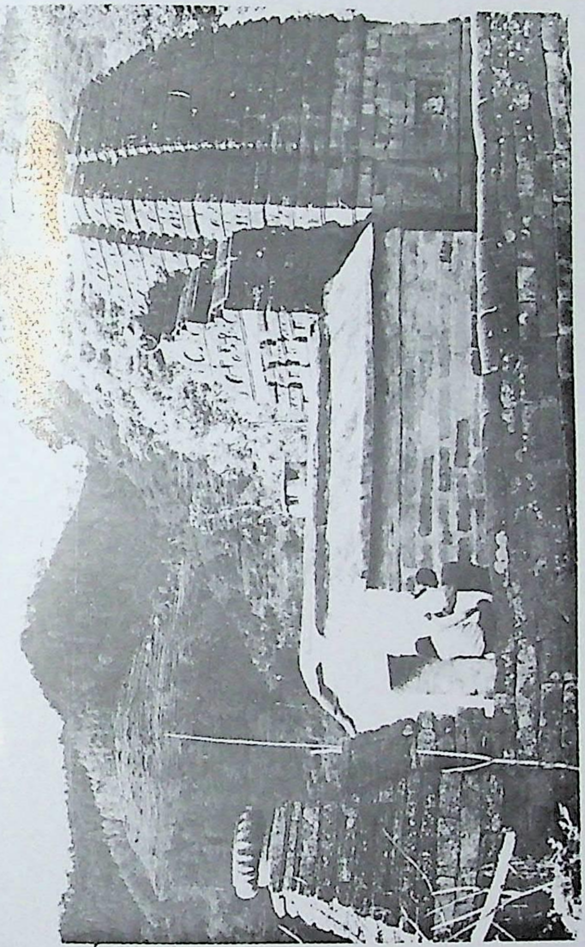

चित्र-१४. पञ्चायतन शिव मन्दिर.
पैठाणी (पौड़ी-गढ़वाल). लग० नवम-दशम शती ईसवी.
(पृ० ७४)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चित्र- १५. वैकुण्ठ-विष्णु.
पलेठी (टिहरी-गढ़वाल).
(पृ० ८५, ९२)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

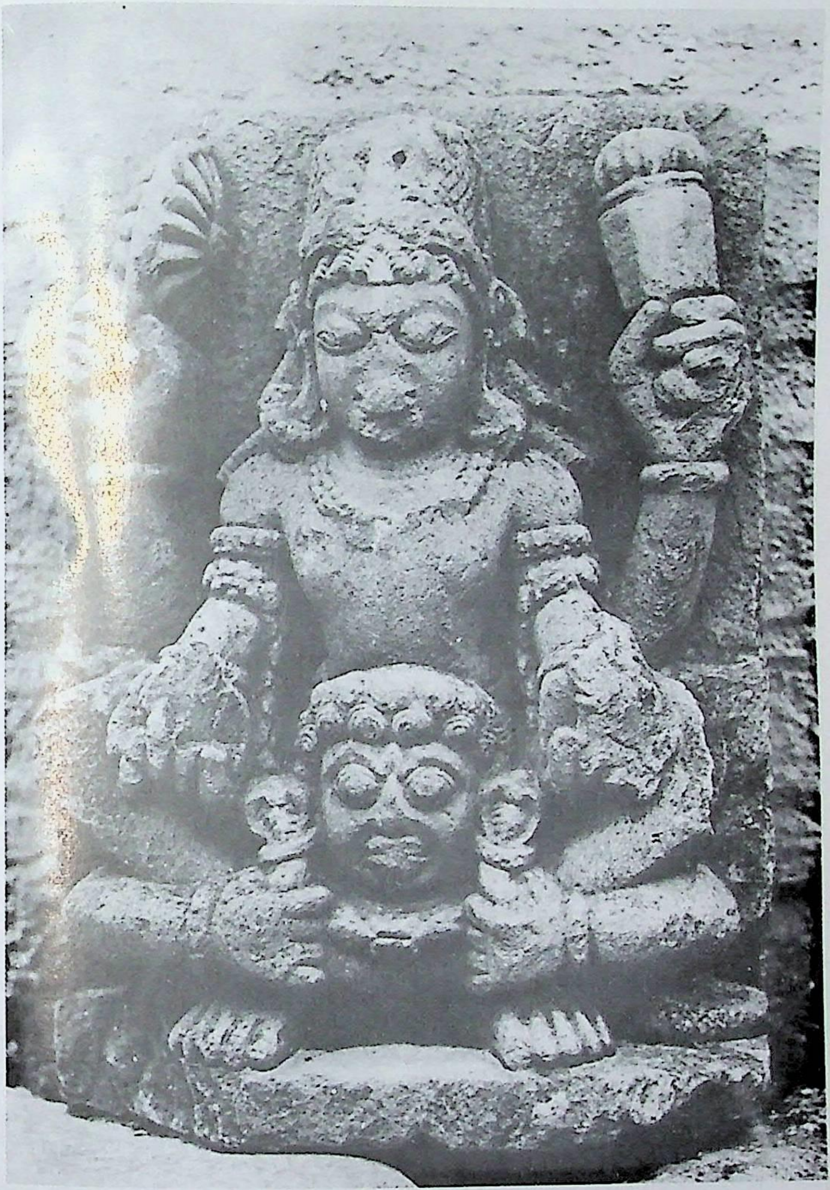

चित्र-१६. गरुडासन विष्णुमूर्ति.
चमाल (टिहरी-गढ़वाल)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चित्र- १७. अनन्तशायीनारायण-मूर्ति.
रुद्रनाथ (चमोली - गढ़वाल).
(पृ० ८५)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चित्र- १८. सूर्य्य.
सूर्य्य-देवालय, पलेठी (टिहरी-गढ़व ।). ऊं०, १०२ सेंमी.
(पृ० ८५, ८८, ९२)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चित्र-१९. सूर्य्य.
रुद्रमहालय, गोपेश्वर.
(पृ० ८८)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चित्र- २०. चैत्य में ध्यानस्थ बुद्ध.
भरत मन्दिर, ऋषिकेश.
(पृ० ८६)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चित्र- २१. स्कन्दमाता.
विनसर (पौड़ी-गढ़वाल).
(पृ० ८६)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

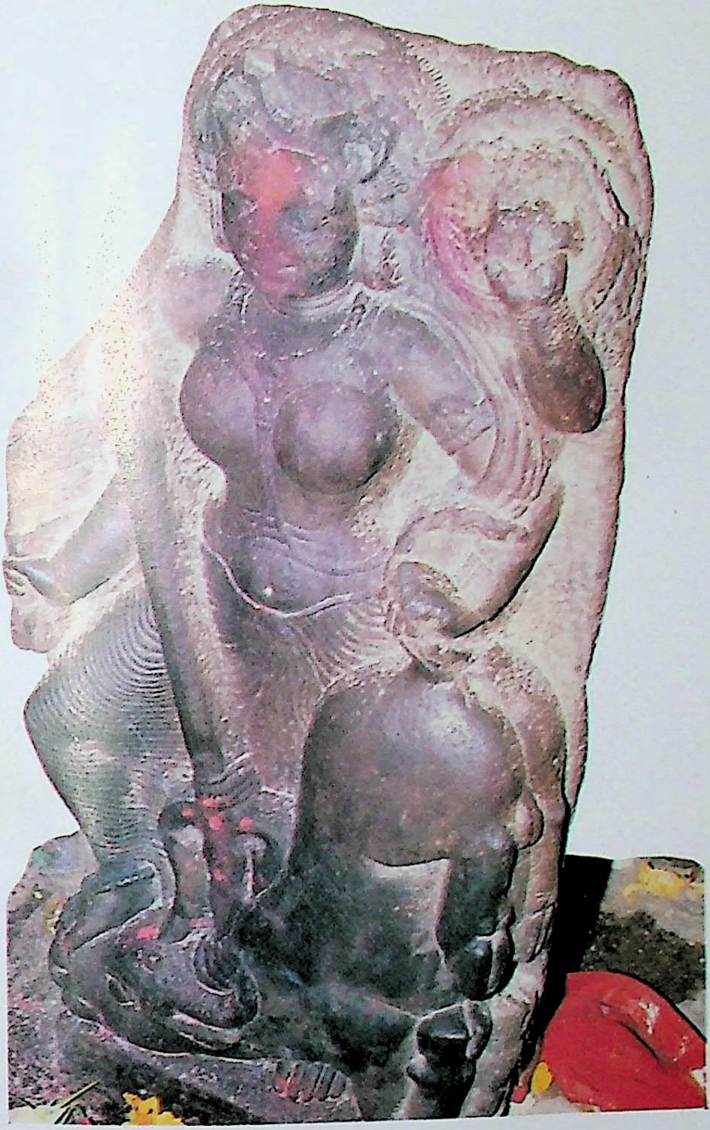

चित्र- २२. महिषासुरमर्दिनी दुर्गा.
बाड़ाहाट (ज. उत्तरकाशी).

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चित्र- २३. घटपल्लव-भूषित स्तम्भ-शीर्ष.
लुकाधड़ी (गढ़वाल हिमालय-पादप्रदेश).
(पृ. ७८, ८७)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चित्र-२४. द्वार-देवता एवं नागमिथुन चित्रित द्वारपक्ष.
पुनाणू (टिहरी-गढ़वाल)
(पृ. ७९, ८७)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

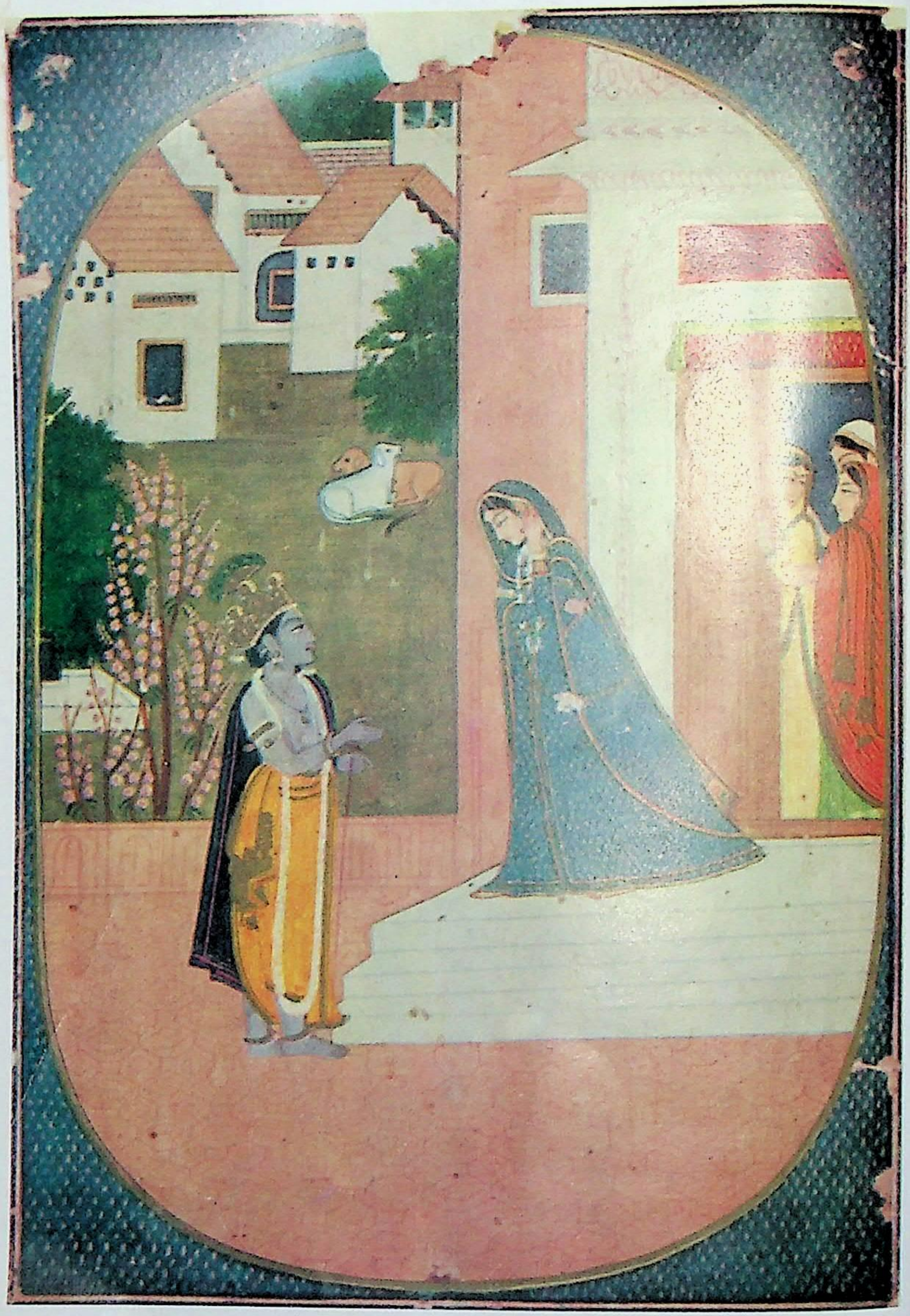

चित्र-२५. राधा-कृष्ण मिलन.

गढ़वाल शैली, लगभग १८०० ई०. चित्रकार : मोलाराम.

आकार २२.६x१५.२ सेंमी.

(पृ० १६९)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चित्र- २६. कुणिन्द अमोघभूति की रजत मुद्रा.
अठूड़ - निखातनिधि. व्यास: लग० १७ मि.मी.

(पृ. ६५)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh